श्री महाकविबिल्हणविरचितम्

विक्रमाङ्कदेवचरितम्

महाकाव्यम्

तृतीयो भागः

(१४—१८ सर्गाः)

भारद्वाजविश्वनाथशास्त्रिविरचितरमाख्यसंस्कृतटीकया
हिन्दीभाषानुवादेन च सुपरिष्कृतम् ।

सम्पादकः
पं० विश्वनाथशास्त्रिभारद्वाजः
एम्० ए० काव्यतीर्थविद्यावागीशादिपदवीविभूषितो
हिन्दूविश्वविद्यालयीयसंस्कृतसाहित्यानुसन्धानसमितिसदस्यः
संस्कृतमहाविद्यालये संस्कृतसाहित्यदर्शनेतिहासाध्यापकः ।

हिन्दूविश्वविद्यालयीय-संस्कृतसाहित्यानुसन्धानसमितितः ।

संवत् २०२० वैक्रमे ।

मूल्यम्–७)

THE
VIKRAMANKADEVA CHARITA MAHAKAVYA

VOL. III

IVX - XVIII CANTOES

EDITOR & COMMENTATOR

Pt. VISHWANATH SHASTRI BHARADWAJ

M.A, Kavyateerth Vidyavageesh

Member-Samskrit Sahityu Research Committee,

Lecturer, History of Samskrit Literature and Philosophy,

Samskrit Mahavidyalaya.

Banaras Hindu University, Banaras.

THE

SAMSKRIT SAHITYA RESEARCH COMMITTEE

OF

THE BANARAS HINDU UNIVERSITY

1964

Price Rs 7/-

PUBLISHED ON BEHALF OF THE

SAMSKRIT SAHITYA RESEARCH COMMITTEE

OF THE

BANARAS HINDU UNIVERSITY

PRINTED BY

LAKSHMI DAS

AT THE BANARAS HINDU UNIVERSITY PRESS

VARANASI-5

विषयानुक्रमणिका

१. उपोद्घातः ... ... पृ० १–२

२. भूमिका ... ... पृ० १–३१

३. समर्पणचित्रम् (म० म० प० दामोदर शास्त्री भारद्वाज)

४. विक्रमाङ्कदेवचरितमहाकाव्यम् (सर्ग १४–१८) · पृ० १–२६५

परिशिष्टानि

क. परिशिष्टम् (सूक्तिसंग्रह) ... पृ० १–२

ख. ,, (अकारादिक्रमेण श्लोकानुक्रमणिका) .. पृ० १–८

ग ,, (विक्रमादित्यस्य (षष्ठस्य) निलगुण्डताम्रशासनम्) पृ० १–७

घ ,, (विशिष्टशब्दसूची) .. पृ० १–३

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति ॥

॥ श्री ॥

॥ श्रीगणेशाय नम ॥

॥ श्रीसङ्कष्टनाशिन्यै नम ॥

उपोद्घातः

मान्याः पण्डितप्रवरा. !

सुदूरदेशप्रस्थितस्य यात्रिणो मार्गागतविविधकष्टपरम्परामनुभूय जाताया नियतस्थानप्राप्तौ यथा मनसि कश्चिदपूर्वोऽवर्णनीयश्च हर्षोल्लासः समुज्जृम्भते तथैवाऽद्य सटीकायुगलमष्टादशसर्गान्वितं विक्रमाङ्कदेवचरिताभिधं, सुबृहन्महाकाव्यं विविधामसुविधामनुभूयाऽपि सम्पूर्णं संप्रकाश्य तस्याऽयमन्तिमस्तृतीयो भागो भवत्कराम्भोजे समर्पयन्नहं नितरां सुखपरम्परां विन्दामि। सुबृहन्महाकाव्यस्याऽस्य प्रकाशने निर्विघ्नपरिसमाप्तावस्मन्महापरिश्रमाधरीकरणे श्रीमज्जगज्जनन्या श्री सङ्कटादेव्याः कृपाकटाक्ष एव हेतुः। तत्प्रेरणयैवाऽत्र प्रवृत्तस्य मे तत्कृपाकटाक्ष एव साफल्यप्रद इति निश्चप्रचम्।

सुबृहत्कार्यं साहाय्यमन्तरा नैव सम्भवति। तत्र श्रीमत्पण्डितप्रवराणा एम्० ए० व्याकरणसाहित्याचार्याणां शीघ्रकवित्वप्रथितयशसां वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालये साहित्यविभागाध्यक्षाणा श्री रामकुबेर मालवीयमहोदयानां संस्कृतटीकालेखनकार्ये यत्साहाय्यं जातं तन्न कदापि विस्मर्तव्यम्। यद्यपि प्रत्येकं सर्गान्ते तदुररीकृत्याऽपि मुहुस्तेषामुपकृतिमुद्घोष्य तेभ्योऽनेकान्धन्यवादान्वितरामि। हिन्दू-विश्वविद्यालयीय-संस्कृतमहाविद्यालये तेषामस्मत्सविध आङ्गलवर्णक्रमत एम्० ए० परीक्षोत्तीर्णतान्तमाङ्गलभाषाध्ययनस्यैतत्साहाय्यं गुरुदक्षिणात्वेन स्वीकृत्य पुनराशीर्वचोभिस्तेषां भाव्यभ्युदय कांक्षे। महामहोपाध्याय-स्वर्गीय-श्रीनारायणशास्त्रि-खिस्ते-महानुभावानां सुपुत्रा वाराणसेयसंस्कृत-विश्वविद्यालय साहित्याध्यापका अस्मज्जामातरो जैवातृका श्रीबटुकनाथशास्त्रि-खिस्ते-महाभागा एम्० ए० साहित्याचार्या अपि साशीर्वादं धन्यवादार्हाः। यैः स्थले स्थल अलङ्कारादिनिर्णये संस्कृतटीकायां सौरस्यसम्पादने च सुमहत्साहाय्यं प्रदत्तम्। श्रील श्री शेषराजशर्ममहोदया धर्मशास्त्राचार्यादिविविधोपाधिभूषिता हिन्दूविश्वविद्यालये नेपालीयभाषाध्यापका अस्मज्ज्येष्ठभ्रातृणां स्वर्गीय श्री

गङ्गाधरशास्त्रिभारद्वाजानां प्रियान्ते-वासिनस्तथा दीर्घायुष्मन्तोऽस्मज्ज्येष्ठपुत्राः श्री बलरामशास्त्रिभारद्वाजा एम्० ए० साहित्याचार्याः सांख्ययोगपुराणेतिहासशास्त्राचार्याश्च वाराणसेय—संस्कृतविश्वविद्यालयीय-सरस्वतीभवनपुस्तकालये सहायकपुस्तकालयाध्यक्षा भूमिकाप्रूफादिसंशोधने साहाय्यं समर्प्याऽस्मदाशीर्वादसम्पादने समर्थाः। श्री लक्ष्मीदास महाभागा हिन्दूविश्वविद्यालयीय-प्रकाशनयन्त्रव्यवस्थापकाश्चाऽनेकधन्यवादपात्रमित्यमायं ब्रवीमि। एभिरनेकवारमपि संशोधनार्थं याचितानि प्रूफसंज्ञकानि पत्राणि शीघ्रतया संप्रेष्याऽस्य पुस्तकस्य प्रकाशने, पुस्तके चित्रादिनियोजने च सुमहत्साहाय्यं प्रदत्तम्।

अस्य तृतीयभागस्य भूमिकाऽऽङ्ग्लभाषायां हिन्दीभाषायां वा भवतु यत्र प्रथम-द्वितीयभागगतयोर्भूमिकयोरपि विचारास्सङ्कलिता भवेयुरिति सहृदयानां सुहृदां वचनमङ्गीकृत्याऽस्य तृतीयभागस्य विस्तीर्णा भूमिका हिन्दीभाषाया संबद्धा, येन संस्कृतमहाकाव्यगतवैशिष्ट्यं समेषां हिन्दीभाषाविदां सर्वसाधारणानां परिज्ञानाय प्रभवेत्।

प्रकाशितेऽस्मिन्महाकाव्येऽस्मत्कृताः प्रकाशकयन्त्रशीषकाक्षरगताश्च बहवो दोषा भवेयुस्तान् सज्जनतयाऽविमृश्य कण्टकिवृक्षतोऽपि भ्रमरवत्पुष्परसमिव सार स्वीकृत्याऽहमनुग्राह्य इति प्रार्थये। यतो—

> गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
> हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

सवत् २०२०
महाशिवरात्रि।

विदुषां वशंवदो
भारद्वाजो विश्वनाथशास्त्री

समर्पणम्

महामहोपाध्याय पं० श्री दामोदरशास्त्री भारद्वाज वैयाकरणकेसरी



वादिव्रातदिगन्तकुञ्जरहरेर्विद्यासुधाम्भोनिधेः
श्री दामोदरशास्त्रिणः सुकृतिनस्तातस्य पादाब्जयोः ।
भक्त्या सम्प्रति विक्रमाङ्कचरितं काव्यप्रसूनं मया
न्यस्तं राजतु विश्वनाथविदुषा विद्वन्मिलिन्दाश्रितम् ॥

।। श्रीः ।।

।। श्रीगणेशाय नम ।।

।। श्री सङ्कष्टनाशिन्यै नम ।।

भूमिका

माननीय विद्वद्गण !

जिस प्रकार एक लम्बी सफर करने वाले यात्री को, मार्ग की अनेक असुविधाएँ सहन करते हुए, अपने निर्धारित स्थान पर पहुँच जाने पर, एक विशिष्ट आनन्द प्राप्त होता है, ठीक उसी प्रकार आज, अनेक बाधाओं का सामना करते हुए, दो स्वरचित टीकाओं के साथ इस लम्बे १८ सर्ग के विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य के इस अन्तिम तृतीय भाग को आपलोगों के करकमलों में समर्पण करते हुए, मुझे अत्यधिक हर्ष हो रहा है।

विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य की रचना यद्यपि ईस्वी ११ वीं शताब्दि में हुई तथापि ई० १८७५ तक यह महाकाव्य पुस्तकालयों में हस्तलिखित रूप में ही पड़ा रहा, जिससे विद्वानों को इस अनुपम महाकाव्य का दर्शन तक न होने से इसके महत्व का कोई ज्ञान न हो सका।

इसकी एक प्रति जैसलमेर के बृहत् ज्ञानकोषभण्डार में है जो ई० १२८६ से भी प्राचीनतर है। दूसरी प्रति भाण्डारकर ओरिएण्टल-रिसर्च इंस्टिच्यूट, पूना में है जो यथार्थ में डा० जॉर्ज व्यूह्लर तथा याकोबी महाशय द्वारा जैसलमेर के बृहत् ज्ञानकोषभण्डार की पुस्तक से ७ दिन में शीघ्रता से की हुई प्रतिलिपि ही है। तीसरी ७ सर्ग मात्र की पुस्तक अहमदाबाद पुस्तकालय में है। सम्भव है कि अन्यत्र भी कहीं पुस्तकालयों में या विद्वानों के घर यह सम्पूर्ण या अधूरी पुस्तक हो जिसके सम्बन्ध में अभीतक कोई पता नहीं चल सका है।

ई० १८७५ में डा० जार्ज व्यूह्लर महोदय ने जैसलमेर के बृहत् ज्ञान-कोषभण्डार में विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य की हस्तलिखित पुस्तक देख व पढ़कर, इस महाकाव्य के अनुपम गुणों से आकृष्ट होकर उसकी ७ दिन

में प्रतिलिपि कर श्री पं० वामनाचार्य झळकीकर तथा श्री पं० भीमाचार्य महोदय के साहाय्य से बाम्बे की संस्कृत ग्रन्थमाला में अपनी विस्तृत भूमिका के साथ इसे सर्वप्रथम प्रकाशित किया, जिससे यह महाकाव्य-रत्न विद्वानों के सन्मुख आसका। स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री रामावतार शर्मा एम्० ए०, साहित्याचार्य सदृश अलौकिक विद्वानों ने इस महाकाव्य के महत्व को समझ डा० जॉर्जब्यूह्लर द्वारा प्रकाशित संस्करण की पुस्तकों के अप्राप्य होने पर सन् १९२७ मे ज्ञानमण्डल काशी से इस महाकाव्य को द्वितीय बार प्रकाशित कराया।

प्राचीन केवल एक हस्तलिखित पुस्तक के आधार पर जो भी पुस्तक प्रथम बार शीघ्रता से छपवाई जाएगी, उनमें यदि अशुद्धियाँ हो तो वे क्षम्य हैं। डा० जार्ज ब्यूह्लर महोदय को अन्य प्रति कहीं न मिलने से केवल उस एक विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य की हस्तलिखित प्रतिलिपि के आधार पर ही पुस्तक छपवानी पड़ी थी। कुछ लोग भले ही डा० जार्ज ब्यूह्लर महोदय की पुस्तक की अशुद्धि बहुत बता कर उसकी निन्दा करें किन्तु मैं तो डा० जार्जब्यूह्लर महोदय को अनेक धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने इस महाकाव्यरत्न को परख कर इसको, अशुद्धियुक्त ही क्यों न हो, प्रकाशित कर जगत् के सन्मुख प्रकट किया। अन्यथा यह महाकाव्य भी अन्य उत्तम तथा उपयोगी संस्कृत ग्रन्थों के सदृश पुस्तकालयों की अंधेरी कोठरियों में हस्तलिखित रूप में ही पड़ा रहता। प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय म० म० पं० रामवतार शर्मा जी ने इस महाकाव्य के महत्व को समझकर डा० जार्ज ब्यूह्लर महोदय की पुस्तक के आधार पर ही कुछ इधर-उधर संशोधन कर अपनी पुस्तक निकाली या उनका नाम देकर किसी अन्य विद्वान् ने निकाली, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। क्यों कि दोनों ही प्रकाशित पुस्तकों में अनेक अशुद्धियाँ हैं, यह कोई भी विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य का अध्यवसायी अच्छी तरह से समझ सकता है। माननीय शर्मा जी की पुस्तक छपने पर इस महाकाव्य का विशेष प्रचार व प्रसार हुआ और विद्वानो को इस महाकाव्यरत्न ने अपनी चमक से मोहित कर लिया।

सन् १९४० में यह महाकाव्य गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, वाराणसी यू० पी० की परीक्षाओं में साहित्याचार्य की परीक्षा में पाठ्यपुस्तक के रूप में निर्धारित किया गया। जब स्व० माननीय शर्मा जी के संस्करण की

पुस्तकें अप्राप्य होने लगीं तब यह आवश्यक था कि इस महाकाव्य का एक शुद्ध संस्करण निकले। इसलिए डा० मङ्गलदेव शास्त्री एम० ए०, डी० फिल् (ऑक्सन), पुस्तकालयाध्यक्ष, सरस्वतीभवनपुस्तकालय, वाराणसी ने साधोलाल रिसर्च स्कॉलर श्री पं० मुरारी लाल नागर एम्०-ए० साहित्याचार्य द्वारा सरस्वतीभवन पुस्तकालय, वाराणसी से इसका तृतीय संस्करण प्रकाशित कराया। इसमें सन्देह नहीं कि यह संस्करण, प्रकाशक महोदय के अथक परिश्रम से, प्रकाशित तीन संस्करणों में शुद्ध व उत्तम है।

कुछ स्थलों पर इस तृतीय संस्करण में भी मुझे पाठ भेद में परिवर्तन करना पड़ा है जो विचार विनिमय के अनन्तर आवश्यक प्रतीत हुआ। जैसे–

पञ्चम सर्ग का १६ वाँ श्लोक–

अस्मरद्द्विरददानवारिणा तेन वारिनिधिराविलीकृतः।
हन्त सन्ततमदस्य विभ्रमानभ्रमुप्रियतमस्य दन्तिनः॥

इसमें "तेन" के स्थान पर "तस्य" किया गया है।

सप्तम सर्ग का २९ वा श्लोक–

हस्तद्वयीगाढ़गृहीतलोल–दोलागुणानां जघने वधूनाम्।
असंवृतस्रस्त-दुकूलबन्धे किमप्यभूदुच्छ्वसितो मनोभूः॥

इसमें "असंवृत्ते स्रस्तदुकूलबन्धे" किया गया है।

१८ वे सर्ग का ४७ वा श्लोक

यस्या भ्राता क्षितिपतिरिति क्षात्रतेजोनिधानं
भोजक्ष्माभृत्सदृशमहिमा लोहराखण्डलोऽभूत्।
शङ्के लक्ष्म्याः शिरसि चरणं न्यस्य वक्षःस्थितायाः
प्राप्ता लीलातिलकतुलनां यन्मुखे सूक्तिदेविः॥

इसमें "यस्य" के स्थान में "यस्या" पाठ ही सन्दर्भ की दृष्टि से ठीक है।

इस प्रकार प्रायः सभी सर्गों में थोड़ा बहुत पाठभेद करना आवश्यक हुआ है।

कालान्तर में इस सरस्वतीभवन, वाराणसी के संस्करण की भी पुस्तकें अप्राप्य होने पर तथा हिन्दूविश्वविद्यालय के संस्कृतमहाविद्यालय की परीक्षाओं मे इस महाकाव्य का प्रथम सात सर्ग पाठ्यपुस्तक रूप से निर्धारित होने पर इस पुस्तक का अभाव सभी को बहुत खटकता था।

इस उत्कृष्ट महाकाव्य का मेरे हृदय पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा था और शोध करने पर इसकी किसी टीका का पता न लगने से मैं ने ५ वर्ष में इसके १८ सर्गों पर "रमा" नाम की संस्कृतटीका तथा एक हिन्दी टीका लिखी थी।

सन् १९५३ में आचार्य श्री नरेन्द्रदेव जी, भूतपूर्व वाईसचान्सलर हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी ने मुझे हिन्दू विश्वविद्यालयीय-संस्कृत-साहित्य-रिसर्च कमेटी का सभासद् चुना और सन् १९५४ में हिन्दूविश्व-विद्यालय के प्रो-वाईस-चान्सलर श्री नारलीकर महोदय ने संस्कृत-साहित्य रिसर्च-कमेटी से विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य को प्रकाशित करने की मुझे अनुमति दी। "श्रेयांसि बहुविघ्नानि" के अनुसार इस काम में प्रतिस्पर्धियों ने अनेक अड़चनें लगाईं जिससे इसके प्रकाशन में बहुत विलम्ब हुआ। परन्तु जगज्जननी सङ्कष्टहरणी की कृपा से सब अड़चनें दूर होकर संबत् २०१५ में इस महाकाव्य का प्रथम सात सर्गों का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ जो तत्कालीन वाईसचान्सलर हि० वि० वि०, माननीय श्री वेणीशङ्कर झा महोदय को उनकी प्रतिकृति (चित्र) इस भाग में समाविष्ट कर, समर्पित किया गया है।

आठवें सर्ग से तेरहवें सर्ग तक का द्वितीय भाग सन् २०१९ में प्रकाशित हुआ। इस द्वितीय भागगत भूमिका मे वर्णित अनेक विषय सरदार श्री ए. ए. पाटील आइ. ए. एस्., विश्रामप्राप्त कलेक्टर दमोह म. प्र. की अनुकम्पा से प्राप्त होने से तथा उनके स्वयं चालुक्यवंशीय होने के नाते इस महाकाव्य से उनका घनिष्ट प्रेम देखकर यह द्वितीय भाग उनके चित्र के साथ उनको समर्पित किया गया है। यह १४ से १८ सर्गों का तृतीय तथा अन्तिम भाग अभी संबत् २०२१ में प्रकाशित हुआ है। जो चित्र के साथ श्री पितृ चरण स्वर्गीय महामहोपाध्याय, वैयाकरणकेसरी श्री १०८ पं० दामोदर शास्त्री भारद्वाज, भूतपूर्व प्रधाना-ध्यापक गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, वाराणसी को उनके चित्र के साथ सादर समर्पित किया गया है।

विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य ऐतिहासिक महाकाव्य होने के कारण भौगोलिक वर्णन को नितान्त आवश्यक समझ, इसके चरित्र नायक श्री विक्रमादित्य (षष्ठ) का साम्राज्य भारतवर्ष में कितने विस्तार में था और उनके विजय-युद्ध किन २ स्थानों पर हुए थे इसका पाठकों को सहज में परिज्ञान हो इस उद्देश्य से उस काल का अर्थात् ई० ११वीं शताब्दि का भारतवर्ष का मानचित्र प्रथम भाग के अन्त में दिया गया है। प्रथम भाग के परिशिष्ट 'क' में प्रथम सात सर्गों में प्राप्त अच्छी २ सूक्तियाँ, परिशिष्ट 'ख' में अकारादि क्रम से प्रथम सात सर्गों के श्लोकों की सूची, परिशिष्ट 'ग' में प्रथम सात सर्गान्तर्गत विशिष्ट नामों का संग्रह तथा परिशिष्ट "घ" में विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य तथा विक्रमादित्य (षष्ठ) के सम्बन्ध में जितने ग्रन्थ तथा लेख उपलब्ध हो सके उनका विवरण दिया गया है।

इस महाकाव्य के प्रकाशित द्वितीय भाग में अष्टम सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक हैं। मुझे हर्ष है कि इस द्वितीय भाग के प्रकाशन के समय में सौभाग्य से चालुक्यवंश के श्रीमान् सरदार ए. ए. पाटील आइ. ए. एस्. विश्रामप्राप्त कलेक्टर दमोह म. प्र. से मेरा माननीय स्व० श्री रवि-शङ्कर जी देराश्री बी. ए. एल्. एल्. बी, बार-एट-लॉ, एडवोकेट सुप्रीम कोर्ट तथा राजस्थान के द्वारा परिचय हुआ। पत्र आदि से सम्बन्ध स्थापित कर संवत् २०११ में मैं उनसे दमोह जाकर मिला। वहाँ के मेरे मित्रों ने बताया कि वे बड़े कड़े मिजाज के हैं और उनसे मेरा कितना काम निकलेगा यह परमेश्वर ही जाने। यह सुनने पर भी मैंने अपने आने की सूचना टेलीफोन से दी। सूचना पाते ही उन्होंने मेरे लिये अपनी कार भेजी। मित्रों को यह देख बड़ा आश्चर्य हुआ। मिलने पर उन्होंने मेरा अच्छा स्वागत किया और मुझे शेर, चीता, बब्बर, भालू, हिरण आदि शिकारों में मारे जानवरों के मुण्ड तथा चमड़ों से सुसज्जित अपने खास कमरे में बैठाया। करीब दो घण्टों तक चालुक्यवंश के सम्बन्ध में मेरा और उनका बड़ा ही मनोरंजक वार्तालाप होता रहा। इसी बीच में उन्होंने चालुक्य-राजवंश की अनेक प्राचीन चीजें जैसे सोने की रत्नजड़ित मूर्तियाँ, अनेक दक्षिणावर्त शंख प्राचीन चालुक्य-वंशीय राजाओं के चित्र, एकमुखी रुद्राक्ष आदि वंश परम्परागत अनेक वस्तुएँ दिखाईं। चित्रों में विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य के नायक विक्रमादित्य (षष्ठ) का चित्र देख कर मन में विचार हुआ कि यदि इस

चित्र की प्रतिकृति महाकाव्य में दी जाती तो बड़ी शोभा आती। परन्तु प्रथम साक्षात्कार में यह प्रार्थना कहाँ तक ठीक होगी इसका विचार कर मैं ने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा। उन्होंने प्राचीन हस्तलिखित "चालुक्यराज-अय्यणवंशचरितम्" नामक संस्कृतकाव्य की पुस्तक दिखाई जिसे स्थालीपुलाक न्याय से इधर उधर देखने से मालुम हुआ कि इसका कुछ अंश यदि भूमिका में उद्धृत किया जाता तो चालुक्यवंश की उत्पत्ति तथा प्राचीन राजाओं के, अब तक अज्ञात नामों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता। उन्होंने २-४ दिन दमोह में रहने का आग्रह किया। मैंने भी स्वार्थसिद्धि के ध्येय से समय न होने पर भी उनका अनुनय स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन पुनः कार से जाने पर मैंने अपना मनोरथ युक्ति से उन्हें सुनाया। सुनते ही उन्होंने सहर्ष विक्रमादित्य (षष्ठ) के चित्र की प्रतिकृति तैयार कराकर मेरे पास वाराणसी भेजना स्वीकार कर लिया। परन्तु "चालुक्यराज अय्यणवंशचरितम्" काव्य, छपने पर ही मिल सकेगा, ऐसा उत्तर दिया। मेरे वहीं एकान्त में बैठ कर उसे पढ़ने की इच्छा को उन्होंने स्वीकार कर लिया। तीसरे दिन वहाँ जाने पर प्रारम्भ से उस हस्तलिखित काव्य को पढ़ने से विदित हुआ कि महाकवि बिल्हण की दी हुई वंशावली से और प्राचीन भारतीय इतिहास लेखक डा० आर० जी० भाण्डारकर, श्री एस्० के कृष्णस्वामी ऐयङ्गार प्रभृति के लेखों से उस हस्तलिखित पुस्तक में वर्णित विषय बहुत भिन्न हैं। उनकी सम्मति से उस काव्य के कुछ सर्ग मैंने उतार लिये थे जिसका कुछ अंश द्वितीय भाग की भूमिका में उद्धृत किया गया है। यथाप्रतिज्ञात उन्होंने विक्रमादित्य (षष्ठ) का चित्र भी तैयार कराकर भेज दिया जो द्वितीय भाग के प्रारम्भ मे दिया गया है। इस कृपा की कृतज्ञता प्रकट करने के हेतु ही यह द्वितीय भाग उनके चित्र के साथ उन्हें समर्पित किया गया है।

द्वितीय भाग में भी परिशिष्ट "क" में ८ से १३ सर्गों के भीतर की सूक्तियाँ, परिशिष्ट "ख" में ८ से १३ सर्गों के श्लोकों की अकारादि-क्रम से सूची, परिशिष्ट "ग" में इन ६ सर्गों में आए विशिष्ट नामों की सूची, परिशिष्ट "घ" मे इस महाकाव्य तथा उसके नायक के सम्बन्ध के लेख तथा ग्रन्थों की सूची और परिशिष्ट "ङ" में प्राचीन चालुक्यवंशीय राजाओं की वंशावली तथा आधुनिक काल तक के चालुक्य वंश के सज्जनों की वंशावली दी गई है।

चालुक्यराज-अय्यणवंशचरित काव्य के अनुसार चालुक्य-वंश की उत्पत्ति विष्णु[1] से मानी गई है। क्रम से अनेक राजाओं के होने के बाद विजयादित्य नामक राजा हुआ जिसने अपने भाई चित्रकण्ठ से कलह होने के कारण अयोध्या को छोड़ दिया था।

---

[1] श्री महामुनिरुवाच

श्रूयतां सावधानेन चेतसेमं पुरातनम्।
चालुक्यकुलजातानामैतिह्यं महदद्भुतम् ॥४७॥
विष्णोरंशात्समुद्भूतो वंशोयं वर्ण्यतो भुवि।
तद्वंशजानां नामानि पुण्यानि निगदामि वः ॥४८॥
श्रीधाम्नो पुरुषोत्तमस्य महतो नारायणस्य प्रभो-
र्नाभीपङ्करुहाद्बभूव जगतः स्रष्टा स्वयम्भूस्ततः।
जज्ञे मानससूनुरत्रिरिति यस्तस्मान्मुनेरत्रितः
सोमो वंशकरः सुधांशुरुदितः श्रीकण्ठचूडामणिः ॥४९॥
तस्मादासीत्सुधासूतेर्बुधो बुधनुतस्ततः।
ततः पुरूरवा नाम चक्रवर्ती नृपोत्तमः ॥५०॥
तस्मादायुरायुषोथ नहुषः पुण्यपूरुषः।
ततो ययातिस्तस्माच्च पुरुरित्यभिधानवान् ॥५१॥
जनमेजयसंज्ञश्च प्राचीशस्तत्सुतस्तथा।
तस्माज्जातः सैन्ययातिस्ततो हयपतिस्ततः ॥५२॥
सार्वभौमस्ततो जातो जयसेनः प्रतापवान्।
महाभौमस्ततो देशानक-क्रोधाननौ क्रमात् ॥५३॥
ततो देवकिरित्याख्यस्ततः कुमुदनायकः।
तस्माद्दृक्षक संज्ञश्च ततो मतिवरः पुमान् ॥५४॥
कात्यायनस्ततो नीलदुष्यन्तभरताः क्रमात्।
भरताद्धर्मशीलाच्च भूमन्युस्तत्सुतोऽभवत् ॥५५॥
तस्मात्सुहोत्रस्तज्जश्च हस्ती तस्माद्विरोचनः।
तस्मादजामिल इति तस्य संवरणः सुतः ॥५६॥
तस्मात्सुधन्वा जातोऽयं तपत्या सूर्यकन्यया।
तस्मात्परीक्षितस्तस्माद्भीमसेनः प्रतापवान् ॥५७॥
ततः प्रदीपनस्तस्माच्छान्तनुः कीर्तिवर्धनः।
ततो विचित्रवीर्याच्च पाण्डुराजस्ततोऽर्जुनः ॥५८॥

महाकवि बिल्हण ने अपने महाकाव्य के प्रथम सर्ग में लिखा[१] है कि ब्रह्मा ने इन्द्र की विशिष्ट प्रार्थना से प्रसन्न होकर पृथ्वी पर होने वाले अन्यायों को दूर करने के लिए एक प्रतापी राजा की आवश्यकता समझ

ततोऽभिमन्युस्तस्माच्च परीक्षित इति श्रुतः ।
जनमेजयनामा च तस्मात्तस्माच्च क्षेमुकः ॥५९॥
नरवाहनसंज्ञोऽभू्द्भारते भूतिमांस्ततः ।
ततः शतानीक इति तस्मादुदयनो नृपः ॥६०॥
यशःपुञ्जप्रभावेण यस्य राज्ञः प्रभावितम् ।
भारतं भारतं जातं देवदानवपूजितम् ॥६१॥
एकोनषष्टी राजानोऽभवन्नुदयनात्परम् ।
ततस्तु विजयादित्यः षष्टीसंख्यो नृपोऽभवत् ॥६२॥
श्रीरामचन्द्राद्भुतराजधानीं पुरीमयोध्यां सुसिषेविरे नृपाः ।
स चित्रकण्ठस्य निशम्य बन्धोस्तत्याज शब्दाग्निजजन्मभूमिम् ॥६३॥

इति श्री चालुक्यराज-अय्यणवंशचरिते काव्ये वंशपरिचये विष्णोरंशभूत-चन्द्रवंशीयत्ववर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ।

[१] संध्यासमाधौ भगवाँस्थितोऽथ शक्रेण बद्धाञ्जलिना प्रणम्य ।
विज्ञापितः शेखरपारिजात-द्विरेफनादद्विगुणैर्वचोभिः ॥३९॥
आस्ते यदैरावणवारणस्य मदाम्बुसङ्गान्मिलितालिमाला ।
साम्राज्यलक्ष्मीजयतोरणाभे दन्तद्वये वन्दन-मालिकेव ॥४०॥
यदातपत्रं मम नेत्रपद्म-सहस्रलोलालिकदम्बनीलम् ।
कुरङ्गनाभीतिलकप्रतिष्ठां मुखे समारोहति राजलक्ष्म्याः ॥४१॥
यन्नन्दने कल्पमहीरुहाणा छायासु विश्रम्य रतिश्रमेण ।
गायन्ति मे शौर्यरसोर्जितानि गीर्वाणसारङ्गदृशो यशांसि ॥४२॥
किं वा बहूक्तैः पुरुहूत एष पात्रं महिम्नो यदनङ्कुशस्य ।
स्वामिन् स सर्वोऽपि शिरोधृतानां त्वत्पादसेवारजसां प्रभावः ॥४३॥
निवेदितश्चारजनेन नाथ तथा क्षितौ सम्प्रति विप्लवो मे ।
मन्ये यथा यज्ञविभागभोगः स्मर्तव्यतामेष्यति निर्जराणाम् ॥४४॥
धर्मद्रुहामत्र निवारणाय कार्यस्त्वया कश्चिदवार्यवीर्यः ।
रवेरिवांशुप्रसरेण यस्य वंशेन सुस्थाः ककुभः क्रियन्ते ॥४५॥
पुरन्दरेण प्रतिपाद्यमानमेवं समाकर्ण्य वचो विरिञ्चिः ।
सन्ध्याम्बुपूर्णे चुलुके मुमोच ध्यानानुविद्धानि विलोचनानि ॥४६॥

सायंसन्ध्या करते समय, अर्घ्य देने के लिए जल से पूरित अपनी अंजुली पर दृष्टिपात किया और उसमें से एक वीर उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा जी की अंजुली से उत्पन्न होने के सम्बन्ध में अनेक शिला[१] लेख भी मिलते हैं।

ऐतिहासिकों के कथनानुसार गुप्तसाम्राज्य के समाप्त हो जाने पर चालुक्य साम्राज्य का प्रादुर्भाव चार शाखाओं में हुआ। (१) वातापी चालुक्य (२) वेंगी चालुक्य (३) कल्याणी चालुक्य तथा (४) गुर्जर चालुक्य। श्री विक्रमादित्य (षष्ठ) कल्याणी चालुक्य वंश में हुए थे। इस वंश के प्रायः सभी राजा लोग वीर, विद्यानुरागी, उदार, बड़े दानी तथा कट्टर सनातनधर्मावलम्बी आदि सद्गुणों से विभूषित थे यह बात विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य, अनेक उपलब्ध ताम्रपत्र तथा शिलालेखों से सिद्ध होती है।

प्रकोष्ठपृष्ठस्फुरदिन्द्रनील-रत्नावलीकङ्कणडम्बरेण।
बन्धाय धर्मप्रतिबन्धकानां वहन्सहोत्थानिव नागपाशान् ॥४७॥
उत्तर्जनीकेन मुहुः करेण कृताकृतावेक्षणबद्धलक्षः।
रुषा निषेधन्निव चेष्टितानि दिक्पालवर्गस्य निरर्गलानि ॥४८॥
भोगाय वैपुल्यविशेषभाजं कर्तुं धरित्रीं निजवंशजानाम्।
केयूरसंक्रान्तविमानभङ्ग्या भुजोद्धृतक्ष्माभृद्विवेक्ष्यमाणः ॥४९॥
अखर्व-गर्वस्मितदन्तुरेण विराजमानोऽधरपल्लवेन।
समुत्थितः क्षीरविपाण्डुराणि पीत्वेव सद्यो द्विषतां यशांसि ॥५०॥
सुवर्णनिर्माणमभेद्यमस्त्रैः स्वभावसिद्धं कवचं दधानः।
जयश्रियः काञ्चनविष्टराभं समुद्वहन्नुन्नतमंसकूटम् ॥५१॥
स्वःसुन्दरीबन्दिपरिग्रहाय बद्धोऽञ्जलिः सम्प्रति दानवेन्द्रैः।
इति प्रहर्षादमराङ्गनानां नेत्रोत्पलश्रेणिभिरर्च्यमानः ॥५२॥
अपि स्वयं पङ्कजविष्टरेण देवेन दृष्टश्चिरमुत्सुकेन।
वाञ्छाधिकप्रस्तुतवस्तुसिद्धि-सविस्मयस्मेरमुखाम्बुजेन ॥५३॥
कषोपले पौरुषकाञ्चनस्य पङ्के यशःपाण्डुसरोरुहाणाम्।
व्यापारयन्दृष्टिमतिप्रहृष्टा-मवाप्तपाणिप्रणये कृपाणे ॥५४॥
हेमाचलस्येव कृतः शिलाभिरुदारजाम्बूनदचारुदेहः।
अथाऽऽविरासीत्सुभटस्त्रिलोक-त्राणप्रवीणश्चुलुकाद्विधातुः ॥५५॥
विक्रमाङ्कदेवचरितम्—प्रथमसर्ग।

[१] बडनगर का ११५१ ई का, चित्तौड़ के किले का तथा खंभात के कुन्तनाथ के मन्दिर का शिलालेख।

कल्याणी चालुक्य वंश का साम्राज्य दक्षिण भारत में था यह प्रसिद्ध है। परन्तु सबसे पूर्व इस वंश का कौन राजा दक्षिण भारत में गया इसका पता न भारत का प्राचीन इतिहास लिखने वालों को लगा न कविराज बिल्हण को ही था। महाकवि बिल्हण ने अपने महाकाव्य में 'इस[1] चालुक्य वंश के, विजय की इच्छा रखने वाले कुछ राजालोग सम्पूर्ण जगत् को जीतकर विलासिता के रस में पड़ कर, पान की बँबर से सट कर जहाँ सुपाड़ी के पेड़ लगे हैं ऐसी दक्षिण दिशा में राज्य करने लगे।' इतना ही बताया है। विक्रमादित्य (षष्ठ) का वर्णन करने के ध्येय से लिखे गये इस महाकाव्य में कौन राजा सर्वप्रथम दक्षिण में गया इसका वर्णन न करना किसी प्रकार दोषयुक्त नहीं कहा जा सकता। किन्तु ऐतिहासिक विद्वानों का इस सम्बन्ध में कुछ न लिखना उनके शोध में कुछ अशिथिलता अवश्य प्रकट करता है।

चालुक्यराज-अय्यणवंशचरित नामक हस्तलिखित काव्य में इसका समयनिर्देश के साथ विस्तृत वर्णन दिया गया[2] है। तदनुसार सबसे

---

[1] जिगीषवः केऽपि विजित्य विश्वं विलासदीक्षारसिकाः क्रमेण।
चक्रु पदं नागरखण्डचुम्बि-पूगद्रुमायां दिशि दक्षिणस्याम्॥

सर्ग १ श्लोक ६८

[2] स मानी विजयादित्योऽपूर्वशक्तिसमन्वितः।
बुद्धिमान्नीतिनिपुणो धर्मकर्मरतः सदा ॥१॥
कदाचिच्चित्रकण्ठेन तद्भ्रात्रा विमनायितम्।
तस्मात्त्यक्त्वा राजधानीमयोध्यां स्वकुलागताम् ॥२॥
धीरो मनस्वी वीरोऽसौ प्रस्थितो दक्षिणां दिशम्।
स्वकलत्रादिभिर्युक्तो नर्मदायास्तटेऽगमत् ॥३॥
रामवेदाब्जसंख्याके (१४३) शके चौबलिनामके।
ग्रामे निवसति चक्रे श्री माहेश्वरसन्निधौ ॥४॥
संतीर्य नर्मदां पश्चात्सर्वैः स्वैरनुयायिभिः।
अजन्तां विपुलां प्राप सर्वसौख्यप्रदायिकाम् ॥५॥
दानमानैश्च सन्तर्प्य विप्रान्वेदविदां वरन्।
उवास कतिचित्कालमजन्तायां महाबली ॥६॥
आसीद्राज्यं नर्मदाया दक्षिणे भुवि विश्रुतम्।
पल्लवान्वय-संजात—त्रिलोचन-नृपस्य च ॥७॥

पूर्व अयोध्या से निकल कर दक्षिण भारत में जाने वाला राजा विजया-

त्रिलोचनो महावीरो धर्मकर्मरतस्सदा ।
पालयामास तद्राज्यं रामराज्यमिवाद्भुतम् ।।८।।
समापन्नविपत्काले बुद्धिर्मतिमतामपि ।
विपर्यासं समायाति दुर्दैवाभिहता सदा ।।९।।
विजयादित्यराजोऽसौ दुर्भाग्याभिहतस्तदा ।
आक्राम्यति स्म तद्राज्यं शक्तित्रयसमन्वितम् ।।१०।।
तत्राऽभूत्सुमहद्युद्धं वीराणां रोमहर्षणम् ।
शस्त्रैःखण्डितगात्राणां वीराणां रक्तसंस्रवैः ।।
युद्धभूमिः शोणितेन समस्ता च परिप्लुता ।
व्याप्ता मुण्डैर्भुजैः पादैः खण्डितैश्च समन्ततः ।।१२।।
ततस्त्रिलोचनस्याऽयं मदोन्मत्तो मतङ्गजः ।
मर्दयन्परसैन्यानि प्रचचाल महाबली ।।१३।।
विजयादित्यराजोऽपि दृष्ट्वा तं समुपस्थितम् ।
बहुधा छिन्नवर्माऽपि पुरतः संरुरोध तम् ।।१४।।
पदे पदे बाणघातैर्निषिद्धोऽपि महाबलः ।
चकार शत्रुसैन्यानां गर्जैस्तु कदनं महत् ।।१५।।
ततस्त्रिलोचनेनाऽसौ हृदि बाणेन ताडितः ।
पपाताऽश्वात्ततः सैन्यं तस्य सर्वं पलायितम् ।।१६।।
गृहीत्वा विजयादित्यभार्यां गर्भवतीं तदा ।
तद्भ्राता तु कथंचिच्चाऽगात्तया सह दुःखितः ।।१७।।
मुडिवेडुग्राममध्ये विष्णुभट्टं तपस्विनम् ।
वेदवेदाङ्गतत्वज्ञं ब्राह्मणं सोमयाजिनम् ।।१८।।
विलोक्य पूर्णगर्भां तां शरणागतवत्सलः ।
स्वाश्रयं प्रददाति स्म पुत्रीमिव ररक्ष च ।।१९।।
पतिशोकाभिभूता सा राज्ञी तत्राऽवसत्तदा ।
पालयन्ति स्वगर्भञ्च व्रतं वैधव्यजं समम् ।।२०।।
अथ काले शुभे राज्ञी सुतमेकमजीजनत् ।
चन्द्रप्रभं दिव्यदेहं लक्षणैश्शोभनैर्युतम् ।।२१।।
दृष्ट्वैतद्विष्णुभट्टेन तन्नामकरणं कृतम् ।
विष्णुरित्यभिधानेन बालस्य शुभलक्षणः ।।२२।।

दित्य[1] नाम का था। यह अयोध्या के राजा चित्रकण्ठ का छोटा भाई था। अपने भाई के कलह से दुःखी होकर यह अयोध्या छोड़ कर अपनी पत्नी आदि परिवार तथा इष्ट मित्रों के साथ शक १४३ में दक्षिण में नर्मदा के तट पर स्थित चावली नामक ग्राम में आया। यही कल्याणी चालुक्य वंश का मूल पुरुष हुआ है।

शक १४३ में दक्षिण भारत में पल्लव वंशीय त्रिलोचन नामक राजा का नर्मदा के दक्षिण में बड़ा सुसंगठित राज्य था। इस राजा का भी इतिहास-ग्रन्थों में कुछ पता नहीं चलता। चालुक्यवंशीय विजयादित्य नर्मदा के तटपर चावली ग्राम में माहेश्वर मन्दिर के पास थोड़े दिन रह कर नर्मदा पार कर अजन्ता में आया। वहाँ दानमानादि से ब्राह्मणों को संतुष्ट कर थोड़े समय तक निवास किया। जब पल्लव-वंशीय राजा त्रिलोचन की शक्ति तथा पुरुषार्थ की सूचना विजयादित्य को मिली तब वीर होने के कारण उसने दुर्भाग्य से त्रिलोचन राजा के राज्य पर आक्रमण कर दिया। घोर संग्राम मे विजयादित्य मारा गया और उसकी गर्भवती रानी को लेकर रानी का भाई भागकर मुडिवेड्ड

अयमेव प्रसिद्धोऽभूद्विष्णुवर्धनसंज्ञया।
चालुक्यवंशजां कीर्तिं वर्धयन्निजशौर्यतः ॥२३॥
दिने दिने स ववृधे............ ।
....राजराजाधिपोऽभवत् ॥३७॥
कदम्बगङ्गवंशीयान् राज्ञो युद्धे विजित्य च।
नर्मदातः सेतुबन्धं यावद्विस्तीर्णमद्भुतन् ॥३८॥
जित्वा पञ्चाशत्सहस्राधिकलक्षस्य सप्तकान्।
ग्रामान्संस्थापयामास राज्यं स्वं दक्षिणापथे ॥३९॥
अस्योत्कटप्रतापेन प्रीतः पल्लववंशज·।
काञ्चीश्वरो महाराजो हर्षेण विनयेन च ॥४०॥
प्रादात्कन्यां निजां तस्मै सुन्दरीं गुणगुम्फिताम्।
दासीदाससमायुक्तामाभूषणविभूषिताम् ॥४१॥
विजयादित्यनामाऽभूत्तत्सूनुर्भूरिविक्रमः।
जयसिंहस्ततो जातो वल्लभेन्द्रादिनामधृक् ॥४२॥
चालुक्यराज-अप्पणवंशचरितम् -द्वितीय सर्ग

[1] देखो इंडियन एंटिक्वेरी जिल्द १४ पृष्ठ ५०-५५

नामक ग्राम में सोमयाजी विष्णुभट्ट[1] नामक तपस्वी ब्राह्मण के शरण में आया। विष्णुभट्ट ने उनको शरण दी। कुछ काल के अनन्तर रानी को बड़ा तेजस्वी पुत्र हुआ जिसका नाम विष्णु रक्खा गया। यही बालक आगे चलकर विष्णुवर्धन नाम का एक प्रतापी राजा हुआ। इसने कदम्ब और गङ्ग वंश के राजाओं को जीत कर कई हजार ग्रामों का एक साम्राज्य नर्मदा से सेतुबन्ध रामेश्वर तक स्थापित किया। इसके उत्कट पराक्रम से प्रभावित होकर काञ्ची के पल्लववंशीय राजा ने अपनी कन्या से इसका विवाह बड़े ठाठ बाट से कर दिया। इसका पुत्र विजयादित्य (द्वितीय) हुआ। विजयादित्य (द्वितीय) का पुत्र जयसिंह हुआ जिसकी उपाधियां वल्लभेन्द्र आदि थीं।

राजा जयसिंह से प्रारम्भ कर विक्रमादित्य (षष्ठ) के पौत्र सोमेश्वर (चतुर्थ) तक की वंशावली द्वतीय भाग के परिशिष्ट "क" में दी गई है। उसी वंशावली से संल्लग्न विक्रमादित्य (षष्ठ) के दादा राजा अय्यण (१०१४-५४ ई०) (द्वतीय की वंशावली दी गई है जिसमें उस वंशपरम्परा में उत्पन्न आधुनिक काल मे विद्यमान उनके वंशजों का भी नामोल्लेख किया गया है।

प्राचीन चालुक्य वश के राजाओं की राजधानी अयोध्या थी इस सम्बन्ध में कविराज बिल्हण[2] तथा अय्यणवंशचरित[3] काव्य का ऐकमत्य

[1] यदि यह कल्पना की जाए कि युद्ध मे राजा विजयादित्य के मारे जाने पर उनकी गर्भवती रानी का विष्णुभट्ट की शरण में जाना और वहाँ उसे पुत्र होना—यह प्राचीन सत्य घटना कविराज दण्डी के समय तक दक्षिण भारत में प्रसिद्ध थी और दण्डी कवि के दक्षिण भारत के होने के कारण उन्होंने इस सत्य घटना के आधार पर ही अपने दश-कुमारचरितम् नामक गद्यकाव्य का प्रारम्भ किया, तो अनुचित न होगा। प्रायः कविलोग कुछ अपूर्व प्राचीन घटना के आधार पर ही अपनी नूतन ग्रन्थरचना में प्रवृत्त होते थे।

[2] प्रसाध्य तं रावणमध्युवास यां मैथिलीशः कुलराजधानीम्।
ते क्षत्रियास्तामवदातकीर्तिं पुरीमयोध्यां विदधुर्निवासम्॥
विक्रमाङ्कदेवचरितम् (१सर्ग ६३ श्लोक)

[3] श्रीरामचन्द्राद्भुतराजधानीं पुरीमयोध्यां सुसिषेविरे नृपाः।
अय्यणवंशचरितम् (१ सर्ग ६३ श्लोक)

है। किन्तु पूर्ववर्ति राजाओं के नामों में बड़ा ही भेद है। बिल्हण कवि ने ब्रह्मा की अंजुली से उत्पन्न वीर का वर्णन कर उस वंश में उत्पन्न हारीत[1] और मानव्य नामक राजाओं का वर्णन किया है। किन्तु अय्यण-वंश-चरित काव्य में इन दोनों राजाओं का नाम भी नहीं है।

हारीत और मानव्य ये दोनों शब्द क्रम से हरितस् तथा मानव्यस् इन गोत्र परक शब्दों से सम्बन्ध रखते हैं। चालुक्यवंशीय राजा लोग अपने कुलगुरू का गोत्र ही अपना गोत्र मानते थे। मानव्य के सम्बन्ध में प्राचीन ताम्रपत्र[2] तथा शिलालेखों से सिद्ध हो जाता है कि चालुक्य-वंश के राजा मानव्य गोत्री थे। सम्भव है कि मानव्यस् गोत्र के कुलगुरू के पूर्व के कुलगुरू हरितस् गोत्री होने से पूर्ववर्ती राजा अपने को हारीत गोत्री मानते हो। मानव्यगोत्री कुलगुरू के वंश का नाश हो जाने पर भारद्वाजगोत्री कुलगुरू के कारण इस वंश का भारद्वाज गोत्र हो गया यह बात चालुक्य वंशीय श्री सरदार ए० ए० पाटील, विश्राम-प्राप्त कलेक्टर, दमोह म० प्र० से विदित हुई। इस कारण यह अनुमान किया जा सकता है कि हारीत और मानव्य ये दोनों ऐतिहासिक राजा नहीं थे जैसा बिल्हण ने अपने महाकाव्य में दरसाया है। किन्तु ये दोनों चालुक्य वंशीय राजाओं के गोत्र थे और ताम्रपत्र तथा शिलालेखों में इन शब्दों को देखकर, इन्हें चालुक्यवंशीय राजा समझ कविराज बिल्हण ने इन दो पूर्ववर्ती राजाओं का उल्लेख कर दिया है।

कविराज बिल्हण ने हारीत और मानव्य राजाओं का संक्षिप्त वर्णन कर अपने महाकाव्य में पूर्ववर्ती राजाओं को छोड़कर राजा तैलप (द्वितीय) से वर्णन प्रारम्भ किया है। विक्रमादित्य (षष्ठ) का वर्णन करने में प्रवृत्त कविराज बिल्हण का पांच पीढ़ी पूर्व से चालुक्यवंशीय राजाओं का वर्णन करना अनुचित नहीं कहा जा सकता। उनका मुख्य ध्येय चालुक्यवंश का इतिहास न लिखकर बिक्रमादित्य (षष्ठ) का वर्णन करना ही था। परन्तु चालुक्यवंश का प्राचीन इतिहास लिखने वाले डा० आर० जी० भण्डारकर, श्री कृष्णस्वामी ऐयङ्गार सदृश

---

[1] विपक्षवीरादृभुतकीर्तिहारी हारीत इत्यादि पुमान्स यत्र।
मानव्य नामा च बभूव मानी मानव्ययं यः कृतवानरीणाम्॥
विक्रमाङ्कदेवचरितम् (१ सर्ग ५८ श्लोक)

[2] परिशिष्टम् "ग"

ऐतिहासिक विद्वानों का प्राचीन चालुक्यवंशीय राजाओं का उल्लेख न करना खटकता है। सम्भवतः उनको इन प्राचीन राजाओं के सम्बन्ध में अनेक ताम्रपत्र तथा शिलालेखों के रहने पर भी उनका पता न लगकर उन्होंने उन प्राचीन राजाओं का वर्णन न किया हो। म०-म० पं० श्री गौरीशंकर ओझा ने अपने "सोलंकियों का प्राचीन इतिहास" नामक पुस्तक मे ताम्रपत्र तथा शिलालेखों के आधार पर चालुक्यवंशीय प्राचीन राजाओं का वर्णन दिया है जो चालुक्यराज-अय्यणवंशचरित काव्य से मिलता है।

यथार्थ में प्राचीन कल्याणी चालुक्य वंश का इतिहास जो प्रकाशित है वह अपूर्ण है। इसकी पूर्ति करने में भारतीय शासन या कोई उत्साही धनी ऐतिहासिक ही समर्थ हो सकता है। भारतीय प्राचीन इतिहास के विद्वानों को अभी इसका पता नहीं है। यदि इस भूमिका को तथा द्वितीय भाग की भूमिका तथा परिशिष्टों को या "चालुक्यराज-अय्यण-वंशचरितम्" काव्य के प्रकाशित होने पर उसे पढ़ने पर कोई प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक इस ओर प्रवृत्त हो तो उसे सफलता और यश प्राप्त हो सकता है।

महाकवि बिल्हण विरचित विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य मे क्या महत्व है इसका पता अब प्रायः सभी संस्कृत के विद्वानों को लग चुका है। यदि कालिदास, भारवि, माघ आदि प्राचीन कवियों का एकत्र रसास्वाद लेना हो तो इस महाकाव्य में मिल सकता है। महाकवि बिल्हण की रचनाशैली निराली ही है। अनेक छन्द, विभिन्न अलङ्कार, जिनमें नवीनर उत्प्रेक्षाओं तथा रूपकों की भरमार, व्यञ्जना-व्यापार की विशेषतायें, अच्छी-अच्छी सूक्तियाँ आदि महाकाव्यों के गुणों से विभूषित इस महाकाव्य की जितनी प्रशंसा की जाए वह थोड़ी ही होगी।

विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य में ऐतिहासिक कथाभाग होने से यह ऐतिहासिक महाकाव्य माना गया है। संस्कृत साहित्य में यद्यपि अनेक पद्य-ऐतिहासिक काव्य तथा गद्य-ऐतिहासिक काव्य हैं किन्तु पद्य-ऐतिहासिक काव्यों में विक्रमाङ्कदेवचरित तथा गद्य-ऐतिहासिक काव्यों में हर्षचरित की अत्यधिक प्रसिद्धि है।

साहित्यदर्पण में महाकाव्य के लक्षण[१] बताए गए हैं। उनमें से प्रायः सभी लक्षण इस महाकाव्य में मिलते हैं।

विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य १८ सर्गों मे विभक्त है। प्रथम १७ सर्ग में चालुक्यवंश की उत्पत्ति और वंश में उत्पन्न कुछ प्राचीन राजाओं का वर्णन कर विक्रमादित्य (षष्ट) अर्थात् विक्रमाङ्कदेव का विस्तार से वर्णन किया गया है। ये ही इस महाकाव्य के नायक हैं। अन्तिम १८ वे सर्ग मे महाकवि ने अपने वंश, स्थान आदि का वर्णन करते हुए काश्मीरदेश और उसके शासक राजाओं का भी वर्णन दिया है।

विक्रमादित्य (पष्ठ) धीरोदात्त गुण से युक्त सद्वंश में उत्पन्न क्षत्रिय इसका नायक है। साहित्यदर्पण में बताया गया है)

---

[१] सर्गबन्धों महाकाव्य तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोपि वा।
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोङ्गी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकञ्च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणवर्णनम्।
एक-वृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनी प्रादोषध्वान्तवासरः।
प्रातर्मध्याह्न-मृगया-शैलर्तुवनसागराः।
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः।
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अपि इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु।

साहित्यदर्पण ३१५-३२७ श्लोक

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्वः ।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः ॥

अर्थात् अपने कामों की शेखी न करने वाला, क्षमावान्, अत्यन्त गम्भीर, महाबलशाली, विपत्तियों से न घबड़ाने वाला, हार्दिक भावों को प्रकट न होने देनेवाला, और दृढव्रत ये धीरोदात्त नायक के लक्षण हैं।

इस महाकाव्य का परिशीलन करने से यह सिद्ध हो जाता है कि ये सभी गुण विक्रमादित्य (षष्ठ) में विद्यमान थे।

गौड़, आसाम, काञ्ची, केरल, मलयप्रदेश, चक्रकोट, द्राविड आदि देशों के राजाओं को युद्ध में जीत कर कल्याणपुर में लौटने वाले विक्रमादित्य (षष्ठ) ने कहीं भी अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं की है। प्रत्युत द्रविड राजा के दूत के आने पर उसके सामने "मैंने[1] राजा की सुजनता को न समझ अपने धनुष से जो जो क्रूर काम किये हैं उसके लिये मैं लज्जित हूँ।" यही उत्तर दिया है। जयकेशी, आलुपेन्द्र, द्राविडराज, आदि के शरण आने पर उनको क्षमा कर दिया था। अपने बड़े भाई सोमेश्वर तथा छोटे भाई को युद्ध में पकड़ लेने पर भी उनको पुनः सब राज्य देने के लिये तैयार हो गया था[2]। अपने छोटे भाई सिंहदेव या जयसिंह के दुर्नयों को उसने क्षमा[3] ही किया।

उसके अति गम्भीर होने के उदाहरण सर्वत्र महाकाव्य में मिलते हैं। चन्द्रलेखा की सूचना मिलने पर उसने अपने हृदय के भावों को प्रकट

---

[1] ईदृशीं सुजनतामजानता कार्मुकेण मुखरत्वमत्र मे ।
यत्कृतं किमपि तेन लज्जया भारती कथमपि प्रवर्तते ॥
सर्ग ५ श्लो० ५०

[2] वितरितुमिवमग्रजस्य सर्वं पुनरुपजातमतिः स राजपुत्रः ।
सर्ग ६ श्लो० ९३

[3] तस्य दुर्नयपरम्परामसौ चक्षमे चिरतरं क्षमापतिः ।
तादृशैरमलसत्त्वराशिभिः स्पर्धितुं जलधयोऽपि नेश्वराः ।
सर्ग १४ श्लो० ५५

होने नहीं दिया[1]। सिंह देव के दुर्नयों की गुप्तचर से भयंकर सूचना मिलने पर भी उसने कोई उत्तर नहीं दिया[2]।

सामने से और पीछे से सोमेश्वर तथा द्रविड़ राजा की सेना के आक्रमण करने पर भी वह विचलित नहीं हुआ[3]। अपने पिता आहवमल्ल के युवराज पद के लिये अनेक प्रकार से प्रलोभित करने पर भी वह स्थिर ही रहा।

इसके महासत्व होने के सम्बन्ध में महाकाव्य में वर्णित अनेक युद्ध ही प्रमाण हैं।

इसके भावगोपन का वर्णन चन्द्रलेखा की सूचना मिलने पर कवि ने किया[4] है। अनेक युद्धों की मानसिक चिन्ता होने पर भी उसका पता किसी को न चल सका।

दृढव्रत होने का प्रत्यक्ष उदाहरण, पिता राजा आहवमल्लदेव के अनेक प्रलोभनों के साथ युवराजपद लेने का आग्रह करने पर भी उसके इस दुराग्रह की निन्दा करते हुए युवराज पद स्वीकार न करना सिद्ध[5] करता है।

---

[1] सर्ग ९ श्लो० १३

[2] इत्युदीर्य विरते विशारदे तत्र शारदमृगाङ्कनिर्मलः।
नाम्यधत्त सहसा किमप्यसौ न त्वरां वधति धीरचेतसः॥
सर्ग १४ श्लो० १४

[3] प्राप्यमप्यनयपङ्कशङ्कित-स्तद्बलं न सहसा जघान सः।
अप्रतर्क्यं भुजवीर्यशालिनः संकटेऽप्यगहनास्तथाविधाः।
परिभाव्य नितान्तभैरव तदतिक्रान्तदिगन्तरं बलम्।
कतरो न जगाम संभ्रमं मुमुचे कुन्तलपार्थिवः परम्॥
सर्ग ५ श्लो० ६ तथा सर्ग १५ श्लो० ४२

[4] अब्रवीच्चमनसः प्रसन्नतां दन्तकान्तिभिरुदीरयन्निव।
ओष्ठपृष्ठलुठितस्मिताञ्चलः कुन्तलीनयनपूर्णचन्द्रमाः।
सर्ग ५ श्लो० ५९

[5] चालुक्यवंशोऽपि यदि प्रयाति पात्रत्वमाचारविपर्ययस्य।
अहो महद्वैशसमाः किमन्यदनङ्कुशोऽभूत्कलिकुञ्जरोऽयम्॥
इत्यादिभिश्चित्रतरैर्वचोभिः कृत्वा पितुः कौतुकमुत्सवं च।
अकारयज्ज्येष्ठमुदारशीलः स यौवराज्यप्रतिपत्तिपात्रम्॥
सर्ग ३ श्लो० ३६ तथा ५५

इस महाकाव्य में वीररस अङ्गी है और शृङ्गार आदि रस अङ्ग हैं। महाकवि बिल्हण ने इसका आशीर्वादात्मक मङ्गल[1] किया है और उसीसे इस महाकाव्य का वीररस प्रधान होना संकेतित किया है। महाकाव्य में सर्वत्र ही अनेक युद्धों का वर्णन, वीररस की प्रधानता सिद्ध करता है। यह पूर्व में ही कहा जा चुका है कि यह ऐतिहासिक महाकाव्य है और इसमें चालुक्यवंशीय ऐतिहासिक राजा विक्रमादित्य (षष्ठ) का वर्णन है। महाकवि बिल्हण ने इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग में ही खलों[2] की निन्दा और सज्जनों[3] का वर्णन किया है। इसके सर्ग व बहुत बड़े हैं न बहुत छोटे हैं। प्रत्येक सर्ग एक छन्द में प्रारम्भ होता है और उसमें अन्त में विभिन्न छन्द हैं। इसके अठारहवे सर्ग में अनेक वृत्तों की झलक दीख पड़ती है!

इसके ११ वे सर्ग में सन्ध्या और सूर्य का, ग्यारहवे, चौदहवे तथा पन्द्रहवे सर्गों में चन्द्र का, सोलहवे सर्ग मे रात्रि तथा प्रदोष का, ग्यारहवे सर्ग में अन्धकार का, एकादश तथा त्रयोदश सर्गों में दिवस तथा प्रातःकाल का, सत्रहवे सर्ग में वन, पर्वत व मृगया का, द्वितीय सर्ग में नगर का, द्वितीय, तृतीय तथा सत्रहवे सर्ग में पुत्रोत्पत्ति का, द्वितीय सर्ग में यज्ञ तथा तपस्या का, तृतीय, चतुर्थ, षष्ठ, सप्तम, चतुर्दश तथा सप्तदश सर्गों में युद्धयात्रा का, नवम तथा त्रयोदश सर्गों में विप्रलम्भ का, दशम सर्ग में सम्भोग का, तथा अन्य सभी महाकाव्य के लिए आवश्यक विषयों का वर्णन यत्र तत्र अत्यन्त रोचकता से किया गया है।

ऋतुओं का वर्णन तो अत्यन्त ही मनोहरता से किया गया है। वसन्त ऋतु का वर्णन सप्तम तथा दशम सर्गों में, ग्रीष्म ऋतु का द्वादश

---

[1] भुजप्रभादण्ड इवोर्ध्वगामी स पातु वः कंसरिपोः कृपाणः।
यः पाञ्चजन्यप्रतिबिम्बभङ्ग्या धाराम्भसः फेनमिव व्यनक्ति ॥
सर्ग १ श्लो० १

[2] न दुर्जनानामिह कोऽपि दोषस्तेषां स्वभावो हि गुणासहिष्णुः।
द्वेष्यैव केषामपि चन्द्रखण्डविपाण्डुरा पुण्ड्रकशर्कराऽपि ॥
सर्ग १ श्लो० २०

[3] कथासु ये लब्धरसाः कवीनां ते नाऽनुरज्यन्ति कथान्तरेषु।
न ग्रन्थिपर्णप्रणयाश्चरन्ति कस्तूरिकागन्धमृगास्तृणेषु ॥
सर्ग १ श्लो० १७

सर्ग में, वर्षा ऋतु का तेरहवे सर्ग में, शरद् ऋतु का चौदहवे सर्ग में और हेमन्त ऋतु का वर्णन सोलहवे सर्ग में विस्तार से किया गया है।

कुछ लोगों का कहना है कि महाकवि बिल्हण ने महाकवि कालिदास के काव्यों से बहुत सा मसाला लिया है। परन्तु यह आक्षेप व्यर्थ है। बिना प्राचीन काव्यों के पढ़े कोई भी विद्वान् कवि नहीं हो सकता। क्या महाकवि कालिदास के काव्यों में वाल्मीकि विरचित रामायण का अनुकरण नहीं है ? प्राचीन पढ़े काव्यों के भाव हृदय में जमे रहते हैं और वे अपने आप समय पर प्रबुद्ध हो जाते हैं। इससे उन काव्यों में से विषय चुराया गया या अनुकरण किया गया, यह नहीं कहा जा सकता। बिल्हण कवि ने तो स्वयं ऐसे चुराने वाले कवियों के सम्बन्ध में कहा[१] है कि "हे श्रेष्ठ कवियों ! साहित्य रूपी समुद्र के मंथन करने अर्थात् चिरकाल तक अभ्यास करने से उत्पन्न और कान को सुख देने वाले काव्य रूपी अमृत की सदैव रक्षा करते रहिए। क्योंकि इस काव्य रूपी अमृत की चोरी करने के लिये, समुद्रमन्थन के समय अमृत की चोरी करने में लालायित दैत्यों के समान बहुत से काव्य रूपी धन के चोर एकत्र हो गए हैं। अथवा काव्यार्थ के चोर, काव्य रूपी द्रव्य की यथेच्छ चोरी करते रहें इसमें श्रेष्ठ कवियों की कोई क्षति नहीं है। देवताओं ने समुद्र में से बहुत से रत्न निकाल लिये तो भी समुद्र अभी भी रत्नाकर ही कहा जाता है"। ऐसी परिस्थिति में कविराज श्री बिल्हण पर ऐसा आक्षेप करना निर्मूल है। विषय की समानता की दृष्टि से विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य मे और महाकवि कालिदास के काव्यों में भावों की तथा उक्तियों की समानता दीख पड़ना स्वाभाविक है। जैसे–विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य के द्वितीय सर्ग का राजा आहवमल्लदेव की तपस्या का वर्णन, महाकवि कालिदास के कुमारसम्भव महाकाव्य में वर्णित पार्वती की तपस्या के वर्णन से मिलता जुलता है। राजा विक्रमाङ्कदेव का दिग्विजय वर्णन

---

[१] साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थं कर्णामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः।
यदस्य दैत्या इव लुण्ठनाय काव्यार्थचौराः प्रगुणीभवन्ति ॥
गृह्णन्तु सर्वे यदि वा यथेष्टं नास्ति क्षतिः काऽपि कवीश्वराणाम्।
रत्नेषु लुप्तेषु बहुष्वमर्त्यैरद्यापि रत्नाकर एव सिन्धुः ॥
विक्रमाङ्कदेवचरित सर्ग १ श्लो० ११, १२

महाकवि कालिदास के रघुवंश महाकाव्य के रघुराजा के दिग्विजय के वर्णन से सादृश्य रखता है। इस महाकाव्य के नवम सर्ग में वर्णित विद्याधर राजकन्या चन्दलदेवी का स्वयम्वर वर्णन महाकवि कालिदास के रघुवंश महाकाव्य के इन्दुमति स्वयम्वर से अत्यधिक सादृश्य रखता है।

कालिदास के रघुवंश के अधोलिखित श्लोक

लोकान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम्।
सन्ततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे ।।

रघुवंश सर्ग १ श्लो० ६९

के भाव को बिल्हण ने अपने महाकाव्य में अधोलिखित श्लोक में कैसे प्रौढिप्रकर्ष से प्रकट किया है।

किमश्वमेधप्रभृतिक्रियाक्रमैः सुतोऽस्ति चेन्नोभयलोकबान्धवः।
ऋणं पितॄणामपनेतुमक्षमाः कथं लभन्ते गृहमेधिनः शुभम् ।।

विक्रमाङ्कदेवचरित सर्ग २ श्लो० ३४

इसी प्रकार रघुवंश के और विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य के अधोलिखित श्लोकों में बहुत सादृश्य अवगत होता है। पिता आहवमल्ल देव के युवराज पद देने के आग्रह को न मानने वाला विक्रमाङ्कदेव कहता है—

चालुक्यवंशोऽपि यदि प्रयाति पात्रत्वमाचारविपर्ययस्य।
अहो? महद्वैशसमाः किमन्यदनङ्कुशोऽभूत्कलिकुञ्जरोऽयम्।।

विक्रमाङ्कदेवचरित सर्ग ३ श्लो० ३६

रघुवंश में राजा दिलीप के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को ले जाने वाले इन्द्र के प्रति राजा रघु कहते हैं—

त्रिलोकनाथेन सदा मखद्विषस्त्वया नियम्या ननु दिव्यचक्षुषा।
न चेत्स्वयं कर्मसु धर्मचारिणां त्वमन्तरायो भवसि च्युतो विधिः ।।

रघुवंश सर्ग ३ श्लो० ४५

भावों का सादृश्य विभिन्न वर्णन शैली में प्रायः सभी महाकाव्यों में मिलता है। जैसे-

गिरां प्रवृत्तिर्मम नीरसाऽपि मान्या भवित्री नृपतेश्चरित्रैः ।
के वा न शुष्कां मृदमभ्रसिन्धुसम्बन्धिनीं मूर्धनि धारयन्ति ॥
विक्रमाङ्कदेवचरित सर्ग १ श्लो० २८

पवित्रमत्रातनुते जगद्युगे स्मृता रसक्षालनयेव यत्कथा ।
कथं न सा मद्गिरमाविलामपि स्वसेविनीमेव पवित्रयिष्यति ॥
नैषधचरित सर्ग १ श्लो० ३

इसी प्रकार—

अब्धिषु स्थलपथीकृतेषु नः पूर्यते जवविधौ कुतूहलम् ।
इत्यकुर्वत दिगन्तगोचरं नूनमस्य तुरगाः क्षमारजः ॥
विक्रमाङ्कदेवचरित सर्ग १४ श्लो० ६२

प्रयातुमस्माकमियं कियत्पदं धरा तदम्भोधिरपि स्थलायताम् ।
इतीव वाहैर्निजवेगगर्वितैः पयोधिरोधक्षममुत्थितं रजः ॥
नैषधचरित सर्ग १ श्लो० ६९

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में अनुकरण कहा जाय या सादृश्य कहा जाय, अवश्य है ।

वामन ने काव्य की चार रीतियों में वैदर्भी रीति को श्रेष्ठ माना है । महाकवि बिल्हण ने वैदर्भी रीति का वर्णन इस प्रकार किया है–

अनभ्रवृष्टिः श्रवणामृतस्य सरस्वतीविभ्रमजन्मभूमिः ।
वैदर्भरीतिः कृतिनामुदेति सौभाग्यलाभप्रतिभूः पदानाम् ॥
सर्ग १ श्लो० ९

अर्थात् वैदर्भिरीति का अविर्भाव उत्कृष्ट और अच्छे काव्य की रचना करने में कुशल तथा पुण्यात्मा कवियों में ही होता है । यह वैदर्भी रीति श्रवण को आनन्द देने वाले अमृत की बिना मेघ की वृष्टि है, वाणी के विलास का जन्मस्थान है और पदों को कविता में यथोचित स्थान प्राप्त होकर उनके सौन्दर्यवृद्धि की जमानत करने वाली है ।

महाकवि बिल्हण ने अपने महाकाव्य में सर्वत्र इसी वैदर्भिरीति का ही अवलम्बन किया है ।

महाकवि बिल्हण की उत्तम कवि होने की प्रसिद्धि १८७५ ई० में डा० जॉर्ज व्यूह्लर द्वारा विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य के प्रकाशित होने के बाद में हुई, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसकी बनाई चौरपञ्चाशिका या चौरीसुरतपञ्चाशिका तथा कर्णसुन्दरीनाटिका, पहिले से ही बड़ी प्रसिद्धि थी। सुभाषित ग्रन्थों में बिल्हण के नाम से अनेक श्लोक दिये हैं। कविराज जल्हण विरचित सूक्तिमुक्तावली नामक सुभाषित-संग्रह-ग्रन्थ में महाकवि बिल्हण विरचित १०८ श्लोक हैं। ये सभी श्लोक उत्तम कोटि के हैं और महाकवि कालिदास के श्लोकों से टक्कर लेने वाले हैं।

कश्मीर में प्राप्त चौरपञ्चशिका नामक ५० श्लोकों के काव्य में आदि में अधोलिखित दो श्लोक मिलते हैं-

सर्वस्वं गृहवर्ति कुन्तलपतिर्गृण्हातु तन्मे पुन-
भाण्डागारमखण्डमेव हृदये जागर्ति सारस्वतम्।
रे क्षुद्रास्त्यजत प्रमोदमचिरादेष्यन्ति मन्मन्दिरं
हेलान्दोलितकर्णतालकरटिस्कन्धाधिरूढाः श्रियः ॥१॥

तथा—

अयि किमनिशं राजद्वारे समुद्धरकन्धरे
कुवलयदलस्निग्धे मुग्धे विमुञ्चसि लोचने।
अमररमणीलीलावल्गद्विलोचनवागुरा-
विषयपतितो न व्यावृत्तिं करिष्यति बिल्हणः ॥२॥

इन दो श्लोकों पर से ऐसा अनुमान होता है कि महाकवि बिल्हण और राजा विक्रमाङ्कदेव का कभी विरोध हुआ था। प्राचीन काल में राजाश्रित राजपण्डित नूतन अच्छे विद्वान् का भी अपने स्वार्थ की दृष्टि से राजसभा में प्रवेश नहीं होने देते थे। राजा भी अपने पण्डितों के विश्वास से कभी २ गलती कर जाते थे। किन्तु राजाओं के गुणसम्पन्न होने से बाद में उन्हें इस षड्यन्त्र का पता लग जाने पर वे नूतनागत विद्वान् का अधिक आदर व सत्कार करते थे। सम्भव है कि ऐसी ही कुछ घटना भई हो जिस कारण महाकवि बिल्हण तथा राजा विक्रमाङ्कदेव का वैमनस्य हो गया हो और उसी समय में बिल्हण ने ये श्लोक बनाए हों।

श्रीकृष्णम्माचारियर महोदय का यह कथन कि यह वैमनस्य विक्रमाङ्कदेवचरित की पूर्ण रचना होने से पूर्व ही हुआ है, अत एव यह महाकाव्य अधूरा है। क्योंकि इसमें विक्रमाङ्कदेव का नर्मदा के पार का आक्रमण जो १०८५ में हुआ, वर्णित नहीं है। श्रीकृष्णम्माचारियर की यह उक्ति सर्वथा असङ्गत है। महाकाव्य का सूक्ष्म निरीक्षण करने से यह काव्य अधूरा नहीं सिद्ध हो सकता। ई० १०८५ के पूर्व में ही पूर्ण भये इस महाकाव्य में ई० १०८५ की घटना कैसे आ सकती थी। पहिले १७ सर्गों में बिल्हण ने विक्रमाङ्कदेव का चरित लिखकर अन्त के १८ वें सर्ग में अपना वर्णन किया है। काव्य के अन्त में कवि ने कहा भी है—

हे राजानस्त्यजत सुकविप्रेमबन्धे विरोधं
शुद्धा कीर्तिः स्फुरति भवतां नूनमेतत्प्रसादात्।
तुष्टैर्बद्धं तदलघु रघुस्वामिनः सच्चरित्रं
रुष्टैर्नीतस्त्रिभुवनजयी हास्यमार्गं दशास्यः॥

विक्रमाङ्कदेवचरित सर्ग १८ श्लो० १०७.

अर्थात् हे राजा लोग। अच्छे काव्य की रचना करने वाले कवियों द्वारा प्रदर्शित या अच्छे कवि के सम्बन्ध में स्नेह-बन्धन करने में द्वेष मत करो। इन अच्छे कवियों की कृपा से निश्चय ही आप लोगों की कीर्ति फैलती है। प्रसन्न कवियों ने रामचन्द्र का वह प्रसिद्ध सच्चरित्र महत्वशाली बना दिया और क्रुद्ध होने पर उन्होंने तीनों लोकों को जीतने वाले रावण को हास्यास्पद या घृणा का पात्र बना दिया।

परन्तु यह उक्ति सामान्य है और सर्व राजाओं के लिए लागू हो सकती है। ठीक इसी प्रकार की उक्ति आरम्भ में भी है—

पृथ्वीपतेः सन्ति न यस्य पार्श्वे कवीश्वरास्तस्य कुतो यशांसि।
भूपाः कियन्तो न बभूवुरुर्व्यां जानाति नामाऽपि न कोऽपि तेषाम्॥
लङ्कापतेः सङ्कुचितं यशो यद् यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः।
स सर्व एवादिकवेः प्रभावो न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः॥

विक्रमाङ्कदेवचरित सर्ग १ श्लो० २६-२७.

अर्थात् जिस राजा के दर्बार में अच्छे कवि नहीं हैं उसका यश कहाँ

से फैल सकता है। इस पृथ्वी पर क्या कितने ही राजा ऐसे नहीं हुए हैं जिनका नाम भी कोई नहीं जानता।

रावण की कीर्ति जो नहीं फैल सकी अर्थात् नष्ट हो गई और दशरथ जी के पुत्र रामजी जो कीर्ति के पात्र हुए, यह सब आदि कवि बाल्मीकि का ही प्रताप है। इसलिये राजाओं को कभी भी कवियों को कुपित न करना चाहिये।

परन्तु अधोलिखित

दिङ्मातङ्गैरपि सपुलकैः शुश्रुवे यस्य कीर्ति-
निंद्रामुद्राप्रणयिषु मदास्वादतः षट्पदेषु।
तेन प्रीत्या विरचितमिदं काव्यमव्याजकान्तं-
कर्णाटेन्दोर्जगति विदुषां कण्ठभूषात्वमेतु॥

अर्थात् भौरों के दिग्गजों के मदजल का पान कर नशे से सूत जाने पर उनका झङ्कार बन्द हो जाने से हर्षभरे रोमाञ्चित दिग्गजों से भी जिसका यश सुना गया, उस बिल्हण कवि ने कर्नाट देश के राजा विक्रमाङ्कदेव के प्रेम से बनाया हुआ यह स्वभावतः सुन्दर काव्य संसार में विद्वानों का कण्ठभूषण हो।

अठारहवे सर्ग के १०२ संख्याक उपर्युक्त श्लोक से इस महाकाव्य का अपूर्ण होना या काव्य की पूर्ति के पूर्व ही विक्रमाङ्कदेव तथा महाकवि बिल्हण का वैमनस्य होना कदापि सिद्ध नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार अठारहवे सर्ग के अधोलिखित

नीलच्छत्रोन्मदगजघटापात्रमुत्त्रस्तचोला—
चालुक्येन्द्रादलभत कृती योऽत्र विद्यापतित्वम्।
अस्मिन्नासीत्तदनु निविडाश्लेषहेवाकलीला—
वेल्लद्बाहुक्वणितवलया संततं राज्यलक्ष्मीः॥

अर्थात् कार्यकुशल बिल्हणकवि ने दक्षिणदिशा में चोलदेश के राजा को भयभीत करने वाले चालुक्यराज विक्रमाङ्कदेव से काले रंग के छत्र तथा मदोन्मत्त हाथियों के समुह का और विद्यापतिपद प्राप्त किया। इसके अनन्तर बिल्हणकवि के पास गाढ़ आलिङ्गन के

औत्सुक्य-विलास से युक्त, दोनों बाहुओं के शब्दायमान कङ्कणों को धारण करने वाली राजलक्ष्मी सतत निवास करती थी।

इस अठारहवे सर्ग के १०१ संख्याक श्लोक से तो विक्रमाङ्कदेव से विद्यापति की उपाधी पाने के बाद कविराज बिल्हण से किसी प्रकार का वैमनस्य अन्त तक नहीं हुआ, इस बात की स्पष्ट ध्वनि होती है।

"इण्डियन[१] एण्टिक्वेरी" के सम्पादक महोदय ने बिल्हण कवि के सम्बन्ध में लिखा है। "बिल्हण श्लेषालङ्कार का परम उपासक था। अनुप्रास से उसका बहुत प्रेम था। मध्यकालिक कवियों के सदृश वह बहुत लम्बे-लम्बे समासों का प्रयोग करने वाला था। उसने अपने काव्य में बहुत सी प्रहेलिकाएँ लिखी है जो पाठकों को बहुत प्रिय मालुम होती हैं"।

यह इण्डियन एण्टिक्वेरी के सम्पादक की उक्ति महाकवि बिल्हण द्वारा प्रतिपादित रीति से सर्वथा विपरीत है, यह बात पाठकों को स्वयं अवगत हो सकती है। इस महाकाव्य में प्रहेलिका का तो नाम भी नहीं है। श्लेष सरल तथा रोचक हैं और वैदर्भी रीति के अनुकूल छोटे बड़े समास हैं। श्री ए० बी० कीथ[२] महोदय ने अपने संस्कृत-साहित्य के इतिहास में इस माहाकाव्य की यथार्थ समालोचना की है।

महाकवि बिल्हण इतनी उच्च कक्षा के कवि होने पर भी उनमें अभिमान की मात्रा बहुत कम थी। उन्होने अपनी विनयशीलता तथा अपने प्रिय राजा विक्रमाङ्कदेव (विक्रमादित्य षष्ठ) में दृढभक्ति तथा परमादर प्रकट करते हुए कहा[३] है कि "मेरी नीरस वाणी का व्यापाररूप यह महाकाव्य, राजा विक्रमाङ्कदेव के चरितों का इसमें वर्णन रहने के कारण अवश्य आदरणीय होगा। कौन मनुष्य गङ्गा की नीरस मिट्टी को अपने मस्तक पर नहीं लगाता। अर्थात् गङ्गा का सम्बन्ध रहने से गङ्गा की सूखी मिट्टी भी जैसे आदरणीय होती है वैसे ही महाराज विक्रमाङ्कदेव का सम्बन्ध रहने से मेरा नीरस काव्य भी आदरणीय होगा"।

---

१ इण्डियन एण्डिक्वेरी भाग ५ पृष्ठ ३२५।

२ History of Samskrit Lilterature, by keith. Page 156.

3 गिरां प्रवृत्तिर्मम नीरसाऽपि मान्या भवित्री नृपतेश्चरित्रैः।
के वा न शुष्कां मृदभ्रसिन्धु-सम्बन्धिनीं मूर्धनि धारयन्ति॥
विक्रमाङ्कदेवचरित सर्ग १ श्लोक २८

विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य के अन्तिम अठारहवे सर्ग में महाकवि बिल्हण ने अपना वर्णन करते हुए काश्मीर के राजाओं का भी संक्षिप्त वर्णन किया है। इससे विदित होता है कि काश्मीर में झेलम (वितस्ता) और सिन्धुनदी के संगम के पास पवित्र प्रवरपुर नाम का एक नगर है। उस नगर से तीन कोस की दूरी पर जयवन नाम का स्थान है। उस जयवन की सीमा पर खोनमुष नाम का गाँव है जहाँ केसर और अंगूर होते हैं। वहाँ कौशिक गोत्री ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण लोग निवास करते थे। कविराज बिल्हण का जन्म इसी वंश में हुआ था। इसके प्रपितामह मुक्तिकलश, पितामह राजकलश और पिता ज्येष्ठकलश नाम के थे। इसकी माता का नाम नागादेवी था। इसके पूर्वज धुरन्धर विद्वान् थे। ज्येष्ठकलश ने पतञ्जलि के महाभाष्य की टीका लिखी थी। यज्ञोपवीत होने के बाद ही से सरस्वती का निवास उसके मुख में था। साङ्गवेद, तथा अन्य शास्त्रों का भी उन्होंने अध्ययन किया था। साहित्यविद्या उसको प्राण के समान प्यारी थी। इसके बड़े भाई इष्टराम तथा छोटे भाई आनन्द भारी विद्वान् थे। काश्मीर में सकल विद्याओं का अध्ययन पूर्ण कर बिल्हणकवि विदेशयात्रा के लिए १०६२-६५ के मध्य में चल पड़े। यमुना नदी के मार्ग से चलकर ये मथुरा में आए। वहाँ विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त कर कुछ दिन वृन्दावन में निवास किया। वहाँ से निकल कर कन्नौज के पण्डितों को शास्त्रार्थ में परास्त करते हुए प्रयाग में पहुँचे। वहाँ से निकल कर काशी आए। यहाँ से अयोध्या गए। डाहलाधीश कर्ण के राज्य के प्रसिद्ध विद्वान् गङ्गाधर को शास्त्रार्थ में पराजित किया। कर्ण राजा के राज्य से चलकर वे राजा भोज की राजधानी धारा नगरी को देखने के लिए गए। राजा भोज का उस समय स्वर्गवास हो चुका था। धारा से चलकर गुर्जरदेश में आए और वहाँ सोमनाथ महादेव का दर्शन किया। वहाँ से चल कर वे दक्षिण भारत में पहुँचे। सेतुबन्ध रामेश्वर तक यात्रा कर वे कल्याणनगर में आए। वहाँ चालुक्यवंशीय विक्रमादित्य षष्ठ से विद्यापति की उपाधि प्राप्त कर वे अन्त तक वहीं रहे। इन्होंने विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य की रचना १०८५ ई० तक पूर्ण कर डाली थी।

विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य के इस तृतीय भाग के सर्गों में कथा भाग संक्षेप में इस प्रकार है।

चतुर्दश सर्ग में—

वर्षाऋतु के अन्त में किसी गुप्तचर ने आकर विक्रमाङ्कदेव राजा से कहा कि आप ने दयाकर अपने छोटे भाई सिंहदेव वा जयसिंह को वनवासमण्डल का अधिकारी बना दिया है। परन्तु उसकी मति बदल गई है और वह आपके दिये गन्धसिन्धुरों के बल पर द्राविड़ राजा से सन्धिकर आपही पर आक्रमण करना चाहता है और थोड़े ही दिनों में आप सुनेंगे कि वह आक्रमण के उद्देश से कृष्णा नदी के किनारे पर पहुँच गया है। यह गुप्तचर की खबर सुनकर राजा विक्रमाङ्कदेव को बहुत दुःख हुआ। बाद में अन्य गुप्तचरों से वे बातें पुष्ट कर उसके मन में बड़ा पश्चात्ताप हुआ। इसके अनन्तर महाकवि ने शरदृतु का बड़ा ही मनोरंजक वर्णन किया है। इसी प्रसंग में चन्द्रमा को देख विरहिणियों की विभिन्न उक्तियां बड़ी ही आल्हादकारक तथा मार्मिक हैं। राजा विक्रमाङ्कदेव को छोटे भाई के अनुचित व्यवहार से शरत्काल आनन्दित न कर सका। उसने अनेक सान्त्वना के संदेश उसके पास भेजे और राज्य भी उसे दे देने के लिए कहलाया परन्तु उसने एक न मानी। बहुत से मण्डलेश्वर, सिंहदेव से जा मिले और वह कृष्णा नदी पर आ धमका और अनेक अनुचित सन्देश राजा विक्रमादित्य के पास भेजे। उसके अनुचित व्यवहारों से चीढ़ कर राजा विक्रमाङ्कदेव भी अपनी सेना के साथ चल पड़ा। राजा विक्रमाङ्कदेव की चतुरङ्ग सेना का वर्णन महाकवि ने बड़े ही विस्तार से किया है। कृष्णा नदी के किनारे पहुँचने पर भी राजा विक्रमाङ्कदेव ने उसे समझाने का प्रयत्न किया परन्तु वह निष्फल हुआ।

पन्द्रहवे सर्ग में—

राजा विक्रमाङ्कदेव की रण दुन्दुभि, घोड़े, हाथियों का वर्णन कर महाकवि ने युद्ध के लिये हाथी पर राजा का सवार होना बड़ी ही सुन्दरता से वर्णित किया है। राजा के, आगे युद्ध की ओर बढ़ने पर महाकवि ने सिंहदेव के हाथियों, घोड़ों, और पदातियों का विस्तृत वर्णन किया है। युद्ध छिड़ जाने पर विक्रमाङ्कदेव की सेना शत्रुसेना से मर्दित हो घबड़ा उठी। तब राजा विक्रमाङ्कदेव ने अपने हाथी को आगे बढ़ाया और घोर संग्राम किया। किसी की भी इसके सामने ठहरने

की शक्ति न रही और देवताओं ने आकाश से पुष्पवृष्टि की। महाकवि ने इस युद्ध में मारे गए वीरों की पत्नियों का विलाप संक्षेप में बहुत ही मार्मिकता से वर्णित किया है। इसकी अमोघ मार से सब शत्रु की पल्टनें भाग गईं और अपने छोटे भाई के पकड़ जाने पर उससे बातें कर और साहस देकर विदा किया और राजा विक्रमाङ्कदेव अपने रनिवास के साथ सकुशल अपनी राजधानी में लौट पड़ा।

सोलहवे सर्ग में—

महाकवि ने हेमन्त ऋतु का चित्ताकर्षक बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। राजा की मृगयायात्रा का वर्णन तो अनुपम है। इस प्रसङ्ग में शिकारी कुत्ते का सिकड़ी समेत सूअरों पर दौड़ पड़ना और पेड़ में सिकड़ी फॅस जाने से उसका उछल २ कर चिल्लाना हास्यरस का द्योतक है। कुछ काल तक विहार कर राजा विक्रमाङ्कदेव अपने रनिवास के साथ पुनः नगर में लौट आया।

सत्रहवे सर्ग में—

राजा विक्रमाङ्कदेव का दान धर्म वर्णन कर उसके राज्यव्यवस्था की रामराज्य से सदृशता वर्णित की है। उसकी प्रजा हर प्रकार से प्रसन्न व निश्चिन्त थी। उसके पुत्र बड़े ही सुन्दर और पिता के सदृश थे। इसके सुवर्णदान का कविकृत-वर्णन पढ़ते ही बनता है। कलियुग का उसके राज्य में कहीं प्रवेश भी नहीं हो सकता था। विक्रमाङ्कदेव राजा के द्वारा निर्मापित विष्णुभगवान् के मन्दिर का तथा उस मन्दिर के सामने विनिर्मित एक बड़े तालाव का बड़ा ही उत्कृष्ट वर्णन किया गया है। आगे ब्राह्मणों के निवासस्थानों से घिरे राजा के नगर का वर्णन अत्यन्त मनोहर है। काञ्ची का चोल राजा वड़ा अभिमानी हो गया है, यह खबर पाकर राजा ने उसपर आक्रमण कर दिया। युद्ध का विस्तार से वर्णन कर युद्ध में मरे वीरों को अपना पति बनाने के ध्येय से आई हुई अप्सराओं का बढ़ा ही मनोरंजक वर्णन है। अन्त में चोल राजा को परास्त कर काञ्ची लेकर और उसमे कुछ दिन विनोद कर राजा विक्रमाङ्कदेव अपने नगर में लौट आया।

अठारहवे सर्ग में—

महाकवि बिल्हण ने काश्मीर के प्राचीन राजाओं के संक्षिप्त वर्णन

के साथ काश्मीर के विभिन्न प्रसिद्ध स्थानों का और अपने वंश के वर्णन के साथ अपना भी वृतान्त लिखा है। जेहलम और वितस्ता नदियों के संगम के पास के प्रवरपुर नगर का वर्णन करते हुए कहा है कि यहाँ की स्त्रियाँ भी संस्कृत और प्राकृत में मातृभाषा के समान वार्तालाप करती थीं। प्रवरपुर के आस पास के पवित्र स्थानों का वर्णन करते हुए मधुमती नदी, भट्टारकमठ, प्रद्युम्नक्षितिधर (सारिका पर्वत) राजा हलधर के बनवाए अनेक अग्रहार, क्षेमगौरीश्वरमन्दिर, संग्राम राजा का बनवाया संग्राममठ, चन्द्रसीमाप्रदेश, अनन्त राजा रचित अनेक अग्रहार, रानी सुभटा देवी का बनवाया महादेव के मन्दिर के पास का गङ्गधाम, प्रवरेश्वर मन्दिर, तथा काश्मीर के राजाओं के महलों का अच्छा वर्णन किया है। अनन्तदेव राजा का चम्पा, त्रिगर्त तथा दार्वाभिसार का विजय-वर्णन, इसकी रानी सुभटा की दानशीलता, उसके भाई लौहर दुर्गाधिप क्षितिधर का विद्यानुराग तथा राजपुरी विजय, अनन्त के पुत्र कलशराजा का अच्छोद सरोवर पर जाना, अलका से लौटते हुए मानससरोवर यात्रा, बालुकाब्धि के पार जाकर स्त्रीराज्य का विजय, चन्द्रभागा और यमुना के पार जाकर कुरुक्षेत्र में आगमन तथा विजय, कलश पुत्र हर्षदेव का विद्यानुराग, उसके भाई उत्कर्षदेव का लोहरदुर्ग-विजय, तथा म्लेच्छों का नाश, वर्णन कर, हर्षदेव के तृतीय भ्राता विजयमल्ल का वर्णन है। प्रवरपुर से तीन कोस पर जयवन तथा उसके पास के खोनमुष नामक पवित्र गांव का वर्णन कर उसे महाकवि ने अपनी जन्मभूमि बताई है। वहाँ कौशिक गोत्री विद्वान् धार्मिक ब्राह्मणों के कुल में इसका जन्म हुआ था। इसके प्रपितामह मुक्तिकलश, पितामह राजकलश और पिता ज्येष्ठकलश थे। माता का नाम नागादेवी था। इसके बड़े भाई इष्टराम और छोटे भाई आनन्द भारी विद्वान् थे। सब विद्याएँ वहाँ पढ़ कर वे यात्रा के लिए निकले। मथुरा, वृन्दावन, कान्यकुब्ज, प्रयाग, काशी, अयोध्या, धारा, गुर्जरदेश, सोमनाथ मन्दिर आदि स्थानों में पाण्डित्य प्रकर्ष से सम्मान प्राप्त कर, ये दक्षिण भारत में गए। रामेश्वर तक की यात्रा कर कल्याण नगर में जा बसे। वहीं पर राजा विक्रमाङ्कदेव से विद्यापति की उपाधि प्राप्त कर विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य की रचना की। अन्तिम श्लोकों में कवियों का आदर करने का उपदेश राजाओं को कर, कवि ने एक बार काश्मीर जाने की इच्छा प्रकट करते हुए अन्तिम समय गङ्गानदी के तट पर निवास कर, बिताने का अपना मनोदय प्रकट किया है।

विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य के इस तृतीय भाग में प्रारम्भ में समर्पण में श्री पितृपाद महामहोपाध्याय प्रातःस्मरणीय श्री दामोदर शास्त्री भारद्वाज, वैयाकरणकेसरी का चित्र दिया गया है। अन्त में परिशिष्ट "क" में १४ से १८ सर्गों में आई हुई सूक्तियाँ, परिशिष्ट "ख" में इन पाँच सर्गों के श्लोकों की अकारादिक्रम से सूची, परिशिष्ट "ग" में विक्रमादित्य (षष्ठ) का नीलगुण्ड-ताम्र शासन तथा परिशिष्ट "घ" में इन सर्गों में आए हुए विशिष्ट शब्दों की अकरादि क्रम से सूची दी गई है। सूज्ञेषु किमधिकम्।

सबत् २०२०   विश्वनाथशास्त्री भारद्वाज
महाशिवरात्रिः

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

॥ श्रीः ॥

महाकविश्रीबिल्हणविरचितं

विक्रमाङ्कदेवचरितम्

चतुर्दशः सर्गः

वार्धकं दधति वारिदागमे मूर्धजैरिव घनैर्विपाण्डुरैः ।
विक्रमाङ्कमुपसृत्य निर्जने कश्चिदाप्तपुरुषो व्यजिज्ञपत् ॥१॥

अन्वयः

वारिदागमे मूर्धजैः इव विपाण्डुरैः घनैः वार्धकं दधति (सति) कश्चित् आप्तपुरुषः निर्जने विक्रमाङ्कम् उपसृत्य व्यजिज्ञपत् ।

व्याख्या

वारिदानां मेघानामागम आगमनकालस्तस्मिन् वारिदागमे वर्षर्तौ मूर्धजैः वृद्धावस्थाया केशैरिव "कुन्तला मूर्द्धजास्त्वस्राश्चिकुराश्चिकुराः कचाः" इति दुर्गः । विपाण्डुरैः शुभ्रैः घनैर्मेघैः वार्धकं वृद्धावस्थां दधति धारयति सति समाप्तिकाले प्राप्ते इत्यर्थः, कश्चित् कोऽपि आप्तपुरुषो निर्जने एकान्ते विक्रमाङ्कदेवमुपसृत्याऽऽगत्य व्यजिज्ञपत् निवेदयाञ्चकार अस्मिन् सर्गे रथोद्धताच्छन्दः । तल्लक्षणं "रात्परैर्नरलगै रथोद्धता" इति ।

भाषा

वर्षाऋतु के, सफ़ेद बालों के समान सफेद मेघों से प्रकट होने वाली वृद्धावस्था को प्राप्त होने पर अर्थात् वर्षा-ऋतु के समाप्त होनें पर, किसी आत्मीय पुरुष ने एकान्त मे विक्रमाङ्कदेव के पास आकर कहा ।

निष्ठुरं किमपि कथ्यते मया तत्र कुन्तलपते कुरु क्षमाम् ।
यत्स्वकार्यमवधीर्य गृह्यते सेवयैव परितोषमीश्वराः ॥२॥

अन्वयः

हे कुन्तलपते मया किम् अपि निष्ठुरं कथ्यते तत्र क्षमा कुरु यत् ईश्वराः स्वकार्यम् अवधीर्य सेवया एव परितोषं गृह्णते ।

व्याख्या

हे कुन्तलपते ! कुन्तलदेशाधिप ! विक्रमाङ्कदेव ! मया गुप्तचरेण किमप्याऽवश्यकं वस्तु निष्ठुरं कठोरं "निष्ठुरं परुषम्" इत्यमरः । न तु मधुरं कथ्यते निगद्यते वृत्तान्तः । तत्र कठोरवचनकथनविषये क्षमां कुरु । यद्यस्मात्कारणात् ईश्वराः प्रभवः स्वकार्यं निजकर्तव्यमवधीर्य भवतु मा वा भवत्विति मनसि विचार्य सेवया परिचर्यया एव परितोषं स्वमनस्सन्तोषमानन्दं गृह्णते अनुभवन्ति । सेवा कर्मप्रधानं न तु फले लिप्सेति भावः । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ।

भाषा

हे कुन्तल देश के स्वामी ! मैं कुछ कटु वृतान्त सुनाता हूँ । इस सम्बन्ध मे मुझे क्षमा करिये । क्योंकि प्रभु लोग अपना काम हो या न हो इसकी कुछ भी परवाह न कर केवल सेवक लोगो की सच्ची सेवा से ही सन्तुष्ट होते है ।

वत्सलत्वमवलम्ब्य केवलं किं विलङ्घयसि नीतिवर्तनीम्[1] ।
यत्र मन्त्रगतिरेति वामतां तन्न हालहलतो विशिष्यते ॥३॥

अन्वयः

केवलं वत्सलत्वम् अवलम्ब्य नीतिवर्तनीं किं विलङ्घयसि । यत्र मन्त्रगतिः वामताम् एति तत् हालहलतः न विशिष्यते ।

व्याख्या

केवलं वत्सलत्वं वात्सल्यमात्रमवलम्ब्य समाश्रित्य नीतेर्नयस्य वर्त्तनीं मार्गं "सरणिः पद्धतिः पद्या वर्त्तन्येकपदीति च" इत्यमरः । किं विलङ्घयसि अतिवर्तसे । यत्र यस्मिन्स्थाने मन्त्रः षाड्गुण्यरूपः सन्धिविग्रहादिः तस्य गतिस्संचलनं पूर्वनिर्धारितविचारगतिर्वा वामतां वैपरीत्यमेति प्राप्नोति तत् षाड्गुण्यवैपरीत्यगमनं हालहलतो महाविषापेक्षया न विशिष्यते, किन्तु महाविषवद्भयङ्करायतिप्रद एव ।

---

[1] नीतिवर्त्तनीमितिपाठ शुद्धतरः प्रतिभाति ।

भाषा

केवल वत्सलता का अवलम्बन कर आप नीति के मार्ग का क्यों उल्लङ्घन करते हैं। जहाँ षाड्गुण्य रूप सन्धिविग्रहादि मन्त्र अपना विपरीत प्रभाव दिखाता है वहाँ ऐसा होना महाविष के समान ही भयङ्कर है। अर्थात् जिस प्रकार जहर धीरे धीरे बढ़कर अन्त में प्राण ले लेता है उसी प्रकार विपरीत प्रभाव वाला मन्त्र अन्त में उत्तर काल को नष्ट कर देता है।

वेङ्गिनाथमवजित्य संयति भ्रातुरभ्युदयशंसिना त्वया।
प्रेषितस्य[1] वनवासमण्डले वर्तते नयविपर्ययो महान् ॥४॥

अन्वयः

भ्रातुः अभ्युदयशंसिना त्वया संयति वेङ्गिनाथम् अवजित्य वनवासमण्डले प्रेषितस्य (तस्य) महान् नयविपर्ययः वर्तते।

व्याख्या

भ्रातुर्जयसिंहस्य सिंहदेवापरनामकस्याभ्युदयशंसिना परमोन्नत्यभिलाषुकेण त्वया भवता विक्रमाङ्कदेवेन संयति सङ्ग्रामे 'समुदायः स्त्रियः संयत्समित्याजिसमिद्युधः' इत्यमरः। वेङ्गिनाथं चोलराजं राजिगमवजित्य पराजित्य वनवासमण्डले वनप्रदेशविशेषाधिपत्ये प्रेषितस्य तस्य जयसिंहस्य महान् नयविपर्ययः नीतिप्रातिकूल्यं वर्तते।

भाषा

अपने (छोटे) भाई की अत्यधिक उन्नति की इच्छा रखने वाले आप विक्रमाङ्कदेव ने, युद्ध में चोल देश के राजा वेंगिनाथ को जीत कर वनवास मण्डल का शासन करने के लिये अर्थात् उसके राज्य का प्रबन्ध करने के लिये, भेजे हुए आपके छोटे भाई का नीति के मार्ग मे अधिक वैपरीत्य है। अर्थात् वह नीति मार्ग को छोड बैठा है।

न्यायमार्गमपहाय कुर्वता तेन कोशमविशङ्कचेतसा।
सर्वतः सकललोकपीडनादुद्विहारहरिणाः कृता भुवः ॥५॥

---

[1] घटनेय षष्ठसर्गीय-नवनवतिसंख्याकश्लोकेन बोद्धव्या।

अन्वयः

अविशङ्कचेतसा न्यायमार्गम् अपहाय कोशं कुर्वता तेन सर्वतः सकललोकपीडनात् भुवः उद्विहारहरिणाः कृताः।

व्याख्या

अविशङ्कं निर्भयं चेतो यस्य स तेन अविशङ्कचेतसा न्यायमार्गं धर्ममार्गमपहाय परित्यज्य कोशं धनसञ्चयं कुर्वता तेन भ्रात्रा जयसिंहेन सर्वतस्सर्वप्रकारेण सकललोकस्य सम्पूर्णजनसमूहस्य परिपीडनात् बाधासम्पादनेन भुवः पृथिव्या उद्गतो समुद्गतो विहारश्चङ्क्रमणादिर्येषान्ते उद्विहारा एवम्भूता हरिणा मृगा यासु ता. कृता लोकशून्या कृता। भूषु मृगा मनुष्याभावात्सर्वत्र नि शङ्कं चरन्तीति भाव।

भाषा

भयरहित मन वाले जयसिंह ने धर्ममार्ग को छोडकर कोष बढ़ाने की इच्छा से चारो ओर से अर्थात् हर प्रकार के सम्पूर्ण प्रजा का पीडन करने से भुवनो को जानवरो के निशङ्क विहार करने का स्थान बना दिया। अर्थात् सब मनुष्य पीडित हो वहाँ से भाग गये है।

अथ कुलकेन सिंहदेवगजान् वर्णयति कविः—

भूरिसङ्गरपरिश्रमार्जितां स्वामिनः प्रियतमां वहन्ति ये।
दन्तपृष्ठवलयीकृतैः करैर्विष्टरप्रणयिनीमिव श्रियम् ॥६॥

अन्वयः

ये भूरिसङ्गरपरिश्रमार्जितां स्वामिनः प्रियतमां श्रियं दन्तपृष्ठवलयीकृतैः करैः विष्टरप्रणयिनीम् इव वहन्ति।

व्याख्या

ये गजाः भूरिणा बहुलेन सङ्गरे संग्रामे 'अथ प्रतिज्ञाजिसंविदापत्सु सङ्गरः' इत्यमरः। परिश्रमेणार्जिताऽऽत्मसात्कृता तां स्वामिनो जयसिंहस्य भवतो वा प्रियतमामभीष्टतमां श्रियं राज्यलक्ष्मीं दन्तपृष्ठवलयीकृतैः दन्तभागादारम्य पृष्ठभागपर्यन्तमण्डलीकृतै करै शुण्डादण्डै विष्टरप्रणयिनीमासनस्थां 'विष्टरो विटपी दर्भमुष्टिः पीठाद्यमासनम्' इत्यमर.। इव वहन्ति धारयन्ति। रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागतामिव राज्यलक्ष्मीं वहन्तीत्यर्थः।

भाषा

जो हाथी, बहुत से युद्धों के परिश्रम से प्राप्त जयसिंह की या आप विक्रमाङ्कदेव की प्रियतम राजलक्ष्मी को दाँत से पीठ तक गोल घुमाई सूडों से बने हुए आसन की प्रणयिनी होने के समान धारण करते है। अर्थात् उनकी गोल घुमाई हुई सूडें ही राज्यलक्ष्मी का आसन थी।

चुम्बितानि मदनिद्रया मुहुर्ये नयन्ति नयनान्यमुद्रताम् ।
लोलकर्णपुटवातशीतलैरुच्छलद्बहलदानशीकरैः ॥७॥

अन्वयः

ये मदनिद्रया चुम्बितानि नयनानि मुहुः लोलकर्णपुटवातशीतलैः उच्छलद्बहलदानशीकरैः अमुद्रतां नयन्ति।

व्याख्या

ये गजा मदनिद्रया चुम्बितानि समासक्तानि मदान्धानि नयनानि नेत्राणि मुहुर्वारम्वार लोलानि चञ्चलानि कर्णपुटानि श्रोत्रपुटानि तेषां वातेन वायुना शीतलैः उच्छलन्त उपरिगच्छन्त बहला दानस्य मदजलस्य शीकरा अम्बुकणाः 'शीकरोऽम्बुकणा स्मृताः' इत्यमर.। तैरमुद्रतामुन्मीलनमुन्मेष नयन्ति प्रापयन्ति।

भाषा

जो हाथी, मदजनित निद्रा से भरी अपनी आँखो को बार बार चञ्चल कर्णपुटो की हवा से शीतल तथा उठने वाले दानवारि के बहुत से कणो से बन्द नही होने देते।

कान्तदन्तबिसकाण्डनिर्गमे दानपङ्कपटले वहन्ति ये ।
बिम्बितं दिवसनाथमण्डलं पुण्डरीकमिव मन्दिरं श्रियः ॥८॥

अन्वयः

ये कान्तदन्तबिसकाण्डनिर्गमे दानपङ्कपटले बिम्बितं दिवसनाथमण्डलं श्रियः मन्दिरं पुण्डरीकम् इव वहन्ति।

व्याख्या

ये गजाः कान्ताः रम्याः दन्ता एव बिसकाण्डानि मृणालसमूहाः 'मृणालं बिसमब्जादि' इत्यमरः। तेषां निर्गम उत्पत्तिर्यस्मात्तस्मिन् दानपङ्कपटले मदपङ्कसमूहे बिम्बितं प्रतिफलितं छायया समागतं विवस्वन्मण्डलं सूर्यमण्डलं श्रियो लक्ष्म्याः मन्दिरं स्थानं पुण्डरीकमिव सिताम्भोजमिव वहन्ति धारयन्ति। लक्ष्मीः पद्मालयेति प्रसिद्धम्। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

भाषा

जो, सुन्दर दात रूपी मृणाल समूह के उत्पत्तिस्थान दानवारि रूपी कीचड के ढेर मे प्रतिबिम्बित (श्वेत) सूर्य मण्डल को लक्ष्मी के घर रूपी श्वेत कमल के समान धारण करते है। अर्थात् हाथी के मदोन्मत्त होने पर दात निकलते है। उस मद मे प्रतिबिम्बित सूर्य की सफेद छाया, लक्ष्मी का निवास स्थान श्वेत कमल है। लक्ष्मी का नाम पद्मालया है।

उल्लिखन्ति दशनैः शिलातलान्युन्मदाः क्षितिधरस्थलीषु ये।
तेषु तैक्ष्ण्यमिव कर्तुमुद्यताः प्रत्यनीकभटभेदनोद्भटम् ॥६॥

अन्वयः

उन्मदाः ये क्षितिधरस्थलीषु दशनैः शिलातलानि उल्लिखन्ति। तेषु प्रत्यनीकभटभेदनोद्भटं तैक्ष्ण्यं कर्तुम् उद्यताः इव।

व्याख्या

उन्मदा उत्कटमदाः ये गजाः क्षितिधरस्थलीषु पर्वतभूमिषु दशनै दन्तैः शिलातलानि उल्लिखन्ति तेषु घर्षणं कुर्वन्ति। तेषु दन्तेषु प्रत्यनीकभटानां शत्रुयोधानां 'भटा योधाश्च योद्धारः' इत्यमरः। भेदने विदारणे उद्भटं प्रचण्डं समुत्कटं वा तैक्ष्ण्यं प्रखरतां कर्तुम् विधातुम् उद्यतास्तत्परा इव प्रतीयन्ते।

भाषा

मदोन्मत्त जो हाथी, पहाड़ी जमीनो पर दाँतो से पत्थरो को रगडते हैं मानो वे, उन पत्थरो पर रगड़कर विपक्षी सेना के योद्धाओं को विदारण करने में समर्थ दातों मे तीक्ष्णता बढाने मे लगे हुए हैं। अर्थात् वे विपक्षी योद्धाओ का विदारण करने के लिये अपने दातो को तीखा बनाने में तत्पर है।

वत्सलेन भवता समर्पितास्तस्य ते कति न गन्धसिन्धुराः ।
तद्बलात्किमपि चिन्तयत्यसौ यत्कथापि वितनोति पातकम् ॥१०॥

अन्वयः

वत्सलेन भवता तस्य कति ते गन्धसिन्धुराः न समर्पिताः । असौ तद्बलात् किम् अपि चिन्तयति यत्-कथा अपि पातकं वितनोति ।

व्याख्या

वत्सलेन स्नेहान्वितेन भवता विक्रमाङ्कदेवेन तस्य तस्मै सिंहदेवाय कति कियन्त बहवस्ते प्रसिद्धविक्रमा. गन्धसिन्धुराः गन्धगजा न समर्पिता. प्रदत्ता. । असौ जयसिंहः तद्बलात् गन्धगजानां बलात् किमपि आक्रमणेन त्वद्राज्यापहरणं चिन्तयति विचारयति, यस्य कथापि यत्सम्बन्धी विचारोऽपि पातकं पापं वितनोति विस्तारयति । 'कथाऽपि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः' इत्युक्ते. ।

भाषा

स्नेह से भरे आपने जयसिंह या सिंहदेव को ऐसे कितने गन्धगज नही दिये अर्थात् बहुत से दिये । यह जयसिंह उसी के बल पर कुछ करने का विचार करता है अर्थात् आप पर आक्रमण करना चाहता है । जिस सम्बन्ध की कथा भी पाप उत्पन्न करती है अर्थात् जिस कथा के कहने से भी पाप लगता है ।

सर्वमाटविकचक्रमक्रम-व्यापृतस्तलगतं चकार सः ।
शार्वरेष्विव तमस्सु राक्षसाः पापकारिषु मिलन्ति पापिनः ॥११॥

अन्वयः

अक्रमव्यापृतः सः सर्वम् आटविकचक्रं तलगतं चकार । राक्षसाः शार्वरेषु तमस्सु इव पापिनः पापकारिषु मिलन्ति ।

व्याख्या

अक्रमव्यापृत· अक्रमेऽन्याये व्यापृतो रतः सः जयसिंहः सर्वं सकलमाटविकचक्रम् अटव्या धनुर्धरमण्डलं तलगतं करतलगतं चकार । राक्षसा निशाचराः शार्वरेषु शर्वरीभवेषु 'अथ शर्वरी । निशा निशीथिनी रात्रिः' इत्यमरः । तमस्सु अन्धकारेष्विव निकषात्मजत्वात्स्निग्धतमःसु भ्रातृत्वेन मिलन्ति, तथैव पापिनः

पापकर्मरताः पुरुषाः पापकारिषु जनेषु मिलन्ति स्निह्यन्ति । समानशीलव्यसनेषु सख्यमिति न्यायात् । अत्रोपमा-अर्थान्तरन्यासयोः संसृष्टिः ।

भाषा

अन्याय कार्य मे लगे हुए उस सिहदेव ने सम्पूर्ण जंगली धनुर्धरों को अपने अधीन बना लिया है। राक्षस लोग जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार से मिलते हैं उसी प्रकार पापी लोग पापियो से मिल जाते है। अर्थात् राक्षस निकषात्मज (रात्रि के पुत्र) है। इसलिये रात्रि से उत्पन्न अन्धकार से वे प्रेम पूर्वक भाई चारे से मिलते है।

द्राविडं स नृपतिं सहायतां प्रापयत्यविरतैरुपायनैः ।
कर्तुमिच्छति न कैरुपक्रमैर्भेदजर्जरमिदं भवद्बलम् ॥१२॥

अन्वयः

सः द्राविडं नृपतिम् अविरतैः उपायनैः सहायतां प्रापयति । कैः उपक्रमैः इदं भवद्बलं भेदजर्जरं कर्तुं न इच्छति ।

व्याख्या

स जयसिंहो द्राविडं द्रविडदेशाधिपं नृपमविरतैः बहुवारदत्तैः 'सन्तताविरता-निशम्' इत्यमरः । उपायनैरुपहारैः 'उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा' इत्यमरः । सहायतां साहाय्यं प्रापयति साहाय्यकरणार्थं समुत्सुकं करोतीत्यर्थः । कैरुपक्रमैरुपायैरिदं भवद्बलं त्वत्सैन्यं 'वरूथिनी बल सैन्यं' इत्यमरः । भेदेन भेदबुद्धिसमुत्पादनेन भेदनीत्या वा जर्जरं छिन्नभिन्नं कर्तुं न इच्छति वाञ्छति । सर्वैरेवोपायैस्त्वत्सैन्यं नष्टभ्रष्टं विधातुं यतत इति भावः ।

भाषा

वह सिहदेव लगातार नजरानो को देकर द्रविड़ देश के राजा को अपनी सहायता करने मे तयार कर रहा है। किन किन उपायो से इस आपकी सेना को भेद नीति से नष्ट भ्रष्ट कर देना नही चाहता हैं अर्थात् हर प्रकार से आपकी सेना को नष्ट भ्रष्ट कर देना चाहता है।

भूरिभिः किमथवा कथाङ्कुतैस्त्वमेतदवधार्यतां नृप ।
कैश्चिदेव दिवसैः स संमुखः कृष्णवेणिनिकटे भविष्यति ॥१३॥

अन्वयः

हे नृप अथवा भूरिभिः कथाद्भुतैः किम् एतत् तत्त्वम् अवधार्यताम्। सः कैश्चित् एव दिवसैः कृष्णवेणिनिकटे सम्मुखः भविष्यति।

व्याख्या

हे नृप ! विक्रमाङ्कदेव ! अथवा यद् भवतु तद्भवतु नाम भूरिभिर्बहुलैः कथायाः जयसिंहवृत्तान्तस्याद्भुतान्याश्चर्याणि तैः किं प्रयोजनं नाम। एतत् इदं तत्त्वमवधार्यतां निश्चीयताम्। स जयसिंह कैश्चिदेव कियद्भिरेव दिवसैर्दिनैः कृष्णवेणिः कृष्णानदी तस्या निकटे समीपे 'समीपे निकटासन्नः' इत्यमरः। सम्मुखो युद्धार्थं सन्नद्धो भविष्यति।

भाषा

हे राजा विक्रमाङ्कदेव ! या, बहुत सी आश्चर्यजनक कथाओं के कहने से क्या लाभ ? यह साराश समझ लीजिये कि वह थोडे ही दिनो में कृष्णा नदी के समीप में आकर (आपका) सामना करेगा।

इत्युदीर्य विरते विशारदे तत्र शारदमृगाङ्कनिर्मलः।
नाभ्यधत्त सहसा किमप्यसौ न त्वरां दधति धीरचेतसः ॥१४॥

अन्वयः

इति उदीर्य विशारदे विरते (सति) तत्र शारदमृगाङ्कनिर्मलः असौ किम् अपि न अभ्यधत्त धीरचेतसः त्वरां न दधति।

व्याख्या

इति पूर्वोक्तमुदीर्य उक्त्वा विशारदे गुप्तचरकार्यकुशले विरते सति वार्तायाः समाप्ति कृतवति सति तत्र तस्मिन्विषये शारदः शरत्कालीनो मृगाङ्कश्चन्द्रः तद्वन्निर्मलः विशदः असौ विक्रमाङ्कदेवः किमपि किञ्चिदपि नाभ्यधत्तोक्तवान्। धीरचेतसः गम्भीरहृदयाः पुरुषाः त्वरां शीघ्रतां न दधति कुर्वन्ति। 'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥ इति भारविः।

भाषा

पूर्वोक्त बातें कहकर गुप्तचरकार्य में प्रवीण उस व्यक्ति के चुप होने पर शरत्कालीन चन्द्रमा के समान निर्मल विक्रमाङ्कदेव ने उस सम्बन्ध में कुछ भी नही कहा। गम्भीर हृदय वाले पुरुष जल्दी नही करते। अर्थात् खूब विचार कर ही कुछ करते है जल्दी मे नही।

किं श्रिया चपलया प्रतार्यसे वत्स मा मतिविपर्ययोऽस्तु ते।
प्रत्यपादयदिति प्रतिक्षणं स स्वभावविमलाशयो नृपः ॥१५॥

अन्वयः

सः स्वभावविमलाशयः नृपः हे वत्स चपलया श्रिया कि प्रतार्यसे ते मतिविपर्ययः मा अस्तु, इति प्रतिक्षणं प्रत्यपादयत्।

व्याख्या

स प्रसिद्धः स्वभावेनैव प्रकृत्यैव विमलः कालुष्यरहितः आशयः चित्तस्याभिप्रायो यस्य स नृपो विक्रमाङ्कदेवः, हे वत्स! चपलया चञ्चलया श्रिया लक्ष्म्या किं प्रतार्यसे वञ्च्यसे ते तव मतिविपर्ययः बुद्धिवैपरीत्यं मा अस्तु न भवतु इति प्रतिक्षणं प्रत्यपादयदकथयत्।

भाषा

वह प्रकृति से ही स्वच्छ हृदय वाला राजा विक्रमाङ्कदेव, हे प्यारे चञ्चला लक्ष्मी से क्यो ठगे जा रहे हो? तुम्हारा बुद्धि वैपरीत्य न हो, ऐसा क्षण क्षण मे कहने लगा।

भ्रष्टमग्रजमधर्मतः स्वयं शल्यवन्मनसि धारयाम्यहम्।
वैशसं महदुपस्थितं परं धिङ्मया कथमिदं सहिष्यते ॥१६॥

अन्वयः

अहं स्वयम् अधर्मतः भ्रष्टम् अग्रजं मनसि शल्यवत् धारयामि, परं महत् वैशसम् उपस्थितं धिक् मया इदं कथं सहिष्यते।

व्याख्या

अहं विक्रमाङ्कदेवः स्वयं अधर्मतः भ्रष्टं पतितमग्रजं ज्येष्ठभ्रातरं सोमदेवं मनसि हृदये शल्यवत् शङ्कुसदृशं धारयामि, परमन्यत् महत् विशालं वैशसं सङ्कटं दुःखं वा उपस्थितम्। धिक्कष्टं, मया विक्रमाङ्कदेवेनेदं कथं केन प्रकारेण सहिष्यते।

भाषा

मै स्वयं अधर्म से भ्रष्ट भए हुए अपने बडे भाई सोमदेव को मन मे शल्य के समान रखता हूँ। अर्थात् उसका स्मरण करने से मेरे मन मे बडी पीडा होती है। यह दूसरा एक बडा क्लेश उपस्थित हो गया है। बडे दुख की बात है। मै इसको कैसे सह सकूगा।

पर्यतप्यत किमप्यनन्तया चिन्तयेति सुचिरं धरापतिः।
दैवदुर्विलसितैः कटाक्षितास्तादृशामनुशयाय न क्रुधे ॥१७॥

अन्वयः

धरापतिः इति अनन्तया चिन्तया सुचिरं पर्यतप्यत। दैवदुर्विलसितैः कटाक्षिताः तादृशाम् अनुशयाय भवन्ति, न क्रुधे।

व्याख्या

धरापतिर्नृपतिर्विक्रमाङ्कदेव इति पूर्वोक्तया अनन्तया चिन्तया बहुचिन्तया सुचिरं बहुकालं पर्यतप्यत सन्तप्तो जातः। दैवदुर्विलसितैः भाग्यविपर्ययैः कटाक्षिताः पराहताः स्वेष्टजनास्तादृशां विक्रमोत्साहादिगुणवतामनुशयाय दुःखाय पश्चात्तापाय वा भवन्ति न तु क्रुधे कोपाय।

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव पूर्वोक्त सतत चिन्ता से चिरकाल तक पीडित रहा। दुर्भाग्य के प्रताप से कटाक्षित अर्थात् दुर्भाग्य की दुष्ट दृष्टि में पडे हुए आप्तजन, विक्रम उत्साह आदि गुणो से भूषित विक्रमाङ्कदेव के सदृश मनुष्यो के लिये क्रोध उत्पन्न करने वाले न होकर दुःख या पश्चात्ताप उत्पन्न करने वाले होते होते हैं। अर्थात् ऐसे लोगो का विचार कर उन्हे दुःख होता है क्रोध नही आता।

मन्त्रविन्तदनु चारचक्षुषा तत्तथेति बहुधावधार्य सः ।
किं विधेयमितिचिन्तयान्वितः क्ष्मापतिःस्वगतमित्यचिन्तयत् ॥१८॥

अन्वयः

तदनु मन्त्रवित् क्ष्मापतिः सः चारचक्षुषा तत् तथा इति बहुधा अवधार्य किं विधेयम् इति चिन्तया अन्वितः सन् स्वगतम् इति अचिन्तयत् ।

व्याख्या

तदनु गुप्तचरप्रस्थानानन्तरं मन्त्रवित् नीतिनिपुणः क्ष्मापतिर्नृपतिः स विक्रमाङ्कदेवः चारो गुप्तचर एव 'चारश्च गूढपुरुषः' इत्यमरः । चक्षुर्नयनं तेन चारचक्षुषा 'चारैः पश्यन्ति राजानः' इति वचनात्तदाप्तपुरुषोक्तं तथा सत्यमिति बहुधा बहुप्रकारेणाऽवधार्य निश्चित्य किं विधेयं कर्तव्यमिति चिन्तया विचारेणान्वितः युक्तः सन् स्वगतं स्वचेतसि इति वक्ष्यमाणप्रकारेणाचिन्तयत् ।

भाषा

गुप्तचर के चले जाने के बाद नीति निपुण राजा विक्रमाङ्कदेव गुप्तचर रूपी नेत्रों से अर्थात् गुप्तचरों से, जो बात मालूम हुई है वह वैसी ही है अर्थात् सत्य है, इसका हर पहलू से निश्चय कर, क्या करना चाहिये इस चिन्ता से युक्त होकर अपने मन में सोचने लगा ।

कार्यसे कथमकार्यमीदृशं वत्स दुर्नयपताकया श्रिया ।
किं न वेत्सि यदतीत्य वर्तते नारदं कलहकौतुकेन सा ॥१९॥

अन्वयः

हे वत्स दुर्नयपताकया श्रिया ईदृशम् अकार्यं कथं कार्यसे । (त्वम्) किं न वेत्सि यत् सा कलहकौतुकेन नारदम् अतीत्य वर्तते ।

व्याख्या

हे वत्सानुज ! दुर्नयः कुनीतिरेव पताका वैजयन्ती 'पताकावैजयन्ती स्यात्' इत्यमरः । यस्यास्सा तया दुर्नयपताकया श्रिया लक्ष्म्या ईदृशमित्यमकार्यं कुकृत्यं कथं कार्यसे कर्तुं बाध्यसे । त्वं किं न वेत्सि जानासि यत् सा लक्ष्मीः

कलहकौतुकेन कलहकरणकौतूहलेन नारदमतीत्योल्लङ्घ्य वर्तते आस्ते । नारदादपि विशेषकलहकारिणी लक्ष्मीरिति भावः । "नारदः कलहप्रियः" इति पुराणे ।

भाषा

हे लाडले ! कुनीति रूपी पताका वाली लक्ष्मी के द्वारा तुमसे इस प्रकार का कुकार्य कैसे कराया जा रहा है । क्या तुम्हें नहीं मालूम है कि यह लक्ष्मी कलह कराने के कौतुक से अर्थात् कराने में नारद से भी बढ़कर है ।

नार्पितानि कति मण्डलानि ते दन्तिनो मदमुखास्तवाधिकाः ।
राजशब्दमपहाय का तव न्यूनता भजसि दुर्नयं यतः ॥२०॥

अन्वयः

ते कति मण्डलानि न अर्पितानि तव मदमुखाः दन्तिनः (मत्ताः) अधिकाः । राजशब्दम् अपहाय तव का न्यूनता यतः दुर्नयं भजसि ।

व्याख्या

ते तुभ्यं कति कियन्तः मण्डलानि देशाः अर्पितानि दत्ताः तव भवतः मदमुखाः मदान्धाः दन्तिनः गजाः मत्तः अधिकाः । राजशब्दं राजत्वमपहाय विना तव भवतः का न्यूनताल्पत्वं, त्वं राजा न कथ्यसे अन्यत्सर्वं राजनिष्ठं महत्वं वर्तते त्वयि, इत्येव न्यूनता यतो यस्मात्कारणात् दुर्नयं कुनीतिं भजसि करोषि ।

भाषा

तुमको कितने प्रान्त (शासन करने के लिये) नहीं दिये अर्थात् बहुत से प्रान्त दिये हैं । तुम्हारे पास मदोन्मत्त हाथी (मुझसे भी) अधिक हैं । केवल राजा न कहलाये जाने के अतिरिक्त तुम मे क्या कमी है जो कुनीति का अवलम्बन करते हो ।

घोरमापतितमेतदाः कुतः किं करोमि कतरा प्रतिक्रिया ।
हे चुलुक्यकुलदेवताः स्वयं वार्यतामनुचितान्ममानुजः ॥२१॥

अन्वयः

आः कुतः एतत् घोरम् आपतितम् । किं करोमि । कतरा प्रतिक्रिया । हे चुलुक्यकुलदेवताः मम अनुजः अनुचितात् स्वयं वार्यताम् ।

व्याख्या

आः इति खेदसूचकं, कुतः कस्मात्कारणात् एतदिदं घोरं भयङ्करमापतितमगतं किं करोमि कतरा प्रतिक्रिया प्रतीकारोपायः। हे चुलुक्यकुलस्य देवता देवाः ममानुजः सिंहदेव अनुचितात् दुराचारात् स्वयं वार्यतां दूरीक्रियताम्।

भाषा

अरे! यह सङ्कट कैसे आ पड़ा। क्या करें। कैसे इसका प्रतिकार करें। हे चुलुक्य वंश के देवता लोग आपलोग ही मेरे छोटे भाई को अनुचित कार्य से दूर करें।

एवमादि विनिवेद्य पार्थिवस्तत्र सान्त्वनशतानि सूत्रयन्।
तं शशाक न निषेद्धुमक्रमाद्भङ्गमेति भवितव्यता कुतः ॥२२॥

अन्वयः

पार्थिवः तत्र सान्त्वनशतानि सूत्रयन् एवम् आदि विनिवेद्य अक्रमात् तं निषेद्धुं न शशाक। भवितव्यता कुतः भङ्गम् एति।

व्याख्या

पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवो राजा विक्रमाङ्कदेव. तत्र सिंहदेवे सान्त्वनायां शान्तिसम्पादकोपायाना शतानि सूत्रयन् वितन्वन् एवमादि पूर्वोक्तं विनिवेद्य कथयित्वाक्रमात् अनयात् त सिंहदेवं निषेद्धुं प्रतिरोद्धुं न शशाक समर्थो बभूव। भवितव्यता भाविकार्यजातं दैवप्रयोजितं कुतः कस्मात्कारणात् भङ्गं विनाशमेति प्राप्नोति। "यदभावि न तद्भावि भाविचेन्नतदन्यथा" इति वचनात्।

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव के इस प्रकार कह कर, सैकडो सान्त्वना के प्रस्ताव सिंहदेव के पास भेजने पर भी वह, उसको अन्याय पथ से हटाने में समर्थ न हो सका। होनहार कैसे टल सकती है।

प्रापदत्र समये सुधाकर-श्रीप्रसादनविशारदा शरत्।
नीलनीरदकलङ्कितं क्रमात् दुग्धधौतमिव कुर्वती जगत् ॥२३॥

अन्वयः

अत्र समये सुधाकरश्रीप्रसादनविशारदा नीलनीरदकलङ्कितं जगत् क्रमात् दुग्धधौतम् इव कुर्वती शरत् प्रापत् ।

व्याख्या

अत्र समयेऽस्मिन्काले सुधाकरश्चन्द्रस्तस्य श्रीर्लक्ष्मीः कान्तिस्तस्याः प्रसादने निर्मलीकरणे विस्तारणे च विशारदा निपुणा नीलाश्श्यते नीरदाश्च मेघास्तैः कलङ्कितं कलुषितं जगल्लोकं सकलभुवनं दुग्धेन क्षीरेण धौतं प्रक्षालितमतएवो-ज्वलमिव कुर्वती शरदृतुः प्रापत् साटोपमाजगाम ।

भाषा

इसी बीच मे चन्द्रमा की कान्ति को निर्मल बनाने में प्रवीण, काले मेघों से कृष्णवर्ण संसार को क्रम से, दूध से धोए के समान (सफेद) बनाने वाली शरद् ऋतु प्राप्त हो गई ।

वैद्युते शिखिनि पान्थसुन्दरी-तापकारिणि गते परिक्षयम् ।
मानिनीनिवहबाष्पहेतुभिः शान्तमम्बुधरधूमसञ्चयैः ॥२४॥

अन्वयः

पान्थसुन्दरीतापकारिणि वैद्युते शिखिनि परिक्षयं गते (सति) मानिनीनिवहबाष्पहेतुभिः अम्बुधरधूमसञ्चयैः शान्तम् ।

व्याख्या

पान्थानां पथिकानां सुन्दर्यो रामास्तासां तापं कामजन्यसन्तापं करोतीति तस्मिन् पान्थसुन्दरीतापकारिणि विद्युत अयं सम्बन्धीति वैद्युतस्तस्मिन् शिखिनि वह्नौ परिक्षयं नाशं गते सति वर्षात्ययात् शरदागमाच्च, मानिनीनां दर्पवतीनां स्त्रीणां निवहास्समूहाः 'समूहो निवहव्यूहः' इत्यमरः । तेषां बाष्पाणि अश्रूणि तेषां हेतवो जनकास्तैः अम्बुधरा मेघा एव धूमसंचयास्तैः शान्तमदृश्यत्वं गता मेघा इत्यर्थः । अत्र रूपकालङ्कारः ।

भाषा

पथिकों की सुन्दरियों को सन्ताप देने वाली बिजली की अग्नि के क्षीण हो जाने पर, मानवती समूह के आँसुओं के कारणभूत मेघ रूपी धूम्रसमूह

शान्त हो गया है। अर्थात् बिजली की आग के क्षीण हो जाने से मेघरूपी उस आग का धूआँ भी शान्त हो गया है अर्थात् मेघ अब नहीं दीख पड़ते हैं।

शान्तवैद्युतकृशानुजन्मनां भस्मनामिव रजोभिराचिताः।
पाण्डुराः कतिपये नभस्तले क्वापि सख्यमभजन्त वारिदाः ॥२५॥

अन्वयः

नभस्तले क्वापि शान्तवैद्युतकृशानुजन्मनां भस्मनां रजोभिः इव आचिताः (अतएव) पाण्डुराः कतिपये वारिदाः सख्यम् अभजन्त।

व्याख्या

नभस्तले गगनतले क्वापि कुत्रचित्प्रदेशे ननु सर्वत्र शान्ति निर्वृतिं वा प्राप्तो यो वैद्युतः विद्युत्सम्बन्धी कृशानुरग्निः 'कृशानुः पावकोऽनलः' इत्यमरः। तस्माज्जन्म उत्पत्तिर्येषां तानि तेषां शान्तवैद्युतकृशानुजन्मनां भस्मनां भूतीनां रजोभिः धूलिभिरिवाचिताः व्याप्ताः अतएव पाण्डुराः शुक्लाः कतिपये द्वित्राः वारिदा मेघाः सख्यं सम्बन्धमभजन्ताश्रयन्ति। कुत्रचित् २ दृष्टा भवन्ति गगनतल इति भावः। अत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः।

भाषा

आकाश मे कहीं २ पर बुती हुई बिजली की आग से उत्पन्न राख के (सफेद) गर्दों से आच्छादित होने के समान सफेद रग के कुछ मेघ अपना सिलसिला कायम रखते हैं।

इन्द्रनीलरसकूर्चिकाचयैः संप्रमृष्टमिव नीलिमास्पदम्।
सिक्तमम्बुदजलैर्नभस्तलं जातशाद्वलमिव व्यराजत ॥२६॥

अन्वयः

इन्द्रनीलरसकूर्चिकाचयैः सम्प्रमृष्टम् इव (अतएव) नीलिमास्पदम् अम्बुदजलैः सिक्तं नभस्तलं जातशाद्वलम् इव व्यराजत।

व्याख्या

इन्द्रनीलं मरकतमणिः तस्य रसः जलमयस्वरूपं तस्य कूर्चिकाः तूलिकाः 'कूर्चिका सूचिकायां च तूलिकायाञ्च कुड्मले' इति मेदिनी। तासां

चयास्समूहास्तैः इन्द्रनीलरसकूर्चिकाचयैः सम्प्रमृष्टं संरक्तमतएव नीलिम्नो नीलगुणस्यास्पदं स्थानमम्बुदजलैः मेघजलैस्सिक्तं नभस्तलं गगनतलं जातं समुत्पन्नं शाद्वलं हरिततृणं 'शाद्वलः शादहरिते' इत्यमरः। यस्मिंस्तत् जातशाद्वलमिव व्यराजत विदिद्युते।

भाषा

मरकत मणि के रस की कूचियों के समूह से लिपा हुआ होने के समान हरियाली (नीलिमा) का स्थान भूत और मेघों के जलो से सींचा हुआ, गगन मण्डल, उत्पन्न भई हुई हरी हरी घास से युक्त हरे मैदान के समान शोभित होता था।

खेदकारणमवान्तरापगा–सङ्गमं गतमवेत्य वारिधेः।
संमदादिव महातरङ्गिणी–चक्रवालमगमत्प्रसन्नताम् ॥२७॥

अन्वयः

महातरङ्गिणीचक्रवालं खेदकारणं वारिधेः अवान्तरापगासङ्गमं गतम् (इति) अवेत्य सम्मदात् इव प्रसन्नताम् अगमत्।

व्याख्या

महातरङ्गिणीनां महानदीनां चक्रवालं समूहः "चक्रवालं तु मण्डलम्" इत्यमरः। खेदस्य दुःखस्य कारणं वारिधेस्समुद्रस्यावान्तराः अल्पाः आपगा नद्यस्तासां 'स्रवन्ती निम्नगापगा' इत्यमरः। सङ्गमं संसर्गं सङ्गमकालो वर्षासमय इत्यर्थः। गतं समाप्तिं प्राप्तमवेत्य ज्ञात्वा सम्मदात् हर्षात् 'हर्षप्रमोदा-मोदसम्मदाः' इत्यमरः। इव प्रसन्नतां प्रसादं नैर्मल्यमगमत् अवाप। पत्युः सपत्नीसंगमं नष्टं विलोक्य नारीणां हर्षेण प्रसन्नता भवतीति भावः। अत्र समासोक्तिरलङ्कारः।

भाषा

महानदियों का समूह, दुःख का कारणभूत समुद्र का स्वल्प नदियों से सङ्गम होना अब समाप्त हो गया अर्थात् वर्षाऋतु के समाप्त होने से छोटी नदियो मे अधिक जल न होने से उनका समुद्र मे जा मिलना अब सम्भव नहीं है यह जानकर हर्ष से प्रसन्न हो गया अर्थात् उनका जल निर्मल हो गया। पक्ष में छोटी छोटी नदी रूपी सौतो से अपने पति समुद्र का सगम बन्द हुआ देखकर स्त्री रूपी नदियाँ हर्ष से प्रसन्न हो गईं।

उत्कटेन तडितामिवोष्मणा सन्निरुध्य जलदेन तापितः ।
अंशुभिः खरतरैरदर्शयत् तापमप्यधिकमुष्णदीधितिः ॥२८॥

अन्वयः

जलदेन सन्निरुध्य तडिताम् उत्कटेन ऊष्मणा तापितः इव उष्ण-दीधितिः अपि खरतरैः अंशुभिः अधिकं तापम् अदर्शयत् ।

व्याख्या

जलदेन मेघेन सन्निरुद्धयाच्छाद्य तडितां विद्युताम् उत्कटेन प्रचण्डेन ऊष्मणा ग्रीष्मेण तापित इव सन्तापितस्सन्निव उष्णदीधितिस्सूर्य. अपि खरतरैः तीक्ष्णतरै-रंशुभिः किरणैरधिकं तापमदर्शयत् । शरदि सूर्यकिरणास्तीक्ष्णा भवन्तीति भावः ।

भाषा

मेघ के द्वारा आच्छादित होकर बिजली की गर्मी से तपाया हुआ होने के समान सूर्य भी अपने तीखे किरणो से अधिक गर्मी उत्पन्न करने लगा । अर्थात् शरद्‌ऋतु का घाम कड़ा होता है ।

पक्वशालिवनमध्यतः करैः पाटलैः कलमगोपिकाजनः ।
नूतनोद्गतसरोजसङ्गतानास्त वारयितुमक्षमः शुकान् ॥२९॥

अन्वयः

कलमगोपिकाजनः पाटलैः करैः पक्वशालिवनमध्यतः नूतनोद्गत-सरोजसङ्गतान् शुकान् वारयितुं अक्षमः आस्त ।

व्याख्या

कलमगोपिकाजन शालिगोप्यः पाटलैः करैः रक्तैर्हस्तै. पक्वाः फलपरिणामवशामा-पन्नाः शालयस्तेषां वनं तस्य मध्यतो मध्यप्रवेशात् नूतनं यथा स्यात्तथा उद्गतानि सञ्जस्तत्रैव क्षेत्रे समुत्पन्नानि सरोजानि स्थलकमलानि जलकमलानि वा शालिक्षेत्रे जलबाहुल्यादिति भावः । तैः संगताम् सम्मिलितान् तत्सदृशान् वा हरितपद्म-पत्रसमानवर्णत्वात् शुकान् कीरान् वारयितुं प्रतिरोद्धुं निर्वर्तयितुं अक्षमोऽसमर्थः आस्त जातः । पद्महरितपत्रे शुकानां विलीनत्वाद्भेदेन तेषां ज्ञानं न भवतीति भावः । अत्र मीलितनामालङ्कारः ।

भाषा

धान के खेतों की रखवारी करने वाली स्त्रियाँ, अपने लाल लाल हाथों से, पके हुए धान के खेतों के मध्यभाग से, नये उत्पन्न भये हुए अतएव हरे स्थल कमलो के समान रगवाले हरे सुग्गो को भगा देने में असमर्थ रहीं। स्थलकमल जब तक खिलता नही तब तक उसका ऊपर का पत्ता हरा होने से वह हरा ही दीख पड़ता है

निर्गतैरिव तडित्प्रदीपतः सान्द्रकज्जलरजोमिराचितम् ।
वृत्तकर्परनिभं नभस्तलं नीलिमानमतिमात्रमाययौ ॥३०॥

अन्वयः

तडित्प्रदीपतः निर्गतैः इव सान्द्रकज्जलरजोभिः आचितं वृत्तकर्पर-निभं नभस्तलम् अतिमात्रं नीलिमानम् आययौ।

व्याख्या

तडिदेव विद्युदेव प्रदीपस्तस्मात् तडित्प्रदीपतः निर्गतैः निस्सृतैरिव (अत्रोत्प्रेक्षा निस्सरणस्य क्रियायाः) सान्द्रं घनं यत्कज्जलं तस्य रजोभिर्धूलिभिराचितं व्याप्तं वृत्तं वर्तुलाकारं कर्परं कपालं "स्यात्कर्परः कपालोऽस्त्री" इत्यमरः। तन्निभं तत्सदृशं नभस्तलं गगनतलमतिमात्रमत्यन्तं नीलिमानं श्यामत्वमाययौ प्राप्तम्। अत्रोपमोत्प्रेक्षयोः सङ्करः।

भाषा

मानो बिजली रूपी दीप से निकले गाढे काजल की धूलि से व्याप्त, गोल कपाल (खप्पड़) के समान आकाश मण्डल अत्यधिक नीला हो गया।

सार्धमम्बुभिरिवैत्य वारिधेर्मौक्तिकानि लगितानि तोयदात् ।
व्योममण्डलमुडूनि भेजिरे कैरवाधिकरुचीनि रात्रिषु ॥३१॥

अन्वयः

रात्रिषु कैरवाधिकरुचीनि उडूनि तोयदात् अम्बुभिः सार्धम् एत्य लगितानि वारिधेः मौक्तिकानि इव व्योममण्डलं भेजिरे।

व्याख्या

रात्रिषु शर्वरीषु 'अथ शर्वरी । निशा निशीथिनी रात्रिः' इत्यमरः । कैरवेभ्यः कुमुदेभ्योऽधिका रुचयः कान्तयो येषां तानि कैरवाधिकरुचीनि उडूनि ताराः 'नक्षत्रमृक्षं भं तारा तारकाप्युडु वा स्त्रियाम्' इत्यमरः । तोयवात् मेघात् अम्बुभिः जलैस्सार्धं सह एत्य समागत्य लगितानि आकाशे संलग्नानि वारिधेस्समुद्रस्य मौक्तिकानि मुक्ता इव व्योममण्डलं नभोमण्डलं (कर्म) भेजिरे आश्रितानि ।

भाषा

रात्रियों मे, कुमुदिनी से अधिक कान्तिवाले तारा गण, मेघ द्वारा पानी के साथ आकर आकाश मे लगे हुए समुद्र के मोतियों के समान गगन मण्डल मे विद्यमान थे या शोभित होते थे ।

नीलनीरदनिचोलकोज्झिते व्योमदर्पणतले शरद्वधूः ।
चन्द्रमाननमिवावलोकयत् तत्क्षणोन्मिषितकैरवेक्षणा ॥३२॥

अन्वयः

तत्क्षणोन्मिषितकैरवेक्षणा शरद्वधूः नीलनीरदनिचोलकोज्झिते व्योमदर्पणतले चन्द्रम् आननम् इव अवलोकयत् ।

व्याख्या

तत्क्षणे तस्मिन्समये उन्मिषितानि उन्मीलितानि उद्घाटितानि कैरवाणि कुमुदान्येवेक्षणानि नेत्राणि यस्यास्सा तत्क्षणोन्मिषितकैरवेक्षणा शरद्वधूः शरन्नायिका नील श्यामवर्णो नीरदः मेघ एव निचोलकः आवरकः 'निचोलः प्रच्छदपटः' इत्यमरः । तेनोज्झिते रहिते व्योम गगनमेव दर्पणतलमादर्शतलं तस्मिन् चन्द्रम् इन्दुमेव आननमिव मुखमिवावलोकयदपश्यत् । भृङ्गारसज्जनार्थं यथाङ्गना स्वमुखं दर्पणेऽवलोकयति तथैव शरत्करोति-इति भावः । साङ्गं रूपकमुत्प्रेक्षा च परस्परसापेक्षतयाऽलङ्कारः ।

भाषा

उस समय में अर्थात् शरद् ऋतु मे खिले हुए कुमुद रूपी नेत्र वाली शरद् रूपी नायिकाने, नीले रग के मेघ रूपी खोली से रहित आकाश रूपी दर्पण मे मानो चन्द्ररूपी अपने मुख को देखा । अर्थात् निर्मल आकाश में शरद् ऋतु में चन्द्र उदित हुआ ।

आतपः क्लममदत्त वासरे चन्द्रिका जनमनन्दयन्निशि ।
चक्रतुर्निजगुणप्रकाशनं स्पर्धयेव तपनक्षपाकरौ ॥३३॥

अन्वयः

आतपः वासरे क्लमम् अदत्त चन्द्रिका निशि जनम् अनन्दयत् (इति रीत्या) तपनक्षपाकरौ स्पर्धया इव निजगुणप्रकाशनं चक्रतुः ।

व्याख्या

शरदि आतपः सूर्यकिरणसमूहो वासरे दिवसकाले क्लमं सन्तापमदत्त कृतवान् । चन्द्रिका ज्योत्स्ना चन्द्रकिरणा इत्यर्थः । निशि रात्रौ जनं सकललोकम् अनन्दयत् हर्षं समर्पितवती । इति रीत्या तपनस्सूर्यः क्षपाकरश्चन्द्रश्च तौ स्पर्धया इवाहमहमिकया इव निजगुणानां स्वकीयवैशिष्ट्यस्य प्रकाशनं चक्रतु. कृतवन्तौ । अत्र हेतूत्प्रेक्षालङ्कार· ।

भाषा

दिन में सूर्य के किरण सब लोगो को कष्ट देने लगे। रात्रि मे चन्द्रमा के किरण सब लोगो को आनन्द देने लगे। इस प्रकार सूर्य और चन्द्र मानों स्पर्धा पूर्वक अपने २ गुणों को प्रकट करने लगे।

सान्द्रचन्दनविलेपनादपि क्लान्तिहारिषु गृहाङ्गणस्थितः ।
न प्रदोषसमये मरीचिषु प्राप तृप्तिममृतद्युतेर्जनः ॥३४॥

अन्वयः

गृहाङ्गणस्थितः जनः प्रदोषसमये सान्द्रचन्दनविलेपनात् अपि क्लान्तिहारिषु अमृतद्युतेः मरीचिषु तृप्तिं न प्राप ।

व्याख्या

गृहस्य स्वभवनस्याङ्गणेऽजिरे 'अङ्गणं चत्वराजिरे' इत्यमरः । स्थितः वर्तमानो जन· कामुकजनः प्रदोषकाले सान्द्रस्य घनस्य चन्दनस्य विलेपनादपि अधिकक्लान्तिहारिषु अधिकसन्तापविनाशकेषु अमृतद्युतेः सुधांशोश्चन्द्रस्य मरीचिषु किरणेषु मनोहरत्वादमृतकिरणमयत्वाच्चापि यद्यपि तापहारित्वं, तथापि तृप्ति सन्तोषं न प्राप कामोद्दीपकत्वात्किरणानां, प्रत्युत तापवर्धकत्वमेव जातमिति भावः । अथवा चन्द्रमरीचीनां विवसणतोऽमृतानन्तरं विशेषसुखदत्वात्तासां सेवनेन तृप्तिर्न जाता किन्तु विशेषसेवनस्येच्छा संजातेति भावः ।

भाषा

दिन में सूर्य की गर्मी से अपने घर के आँगन में बैठे हुए कामुक लोग, सायंकाल के समय में गहिरे चन्दन के लेप से भी अधिक, गर्मी से उत्पन्न मानसिक क्लान्ति को दूर करने वाले चन्द्रमा के किरणों से सन्तुष्ट न हो सके। अर्थात् चन्द्रकिरणो में कामोद्दीपकत्व होने से उन किरणो के ठण्डे होने पर भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। अथवा दिन भर की गर्मी के अनन्तर उनका सेवन करने से मनुष्यो का मन नही भरा।

पुण्ड्रकेक्षुलतिकाश्चकाशिरे क्षेत्रभूमिषु कृतेक्षणोत्सवाः।
लम्बिता इव विधोः सुधाभरादंशवः स्फटिकदण्डपाण्डुराः ॥३५॥

अन्वयः

क्षेत्रभूमिषु कृतेक्षणोत्सवाः स्फटिकदण्डपाण्डुराः पुण्ड्रकेक्षुलतिकाः विधोः सुधाभरात् लम्बिताःस्फटिकदण्डपाण्डुराः अंशव चकाशिरे इव।

व्याख्या

क्षेत्रभूमिषु धान्योत्पत्तिभूमिषु कृतो दत्त ईक्षणानां नयनानामुत्सव आनन्दो याभिस्ताः स्फटिकमणिमयदण्डवत्पाण्डुराः शुभ्रा पुण्ड्रकेक्षुलतिकाः पुण्ड्रकनामके-क्षुलताः विधोश्चन्द्रस्य सुधाया अमृतस्य भरात् अधिकभारात् लम्बिता. नीचैरागता लम्बमानाः स्फटिकदण्डपाण्डुरा अंशवः किरणाः चकाशिरे शोभां चक्रिरे इव। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

भाषा

खेतों मे नेत्र को आनन्द देनेवाले स्फटिक के दण्डो के समान सफेद पहुडो की लताएँ अथवा पेड़, मानो चन्द्रमा के अमृत के बोझ से नीचे की ओर लटके हुए स्फटिक के दण्डो के समान सफेद किरणो के ऐसे शोभित होते थे।

शक्रकार्मुकविलोकनाद्ध्रुवं क्रन्दितं भयवशात्कलापिभिः।
यत्र यद्गतवति क्षणेन ते मौनमानतमुखाः सिषेविरे ॥३६॥

अन्वयः

कलापिभिः शक्रकार्मुकविलोकनात् भयवशात् ध्रुवं क्रन्दितं यत् यत्र गतवति ते क्षणेन आनतमुखाः सन्तः मौनं सिषेविरे।

व्याख्या

कलापिभिर्मयूरैः इन्द्रधनुर्विलोकनात् सञ्जातभयवशात् ध्रुवं निश्चयेन कन्वितं विरावः (भयशब्दः) कृत. यद्यस्मात्कारणात् यत्र इन्द्रधनुषि गतवति अदृश्ये जाते ते मयूरा क्षणेनाल्पकालेनैवानतं नम्रीकृतं मुखं वदनं यैस्ते आनतमुखाः सन्तो मौनं जोषं सिषेविरे भेजिरे ।

भाषा

मयूरगण इन्द्रधनुष के देखने से ही अवश्य भयभीत हो केका शब्द करते थे। क्योंकि इन्द्र धनुष के चले जाने पर अर्थात् आकाश मे न दीख पड़ने पर उन्होंने तुरन्त ही नीचा मुखकर अर्थात् मुख को लटका कर मौन धारण कर लिया।

क्षुण्णमौक्तिकपरागपाण्डुरः शोभते स्म दिवि चन्द्रिकाभरः ।
मेघबन्धनविमुक्तमीक्षितुं क्षीरनीरधिरिवेन्दुमागतः ॥३७॥

अन्वयः

दिवि क्षुण्णमौक्तिकपरागपाण्डुरः चन्द्रिकाभरः मेघबन्धनविमुक्तम् इन्दुम् ईक्षितुम् आगतः क्षीरनीरधिः इव शोभते स्म।

व्याख्या

दिवि गगने क्षुण्णाः चूर्णीकृता मौक्तिका. मुक्तास्तेषां परागवत् धूलिवत्पाण्डुरः शुक्लः चन्द्रिकाभरः ज्योत्स्नासमूहः 'चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना' इत्यमरः। मेघरूपेण बन्धनेन प्रतिबन्धकेन विमुक्तं रहितम् इन्दुं चन्द्रमीक्षितुं द्रष्टुमागत. प्राप्त. क्षीरनीरधि. दुग्धसागर इव शोभते स्म। पिता यथा शत्रुपीड़ाविमुक्तं पुत्रं सकुशलं द्रष्टुमुद्युङ्क्ते तथैव दुग्धसागरश्चन्द्रजनकोऽपि चन्द्रं समागत इति भावः।

भाषा

आकाश में कूटे हुए मोतियो के चूर्ण के समान श्वेत वर्ण चाँदनी का भराव, मानो मेघो के बन्धन से छूटे हुए (अपने पुत्र) चन्द्रमा कोदेखने के लिये आए हुए (पिता) क्षीरसागर के समान शोभित हो रहा था।

जाड्यमम्भसि निमज्जनाच्चिरं यत्पदं कमलिनीषु निर्ममे ।
तन्निराकरणकारणादिव व्यातनोदधिकमातपं रविः ॥३८॥

अन्वयः

चिरम् अम्भसि निमज्जनात् यत् जाड्यं कमलिनीषु पदं निर्ममे रविः तन्निराकरणकारणात् इव अधिकम् आतपं व्यातनोत् ।

व्याख्या

चिरं चिरकालमम्भसि जले निमज्जनावन्तस्तले वर्तमानत्वात् यत् जाड्यं शैत्यं कमलिनीषु पद्मिनीषु (सूर्यनायिकासु) पदं स्थानं निर्ममे चकार रविस्सूर्यः (तस्याः पतिरूपः) तन्निराकरणकारणात् शैत्यनिराकरणहेतुत इवाधिकमत्यन्तमातपमुष्णत्वं व्यातनोत् विस्तारितवान् ।

भाषा

(वर्षाऋतु मे) चिरकाल तक पानी मे रहने से कमलिनिओं पर जो शैत्य ने अपना स्थान बना लिया था अर्थात् कमलिनिओं को बहुत शैत्य भोगना पड़ा था मानो सूर्य उस शैत्य को दूर करने के कारण से अधिक घाम फैलाने लगा । अर्थात् शैत्य-पीडित अपनी पत्नी कमलिनी के कष्ट को दूर करने के लिए मानो कमलिनीपति सूर्य अधिक उष्णतापूर्वक तपने लगा ।

हंसपंक्तिरवधीर्य मानसं क्रौञ्चशैलविवरेण निर्गता ।
भार्गवस्य दृढलक्षभेदतः प्रेक्ष्यते स्म यशसामिवावलिः ॥३९॥

अन्वयः

मानसम् अवधीर्य क्रौञ्चशैलविवरेण निर्गता हंसपंक्तिः भार्गवस्य दृढलक्षभेदतः यशसाम् आवलिः इव प्रेक्ष्यते स्म ।

व्याख्या

मानसं मानसरोवरमवधीर्य त्यक्त्वा क्रौञ्चनामकपर्वतस्य छिद्रेण निर्गता निस्सृता हंसपंक्तिः मरालश्रेणिः भार्गवस्य परशुरामस्य दृढः बलाज्जायमानो यो लक्षभेदः बाणद्वारा लक्ष्यविदारणं तस्मादुत्पन्ना यशसां कीर्त्तीनामावलिः पंक्तिरिव प्रेक्ष्यते स्म दृश्यते स्म । "हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम्" इति मेघदूते कालिदासः । हंसा प्रावृषि मानसं यान्ति शरदि च परावर्तन्त इति कविप्रसिद्धि । परशुरामकृतक्रौञ्चपर्वतभेदस्य पौराणिकी कथाऽत्राऽनुसन्धेया ।

भाषा

मानस सरोवर को छोडकर क्रौञ्चनाम के पर्वत के छेद में से निकलने वाली हंसो की श्रेणी परशुराम के बलपूर्वक किये हुए निशान के भेद से निकलने वाली (श्वेत) यशों कि श्रेणि के समान शोभित होती थी। श्री परशुराम जी ने एक बाण से क्रौञ्च पर्वत को वेध दिया था ऐसी पुराणो में कथा है।

व्याकुलेषु पतिषु प्रतिक्षणं लब्धवल्लभसमागमोत्सवाः ।
तत्र कुङ्कुमविकासवासरान् पांसुलाः सुखमयानमन्वत ॥४०॥

अन्वयः

पतिषु व्याकुलेषु (सत्सु) प्रतिक्षणं लब्धवल्लभसमागमोत्सवाः पांसुलाः तत्र कुङ्कुमविकासवासरान् सुखमयान् अमन्वत ।

व्याख्या

पतिषु व्याकुलेषु कार्यव्यासक्तेषु सत्सु प्रतिक्षणं क्षणे क्षणे लब्धः प्राप्तः वल्लभानां प्राणनाथानां उपपतीनां समागमस्य रत्यादेरुत्सवो याभिस्ताः पांसुलास्स्वैरविहारिण्यः 'स्वैरिणी पांसुला च स्यात्' इत्यमरः। तत्र शरदि कुङ्कुमविकासस्य केसरविकासस्य वासरान् दिवसान् सुखमयान् आनन्दकरान् अमन्वत ज्ञातवत्य । पतीनां क्षेत्रादिषु कार्यव्याकुलत्वादुपपतिसमागमानुकूलमिमं कालं प्राप्य स्वैरिण्य प्रसन्ना अभूवन्नित्यर्थ ।

भाषा

अपने पतियो के खेत इत्यादि स्थानो में व्यस्त रहने के कारण प्रतिक्षण उपपतियो का समागम पाकर उत्सव मनाने वाली स्वैरिणी स्त्रियो ने केशर के विकास के समय को सुखदायक माना।

अथ कविर्विरहिणीनां चन्द्रमसं प्रत्युक्तीर्वर्णयति —

न त्वमिन्द्रधनुषः शरव्यतां धारयन्नपि कुरङ्गमागतः ।
न द्रुतोऽसि तडिदूष्मणा च यत्तत्तुषारकर कौतुकं महत् ॥४१॥

अन्वयः

त्वम् कुरङ्गं धारयन् अपि इन्द्रधनुषः शरव्यतां न आगतः। हे तुषारकर यत् तडिदूष्मणा द्रुतः न असि तत् महत् कौतुकम् ।

5/6/02

व्याख्या

(हे चन्द्र) त्वं कुरङ्गं लाञ्छनस्वरूपं मृगं धारयन्नपि इन्द्रधनुषः महेन्द्र-शरासनस्य शरव्यतां लक्ष्यत्वं "लक्षं लक्ष्यं शरव्यं च" इत्यमरः। नागतो न प्राप्त इत्याश्चर्यम्। हे तुषारकर! हिमकिरण! चन्द्र! यत् तडिदूष्मणा विद्युत्सन्तापेन द्रुतो द्रवीभूतो नासि तत् महत् कौतुकमाश्चर्यम्।

भाषा

हे चन्द्र! तुम लाञ्छन रूप मृग को रखने पर भी इन्द्रधनुष का निशाना न बने और जो तुम बिजली की गर्मी से नहीं पिघल गये यह अधिक आश्चर्य-जनक है।

मेघकर्दमनिपातपङ्किला क्षालिता कथय केन चन्द्रिका।
कः कठोरहृदयो वियोगिनां नो बिभेति वधपातकादपि ॥४२॥

अन्वयः

मेघकर्दमनिपातपङ्किला चन्द्रिका केन क्षालिता (इति) कथय। कः कठोरहृदयः वियोगिनां वधपातकात् अपि नो बिभेति।

व्याख्या

मेघरूपस्य कृष्णपयोदस्वरूपस्य कर्दमस्य पङ्कस्य निपातेन पङ्किला अविशदा चन्द्रिका कौमुदी "चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना" इत्यमरः। केन क्षालिता निर्मलीकृता धवलीकृता इति कथयोच्यताम्। कः कठोरहृदयः कठिनचित्तः वियोगिनां विरहिणां वधपातकात् हिंसाजन्यपापादपि नो बिभेति न भयं प्राप्नोति।

भाषा

बताओ तो, काले मेघ रूपी कीचड के गिरने से अर्थात् उसमे ढक जाने से मैली अर्थात् मन्द भई हुई चाँदनी को किसने धोकर साफ किया। कौन ऐसा कठोर हृदय वाला है जो विरही लोगो की हत्या करने के पाप से भी नहीं डरता अर्थात् विरही लोगों को चन्द्र को देखने से प्राणान्त कष्ट होता है।

किं प्रमाद्यसि न सर्वदा सुखं कस्यचित्प्रकृतिभङ्गुराः श्रियः।
राहुरामलकवन्मुखोदरे त्वां दिनैः कतिपयैः करिष्यति ॥४३॥

अन्वयः

किं प्रमाद्यसि, कस्यचित् सर्वदा सुखं न, श्रियः प्रकृतिभङ्गुराः। राहुः त्वां कतिपयैः दिनैः मुखोदरे आमलकवत् करिष्यति।

व्याख्या

किमर्थं प्रमादं करोषि, कस्यचिदपि जन्तोः सर्वदा सर्वस्मिन्काले सुखं न भवति, श्रियः लक्ष्म्यः शोभा वा प्रकृतिभङ्गुराः प्रकृत्या स्वभावेनैव भङ्गुरा नाशवत्यः। राहुः त्वां चन्द्रं कतिपयैर्दिनैः दिवसैः मुखोदरे वदनाभ्यन्तरे आमलकवत् धात्रीफलसदृशं करिष्यति ग्रासं करिष्यति। आमलकस्य वर्तुलाकारत्वात् शुभ्रत्वाच्च चन्द्रमसः सादृश्यम्।

भाषा

क्यो प्रमाद करते हो अर्थात् क्यो अन्धेर करते हो। किसी को भी सदा सुख नही मिलता। लक्ष्मी या शोभा स्वभाव से ही नष्ट होने वाली हैं। हे चन्द्र! थोडे ही दिनो मे राहु तुमको आवले के (सफेद व गोल) फल के समान अपने मुख मे रख लेगा।

सर्वदैव हृदयं मलीमसं न क्षणं स्पृशति ते प्रसन्नताम्।
तत्खलत्वमखिलोपतापिनः पुष्पकार्मुकनृपस्य वल्लभ ॥४४॥

अन्वयः

हे अखिलोपतापिनः पुष्पकार्मुकनृपस्य वल्लभ! ते सर्वदा एव मलीमसं हृदयं क्षणं प्रसन्नतां न स्पृशति तत् खलत्वं (तव निश्चितमस्ति)।

व्याख्या

अखिलान् सकलानुपतापयतीति अखिलोपतापी तस्य सकललोकपरिद्रावकस्य पुष्पकार्मुको मदन एव नृपो भूपस्तस्य वल्लभ प्रिय हे चन्द्र! (अनुकूलाचरणत्वात्)। ते सर्वदा मलीमसं मलिनं एव हृदयं चित्तं "मलीमसं तु मलिनम्" इत्यमरः। क्षणमपि प्रसन्नतां न स्पृशति विशुद्धतां न धारयति तत् खलत्वं दुर्जनत्वं (तव निश्चितमेव)। खलाः कलुषितहृदया भवन्तीति भावः।

भाषा

अरे! समग्र प्राणियों को पीडित करने वाले कामदेव राजा के प्रिय!

तुम्हारा सदा कलुषित हृदय एक क्षण के लिये भी विशुद्ध नहीं होता। यही तुम्हारी खलता है। अर्थात् खलों का हृदय सदैव कलुषित रहता है।

इत्यनङ्गशरसङ्गदीपित-प्राणनाथविरहाः क्षपामुखे।
चन्द्रिकास्नपितविश्वमालपन् यामिनीदयितमेणलोचनाः ॥४५॥

अन्वयः

क्षपामुखे अनङ्गशरसङ्गदीपितप्राणनाथविरहाः एणलोचनाः चन्द्रिकास्नपितविश्वं यामिनीदयितम् इति आलपन्।

व्याख्या

क्षपामुखे सायङ्काले अनङ्गस्य कामदेवस्य शरा बाणास्तेषां सङ्गेनाऽऽसक्त्या दीपितः प्रोज्ज्वलितः प्राणनाथस्य पत्युः विरहः वियोगो यासान्ताः एणस्य मृगस्य लोचनं नेत्रमिव लोचनं, विशालत्वात्, यासान्ताश्चन्द्रिकया ज्योत्स्नया स्नपितं धौतं विश्वं संसारो येन स तं यामिन्या रात्रेर्दयितः प्रियः चन्द्रस्तमिति पूर्वोक्तप्रकारेण आलपन्नूचुः।

भाषा

सायकाल के समय मे, कामदेव के बाणो के लगने से समुद्दीपित पतिविरह-वाली मृगनयनियाँ, अपनी चाँदनी से विश्व को स्नान कराने वाले अर्थात् ससार को अपनी चाँदनी से चमकाने वाले रात्रिपति चन्द्रमा को पूर्वोक्त प्रकार से कहती थी।

इन्दुदीधितिषु शारदीष्वसौ मन्मथस्य करदीपिकास्विव।
दुश्चरित्रमनुजस्य चिन्तयन् न प्रसादमभजन्नराधिपः ॥४६॥

अन्वयः

असौ नराधिपः अनुजस्य दुश्चरित्रं चिन्तयन् मन्मथस्य करदीपिकासु इव इन्दुदीधितिषु प्रसादं न अभजत्।

व्याख्या

असौ नराधिपः विक्रमाङ्कदेवः अनुजस्य सिंहदेवस्य दुश्चरित्रं कुकृत्यं, विक्रमाङ्कदेवं प्रत्याक्रमणं, चिन्तयन् विचारयन् मन्मथस्य कामस्य करे हस्ते दीपिकास्तासु इव इन्दुदीधितिषु चन्द्रकिरणेषु प्रसादं मनःप्रसन्नतां नाभजत् प्राप।

भाषा

यह राजा विक्रमाङ्कदेव अपने छोटे भाई सिंहदेव के अपने ऊपर आक्रमण करने के कुकृत्य का विचार करते हुए, कामदेव के हाथ में लिये हुए दीपकों के समान अर्थात् कामोद्दीपक चन्द्रमा की चादनी से प्रसन्नता न प्राप्त कर सका।

तस्य सन्ततमकीर्तिवार्तया मानसे कलुषतां समुद्वहन्।
न प्रसादितमृगाङ्कयाप्यसौ नीयते स्म शरदा प्रसन्नताम् ॥४७॥

अन्वयः

प्रसादितमृगाङ्कया अपि शरदा तस्य अकीर्तिवार्तया मानसे कलुषतां सन्ततम् समुद्वहन् असौ प्रसन्नतां न नीयते स्म।

व्याख्या

प्रसादितः विशदीकृतः धवलीकृतो वा मृगाङ्को, पूर्वं मेघाच्छादितत्वादतिमलिनश्चन्द्रो यया सा तया अपि शरदा तस्य सिंहदेवस्य अकीर्तेः वार्ता तया मानसे हृदये सन्ततं निरन्तरं कलुषतां कालुष्यं समुद्वहन् धारयन् असौ विक्रमाङ्कदेवः प्रसन्नतां (चित्तस्य) न नीयते स्म न प्रसन्नो जात इति भावः।

भाषा

पूर्व मे मेघ से आच्छादित अत एव अति-मलिन चन्द्रमा को शुभ्र बनाने वाली शरद् ऋतु से भी, अपने छोटे भाई की अकीर्तिकारी खबर से मन में सतत उदासी या दुःख रखने वाला राजा विक्रमाङ्कदेव, प्रसन्न न किया जा सका अर्थात् प्रसन्न न हो सका।

कुन्तलेन्दुरभवत्कृपावशात् तत्र राज्यमपि दातुमुत्सुकः।
कः प्रसन्नमनसां यशोर्थिनां श्रीसमर्पणविधौ परिश्रमः ॥४८॥

अन्वयः

कुन्तलेन्दुः कृपावशात् तत्र राज्यम् अपि दातुम् उत्सुकः अभवत् यशोर्थिनां प्रसन्नमनसां श्रीसमर्पणविधौ कः परिश्रमः।

व्याख्या

कुन्तलेन्दुः कुन्तलदेशस्येन्दुश्चन्द्र इवाऽऽनन्दसमर्पको राजा विक्रमाङ्कदेवः कृपा-

वशात् कनिष्ठभ्रातुरुपरि दयया तत्र सिंहदेवे राज्यं स्वस्याऽऽधिपत्यमपि दातुमुत्सुकः उत्कण्ठितः अभवत् । यशोर्थिनां कीर्त्यभीप्सूनां प्रसन्नचेतसां पुरुषाणां मनस्विनां कृते श्रीसमर्पणविधौ लक्ष्मीपरित्यागे कः परिश्रमः किं काठिन्यम् ।

भाषा

कुन्तलदेश का, चन्द्रमा के समान सुख देनेवाला राजा विक्रमाङ्कदेव, अपने छोटे भाई सिंहदेव पर दयाभिभूत होकर उसे अपना राज्य भी दे देने के लिये उत्कण्ठित हो उठा। यश की कामना रखने वाले प्रसन्न चित्त मनुष्यों के लिये लक्ष्मी का त्याग करने में क्या काठिन्य है।

प्राहिणोत्कति न सान्त्वनक्रमांस्तत्समीपमनिशं विशांपतिः ।
एकमप्यनयवायुलङ्घितो नाग्रहीष्ट कुलकण्टकस्तु सः ॥४९॥

अन्वयः

विशांपतिः अनिशं तत्समीपं कति सान्त्वनक्रमान् न प्राहिणोत् कुलकण्टकः सः तु अनयवायुलंघितः (सन्) एकम् अपि न अग्रहीष्ट ।

व्याख्या

विशांपतिः प्रजानाथः विक्रमाङ्कदेवः अनिशं दिवानिशं तस्य सिंहदेवस्य समीपं कति कियतः सान्त्वनक्रमान् शान्तिवादान् न प्राहिणोत् न प्रहितवान्, बहून् प्रेषयामासेति भावः । कुलस्य कण्टकः कलङ्कः शत्रुरूप इत्यर्थः । सः सिंहदेवस्तु अनयो दुर्नीतिरेव वायुः पवनस्तेन लङ्घितः आक्रान्त दुर्नयसंयुक्तस्सन् एकमपि सान्त्वनवचनं नाग्रहीष्ट न स्वीचकार ।

भाषा

प्रजानाथ विक्रमाङ्कदेव ने लगातार अपने छोटे भाई के समीप कितने शान्ति के प्रस्ताव न भेजे अर्थात् बहुत से प्रस्ताव भेजे। परन्तु अनीति रूपी वायु से आक्रान्त उस कुलकलङ्क ने एक भी प्रस्ताव स्वीकार न किया।

वैशसस्य कथमस्य शान्तिरित्येव यावदनुकम्पया स्थितः ।
तावदद्भुतभुजावलेपतः कृष्णवेणितटमाजगाम सः ॥५०॥

अन्वयः

अस्य वैशसस्य कथं शान्तिः इति अनुकम्पया यावत् एषः स्थितः, तावत् सः अद्भुतभुजावलेपतः कृष्णवेणितटम् आजगाम ।

व्याख्या

अस्य वैशसस्य दुःखस्य कथं शान्तिः इति अनुकम्पया कृपापूर्वकविचारेण यावत्कालमेषः विक्रमाङ्कदेवः स्थितः तावत्कालमेव तत्क्षणे एव सः सिंहदेवः अद्भुतः महान् भुजयोरवलेपो दर्पस्तस्मात् कृष्णवेणीतटं कृष्णानदीतीरमाजगामोपस्थितवान् ।

भाषा

इस दुःख का कैसे प्रतिकार किया जाय ऐसा जब तक वह दयार्द्रहृदय से सोच ही रहा था कि सिंहदेव अपने भुजबल के घमण्ड से कृष्णा नदी के किनारे पहुँच गया ।

भूपमेनमपहाय तच्चमूमाश्रिताः कति न मण्डलेश्वराः ।
जायते मतिविपर्ययो नृणां प्रायशः परिभवे भविष्यति ॥५१॥

अन्वयः

कति मण्डलेश्वराः एनं भूपम् अपहाय तच्चमूं न आश्रिताः । नृणां परिभवे भविष्यति सति प्रायशः मतिविपर्ययः जायते ।

व्याख्या

कति कियन्तो मण्डलेश्वराः सामन्तनृपाः एनं भूपं विक्रमाङ्कदेवमपहाय परित्यज्य तस्य सिंहदेवस्य चमूं सेनां "सेना पृतनानीकिनीचमूः" इत्यमरः । नाश्रिताः न गताः किन्तु बहवः सामन्तास्तस्य सेनायां मिलिता इत्यर्थः । नृणां परिभवे पराजये आपत्तिसमये भविष्यति भाविनि सति प्रायशो बाहुल्येन मतिविपर्ययः बुद्धिवैपरीत्यं जायते । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ।

भाषा

कितने सामन्त राजा लोग राजा विक्रमाङ्कदेव को छोड़कर सिंहदेव की सेना में न जा मिले अर्थात् बहुत से सामन्त राजा सिंहदेव की सेना में सम्मिलित हो गये । मनुष्यों का पराजय भविष्य में होनहार होने पर प्रायः बुद्धिवैपरीत्य हो जाया करता है अर्थात् बुद्धि खराब हो जाती है ।

वीक्ष्य स द्विपघटाः कटस्थली-निर्लुठद्बहलदाननिर्झराः ।
वाजिनश्च चटुलानमन्यत ज्येष्ठयोधनविधावकुण्ठताम् ॥५२॥

अन्वय

सः कटस्थलीनिर्लुठद्बहलदाननिर्झराः द्विपघटाः चटुलान् वाजिनः च वीक्ष्य ज्येष्ठयोधनविधौ अकुण्ठताम् अमन्यत ।

व्याख्या

सः सिंहदेवः कटस्थलीषु गण्डप्रदेशेषु कपोलेषु निर्लुठन्तः विलसन्तः बहलाः विपुलाः बहुलाश्च दानस्य मदजलस्य निर्झराः प्रवाहाः येषान्ते तेषां द्विपानां गजानां घटास्समूहाः ताः, चटुलान् चपलान् वाजिनः अश्वाश्च वीक्ष्य दृष्ट्वा (विचार्य) ज्येष्ठेन विक्रमाङ्कदेवेन सह योधनविधौ युद्धकरणेऽकुण्ठताम-बाधकतां स्वस्य प्राबीण्यममन्यत ज्ञातवान् ।

भाषा

वह सिंहदेव, (अपनी सेना के) गण्डस्थलो मे शोभित अनेक मदवारी के झरनों से युक्त हाथी के समूहों को और चञ्चल घोडों को देखकर अपने बड़े भाई विक्रमाङ्कदेव से युद्ध करने मे अबाधकता को मानने लगा। अर्थात् ऐसी पलटन के रहने पर विक्रमाङ्कदेव से युद्ध करना कोई कठिन नही है, ऐसा समझने लगा।

तच्चमूपरिकरेण पीडिता कृष्णवेणिरधिगम्य तानवम् ।
सिन्धुपार्श्वमिव गन्तुमक्षमा रोषतः कलुषतामदर्शयत् ॥५३॥

अन्वयः

तच्चमूपरिकरेण पीडिता कृष्णवेणिः तानवम् अधिगम्य सिन्धु-पार्श्वं गन्तुम् अक्षमा रोषत इव कलुषताम् अदर्शयत् ।

व्याख्या

तस्य सिंहदेवस्य चमूः सेना तस्याः परिकरेण समूहेन व्यापारेण वा पीडिता दलिता कृष्णवेणिः कृष्णानदी तानवं जलरिक्ततां कृशतामधिगम्य प्राप्य सिन्धु-पार्श्वं समुद्रसमीपं गन्तुमक्षमा असमर्था रोषतः इव क्रोधवशात् इव कलुषतामावि-लत्वं "कलुषोऽनच्छ आविलः" इत्यमरः । पङ्कसंस्पर्शान्मालिन्यमदर्शयदप्रकटयत् । अधिकसंख्याकजनपीतजला सा तानवं प्रापेति भावः । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

भाषा

उस सिंहदेव की सेना के समूह से अथवा सेना के व्यापार से पीडित कृष्णानदी ने कृशता को प्राप्त होकर समुद्र के पास जाने मे असमर्थ होने के कारण मानो क्रोध से मलिनता को प्रकट किया। अर्थात् अधिक सख्याक मनुष्यो द्वारा अधिक जल खर्च कर दिये जाने से कुछ सूख गई अतएव मटमैली हो गई।

क्वापि दाहमपरत्र लुण्ठनं बन्धनं क्वचिददाज्जनस्य सः।
पातचिह्नमिव तस्य भूयसी दुष्टचेष्टितपरम्पराभवत् ॥५४॥

अन्वयः

सः क्व अपि दाहम् अपरत्र लुण्ठनं क्वचित् जनस्य बन्धनम् अदात् तस्य पातचिह्नम् इव भूयसी दुष्टचेष्टितपरम्परा अभवत्।

व्याख्या

सः सिंहदेवः क्वापि कुत्रचित्स्थाने दाहं नगरं भस्मसात् कृतवान्। अपरत्रान्यस्मिंस्थाने लुण्ठनं बलाद्धनादिहरणं कृतवान् क्वचिज्जनस्य बन्धनं कारालये निगडबन्धनमदात् दत्तवान् तस्य सिंहदेवस्य पातस्याधःपातस्य चिह्नमिव लक्षणमिव भूयसी बह्वी बलवती च दुष्टानां दुर्जनानां चेष्टितानि व्यापारास्तेषां परम्परा श्रेणिरभवत्। सर्वत्रैव दुर्जनचेष्टितमधःपाताय भवतीति भावः।

भाषा

उस सिंहदेव ने किसी स्थान पर आग लगा दी, और कहीं बलपूर्वक धनादि को लूटा, कही मनुष्यो को पकड़ कर कैदखानें में डाल दिया। उस सिंहदेव के कुकृत्यो की परम्परा मानो उसके अधःपतन के चिह्न थे।

तस्य दुर्नयपरम्परामसौ चक्षमे चिरतरं क्षमापतिः।
तादृशैरमलसत्त्वराशिभिः स्पर्धितुं जलधयोऽपि नेश्वराः ॥५५॥

अन्वयः

असौ क्षमापतिः तस्य दुर्नयपरम्परां चिरतरं चक्षमे। तादृशैः अमलसत्त्वराशिभिः जलधयः अपि स्पर्धितुं न ईश्वराः।

व्याख्या

असौ क्षमापतिः पृथ्वीपतिर्विक्रमाङ्कदेवः क्षमायाः पतिः क्षमागुणयुक्तो वा तस्य सिंहदेवस्य दुर्नयानां कुनीतीनां परम्परां चिरतरं बहुकालं चक्षमे अमृष्यत्, तावद्भिर्विचित्रैरमलानां निर्मलानां सत्त्वानां बलानां गुणानां वा समुद्रपक्षे जलजन्तूनां राशिभिस्समूहैः जलधयोऽपि समुद्रा अपि स्पर्धितुं समतां कर्तुं न ईश्वराः प्रभवः । तस्य गाम्भीर्यक्षमादिगुणानां समता समुद्रेणाप्यप्राप्येति भावः ।

भाषा

यह राजा वा क्षमा गुण प्रधान विक्रमाङ्कदेव, जयसिंह के कुकृत्यों को चिरकाल तक सहन करता रहा। विक्रमाङ्कदेव सदृश विशुद्ध सत्व गुण प्रधान प्राणियो से स्वच्छ जलजीवो के समूहों से युक्त समुद्र भी स्पर्धा नही कर सकते अर्थात् यद्यपि समुद्र गाम्भीर्य के लिये प्रसिद्ध है तो भी वह उसकी बराबरी नही कर सकता।

दुर्वचांसि सविधे धरापतेः स व्यसर्जयदनङ्कुशोऽनिशम् ।
अश्रिया जडधियः कटाक्षिताः किं तदस्ति न समाचरन्ति यत् ॥५६॥

अन्वयः

अनङ्कुशः सः धरापतेः सविधे दुर्वचांसि अनिशं व्यसर्जयत् ।
अश्रिया कटाक्षिताः जडधियः तत् किम् अस्ति यत् न समाचरन्ति ।

व्याख्या

अनङ्कुशः स्वेच्छाचारी सः सिंहदेवो धरापतेर्विक्रमाङ्कदेवस्य सविधे समीपे दुर्वचांसि कटुवचांसि अनिशं निरन्तरं व्यसर्जयत् प्रयोजितवान् प्रेषितवान् । अश्रिया दुर्लक्ष्म्या दुर्भाग्येन कटाक्षिताः युक्ताः जडधियो मूर्खाः तत् किं वस्तु अस्ति यत्र समाचरन्ति कुर्वन्ति । सर्वमेवायुक्तं कार्यं निर्विचारमेव प्रयुञ्जते दुर्भाग्या इति भावः ।

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव के पास वह स्वेच्छाचारी जयसिंह सदैव बुरे २ कुशब्दों से युक्त सदेश भेजता रहा। कुलक्ष्मी की दृष्टि में पड़े मूर्ख लोग, ऐसा कौन बुरा काम है जो नहीं कर सकते।

ब्रूमहे किमधिकं तथा मुहुस्तत्र संस्तवमवाप चापलम् ।
तं प्रति प्रचलति स्म विस्मितः सत्वरं वसुमतीपतिर्यथा ॥५७॥

अन्वयः

किम् अधिकं ब्रूमहे चापलं तत्र तथा मुहुः संस्तवम् अवाप, यथा वसुमतीपतिः विस्मितः (सन्) तं प्रति सत्वरं प्रचलति स्म ।

व्याख्या

किमधिकं सिंहदेवविषये कियत् ब्रूमहे कथयामः, इयदधिकं दुर्नयादि वर्तते यत्तस्य वर्णनमसम्भूतमित्यर्थः । चापलं चपलता दुराचारस्तत्र सिंहदेवे तथा तादृशं मुहुर्वारम्वारं संस्तवं परिचयं "संस्तवः स्यात्परिचयः" इत्यमरः । अवाप अप्राप्नोत्, दुराचार एतावानधिकस्सञ्जातः यथा यत् वसुमती पृथ्वी "वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा" इत्यमरः । तस्याः पतिर्विक्रमाङ्कदेवः विस्मितः आश्चर्य-चकितस्सन् तम्प्रति सिंहदेवम्प्रति सत्वरं झटित्येव प्रचलति स्म प्रस्थानं कृतवान् ।

भाषा

सिंहदेव के विषय में और अधिक क्या कहा जाय । सिंहदेव मे बार २ दुराचार इस प्रकार परिचय देने लगा अर्थात् प्रकट होने लगा कि राजा विक्रमाङ्कदेव ने आश्चर्य युक्त होकर शीघ्र ही उसके विरूद्ध प्रस्थान कर दिया ।

पूरितः प्रतिरवेण दिग्गज—श्रोत्रशङ्कुकुहरप्रसर्पिणा ।
दुन्दुभिध्वनिरभूदयत्नतस्तस्य मङ्गलनिनादनिर्भरः ॥५८॥

अन्वयः

तस्य दिग्गजश्रोत्रशङ्कुकुहरप्रसर्पिणा प्रतिरवेण पूरितः दुन्दुभिध्वनिः अयत्नतः मङ्गलनिनादनिर्भरः अभूत् ।

व्याख्या

तस्य विक्रमाङ्कदेवस्य दिग्गजानां श्रोत्रशङ्कुः कर्णसंलग्नाः शङ्कुः तेषां कुहरेषु "अथ कुहरं शुषिरं विवरं बिलम् । छिद्रं निर्व्यथनं" इत्यमरः । प्रसर्पिणा व्याप्तेन प्रतिरवेण प्रतिध्वनिना पूरितः व्याप्तः दुन्दुभिध्वनिर्वाद्यविशेषशब्दः अयत्नतः प्रयासं विनैव मङ्गलनिनादैर्यात्रासमयोचितमाङ्गलिकशब्दैर्निर्भरः पूरितः अभूत् ।

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव के, दिग्गजों के कान में बधे शंखों के भीतर से होने वाली प्रतिध्वनि से वृद्धिगत दुन्दुभि की ध्वनि अनायास से ही (शंख में प्रतिध्वनित होने से) मङ्गलनाद से पूर्ण हो गई।

न क्षितीन्द्रपटहस्वनोऽभवद् दिक्करिश्रवणपाटने पटुः।
यत्सुदीर्घकररन्ध्रपूरणादल्पतां प्रथममाससाद सः ॥५६॥

अन्वयः

क्षितीन्द्रपटहस्वनः दिक्करिश्रवणपाटने पटुः न अभवत्। यत् सः प्रथमं सुदीर्घकररन्ध्रपूरणात् अल्पताम् आससाद।

व्याख्या

क्षितीन्द्रस्य विक्रमाङ्कदेवस्य पटहस्वनः दुन्दुभ्यादिवाद्यविशेषस्वनः दिक्करिणां दिग्गजानां श्रवणपाटने कर्णविदारणे पटुस्समर्थो नाभवत्। यद्यस्मात्कारणात् सः पटहशब्दः प्रथमं पूर्वमेव सुदीर्घकराणां विशालशुण्डादण्डानां रंध्रयोश्छिद्रयोः पूरणात् प्रवेशात् अल्पतां क्षुद्रतामाससाद प्राप।

भाषा

राजा के नगाड़ो का शब्द, दिग्गजो के कानो को फोड़ देने मे समर्थ न हो सका। क्योकि वह पूर्व मे हाथियो की सूड़ो के छिद्रों में प्रविष्ट हो जाने से कम हो गया था।

भूपतेः समभरेण दन्तिनां दूरमानमति भूमिमण्डले।
नूनमम्बुदनिनादमेदुरः प्राप दुन्दुभिरवश्चिरान्नभः ॥६०॥

अन्वयः

भूपतेः दन्तिनां समभरेण दूरम् आनमति भूमिमण्डले अम्बुदनिनादमेदुरः दुन्दुभिरवः नूनं चिरात् नभः प्राप।

व्याख्या

भूपतेर्विक्रमाङ्कदेवस्य दन्तिनां गजानां समभरेण सवृशभारेण समतभारेणेत्यर्थः। दूरमत्यन्तमानमति नीचैर्गच्छति भूमिमण्डले पृथ्वीमण्डले अम्बुदस्य मेघस्य निनादवत् मेदुरो गम्भीरो "सान्द्रस्निग्धस्तु मेदुरः" इत्यमरः। दुन्दुभिरवः नूनं

निश्चयेन चिरात् बहुकालेन नभः आकाशं प्राप प्राप्तवान् । अत्र काव्यलिङ्ग-स्वङ्कारो नवीनहेतुकल्पनात् ।

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव के हाथियो के लगातार बोझे से पृथ्वीमण्डल के अधिक नीचे दब जाने से मेघ के शब्द के समान गम्भीर नगाडो का शब्द देरी से आकाश मे पहुँच सका । अर्थात् पृथ्वी के बहुत नीचे हो जाने से पृथ्वी और आकाश का फासला बढ़ जाने से दुन्दुभी की ध्वनि को आकाश तक पहुँचने मे अधिक देर लगी ।

पन्नगेश्वरफणासु तद्बल-क्षुण्णरेणुतलिनापि सर्वतः ।
आर्द्रतां गजमदाम्बुभिर्गता भूमिरित्यधिकमाप गौरवम् ॥६१॥

अन्वयः

पन्नगेश्वरफणासु सर्वतः तद्बलक्षुण्णरेणुतलिना अपि भूमिः गज-मदाम्बुभिः आर्द्रतां गता इति अधिकं गौरवम् आप ।

व्याख्या

पन्नगानां सर्पाणां "उरगः पन्नगो भोगी" इत्यमरः । ईश्वरोऽधिपश्शेषस्तस्य फणास्तासु सर्वत आसमन्तात्तस्य विक्रमाङ्कदेवस्य बलानि सैन्यानि "वरूथिनी बलं सैन्यं" इत्यमरः । तैः क्षुण्णाः संक्षुब्धा रेणवस्ताभिस्तलिना सान्तरा स्तोका वा "तलिनं विरले स्तोके वाच्यलिंगं तथोन्तरे" इत्यमरः । भूमिः करिमदजलैरार्द्रतां गता इति हेतोरधिकमत्यन्तं गौरवं आप गुरुत्वं भाराधिक्यं प्राप ।

भाषा

चारो ओर राजा विक्रमाङ्कदेव की पलटनो से खुदे स्थानो की धूलि से जमीन विरल हो जाने पर, पृथ्वी, हाथियो के मदजलो से गिली हो गई । इस कारण से शेषनाग की फणाओ पर अधिक बोझ आ पड़ा । अर्थात् गिली मिट्टी सूखी मिट्टी से भारी हो जाती है इसलिये शेषनाग की फणाओ पर अधिक बोझ हो गया ।

अब्धिषु स्थलपथीकृतेषु नः पूर्यते जवविधौ कुतूहलम् ।
इत्यकुर्वत दिगन्तगोचरं नूनमस्य तुरगाः क्षमारजः ॥६२॥

अन्वयः

अस्य तुरगाः अब्धिषु स्थलपथीकृतेषु सत्सु नः जवविधौ कुतूहलं पूर्यते इति क्षमारजः दिगन्तगोचरं नूनम् अकुर्वत ।

व्याख्या

अस्य विक्रमाङ्कदेवस्य तुरगाः अश्वाः अब्धिषु समुद्रेषु स्थलस्य पथीकृतेषु मार्गतामापादितेषु नोऽश्वानां जवविधौ वेगव्यापारे कौतूहलं कौतुकं सौख्यं पूर्यते सफलीभवति इति हेतोः क्षमायाः पृथिव्या रजो धूलिं दिगन्तगोचरं दिगन्तव्यापिनीं नूनं निश्चयेनाकुर्वत कृतवन्तः । 'प्रयातुमस्माकमियं कियत्पदं धरा तदम्भोधिरपि स्थलायताम्' इति नैषधपद्येऽपि ।

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव के घोडो ने, समुद्रो पर भी यदि जमीन पर का मार्ग बन जाता तो हम लोगो का वेग से चलने के सम्बन्ध का हौसला पूरा हो जाता । इस प्रकार विचार कर ही निश्चय से उन्होने पृथिवी की धूलि को दिगन्तव्यापी बना दिया ।

पृष्ठनिर्लुठितभूमिरेणवस्तस्य वारणवरा विरेजिरे ।
क्वापि भूमिमवतार्य तत्क्षणादागता इव समेत्य दिग्गजाः ॥६३॥

अन्वयः

तस्य पृष्ठनिर्लुठितभूमिरेणवः वारणवराः क्व अपि भूमिम् अवतार्य तत्क्षणात् समेत्य आगता दिग्गजा इव विरेजिरे।

व्याख्या

तस्य विक्रमाङ्कदेवस्य पृष्ठेषु पृष्ठप्रदेशेषु निर्लुठिता लुठनेन लग्नास्संगता भूमेः रेणवो धूलयो येषान्ते पृष्ठनिर्लुठितभूमिरेणवः वारणवरा गजश्रेष्ठाः क्वापि कस्मिन्नपि स्थाने भूमिं पृथ्वीमवतार्य स्वपृष्ठेभ्योऽधः स्थापयित्वा तत्क्षणात् तस्मिन्नेव काले समेत्यैकत्रीभूय आगता दिग्गजा इव विरेजिरे शुशुभिरे । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव के, जमीन पर लोट-पोट करने से पीठ पर लगी मिट्टी वाले हाथी, मानों कहीं तो भी जमीन को नीचे उतार कर तुरन्त इकट्ठा होकर आये हुये दिग्गजों के ऐसे शोभित होते थे ।

पस्पृशुर्न पृथिवीं तुरङ्गमाः स्पर्धयेव दिननाथवाजिनाम् ।
भोगिभर्तुरभवन्मतङ्गज-स्थान एव नितरां परिश्रमः ॥६४॥

अन्वयः

तुरङ्गमाः दिननाथवाजिनां स्पर्धया इव पृथिवीं न पस्पृशुः, भोगिभर्तुः मतङ्गजस्थाने एव नितरां परिश्रमः अभवत् ।

व्याख्या

तुरङ्गमाः अश्वाः दिननाथस्य सूर्यस्य वाजिनोऽश्वाः "वाजिवाहार्वगन्धर्व:" इत्यमरः । तेषां स्पर्धया विजिगीषया इव स्वगुणाधिक्यप्रदर्शनद्वारा पृथिवीं भूमिं न पस्पृशुः आकाशे एवाधिककालं जग्मुः । अतएव भोगिनां सर्पाणां भर्तुः "उरगः पन्नगो भोगी" इत्यमरः । शेषस्य पृथिव्यां तुरङ्गानां स्थितेरभावात् मतङ्गजानां मत्तकरिणां "मतङ्गजो गजो नागः" इत्यमरः । स्थाने सम्बन्धे एव नितरामधिकं परिश्रमोऽभवत् ।

भाषा

घोडे, सूर्य के घोड़ो की स्पर्धा से मानो पृथ्वी का स्पर्श भी नही करते थे । शेषनाग को हाथियो को धारण करने में ही अत्यन्त परिश्रम हुआ । अर्थात् घोडो के कम काल तक पृथ्वी पर रहकर अधिक काल तक आकाश में चलते रहने से उनका कोई बोझ न हुआ । केवल हाथियो का ही बोझा उठाने में परिश्रम पडा ।

उन्मदद्विरदहस्तशीकर-श्रेणिभिर्नभसि तस्य दर्शिता ।
रेणुहारितपथस्य भास्वतश्चूर्णिता इव रथेन तारकाः ॥६५॥

अन्वयः

नभसि तस्य उन्मदद्विरदहस्तशीकरश्रेणिभिः तारकाः रेणुहारितपथस्य भास्वतः रथेन चूर्णिताः इव दर्शिताः ।

व्याख्या

नभसि गगने तस्य विक्रमाङ्कदेवस्य उन्मदा उत्कटमदान्धा द्विरदाः करिणस्तेषां हस्ताः शुण्डादण्डास्तेषां शीकरा करोत्क्षिप्ताम्बुकणाः "शीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः" इत्यमरः । तेषां श्रेणिभिः परम्पराभिरेतद्व्याजेन तारकाः नक्षत्राणि रेणुभिर्धूलिभिर्हारितः प्रतिरुद्धः पन्था यस्य स तस्य रेणुहारितपथस्य जातविभ्रमस्य भास्वतस्सूर्यस्य रथेन चूर्णिता इव दर्शिताः प्रकटीकृताः । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव के मदोन्मत्त हाथियो की सूड़ो के जलकणो की पक्तियों से आकाश में, धूलि से भूले हुए मार्गवाले सूर्य के रथ से मानो तारागण चूर २ कर दिये गये हों ऐसा प्रकट होता था। अर्थात् हाथियों के द्वारा ऊपर आकाश में सूड़ो द्वारा उठाये हुए जलकणो से ऐसा मालूम होता था मानों रास्ता भूले हुए सूर्य के रथ से तारे चूर २ हो गये हों।

उन्नतद्विपघटासमीपगः शोभते स्म भगवान्दिवाकरः।
उन्मदद्विरदसङ्गजां भियं त्याजयन्निजतुरङ्गमानिव ॥६६॥

अन्वयः

उन्नतद्विपघटासमीपगः भगवान् दिवाकरः निजतुरङ्गमान् उन्मदद्विरदसङ्गजां भियं त्याजयन् इव शोभते स्म।

व्याख्या

उन्नता अत्युच्चा द्विपघटाः गजसमूहास्तासां समीपे गच्छतीत्युन्नतद्विपघटासमीपगः 'दन्तीदन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेकपो द्विपः' इत्यमरः। भगवान्दिवाकरस्सूर्यः निजतुरङ्गमान् स्वकीयाश्वान् उन्मदाः प्रचण्डाः द्विरदा गजास्तेषां सङ्गाज्जाता ताम् उन्मदद्विरदसङ्गजां भियं भीतिं त्याजयन् गमयन् इव शोभते स्म।

भाषा

ऊंचे २ हाथियो के पास मे आया हुआ भगवान् सूर्य, (हाथियो के बहुत ऊंचे होने से सूर्य समीप हो गया था)। अपने घोड़ो को, मदोन्मत्त हाथियो के सहवास से उत्पन्न भय को छुडाने के लिये अर्थात् हाथियो को देखकर घोड़े न भडके, इसलिये आये हुए के समान शोभित होता था।

रेजिरे करटिपृष्ठसङ्गताः स्वर्णरत्नमयसारिसम्पदः।
भूमिरेणुभरतो नभस्तलादानता इव विमानपङ्क्तयः ॥६७॥

अन्वयः

करटिपृष्ठसङ्गताः स्वर्णरत्नमयसारिसम्पदः भूमिरेणुभरतः नभस्तलात् आनताः विमानपङ्क्तयः इव रेजिरे।

व्याख्या

करटिनां गजानां "काकेभगण्डौ करटौ" इत्यमरः। पृष्ठेषु सङ्गताः स्थापिताः स्वर्णमयाः रत्नमयाश्च सारिसम्पदः पर्याणसम्पदः भूमिरेणुभरतः

पृथ्वीधूलिभारात् हेतोः नभस्तलादाकाशादवनताः अधोगताः विमानपङ्क्तयः 'व्योमयानं विमानोऽस्त्री' इत्यमरः। व्योमयानमण्डलानीव रेजिरे शुशुभिरे।

भाषा

हाथियों की पीठो पर बँधे हुए सोने और रत्नों के हौदे आदि की सामग्री, पृथ्वी की उड़ी धूलो के बोझ से नीचे की ओर लटक आए हुए विमानो की पक्तियो के समान शोभित होती थी।

भास्वतः करिभयावगाहनाद् वाहनैरिव निपातितोऽरुणः।
कुम्भिकुम्भतटचीनपिष्टतः प्राप रेणुविसरः क्षमातलम् ॥६८॥

अन्वयः

कुम्भिकुम्भतटचीनपिष्टतः रेणुविसरः करिभयावगाहनात् भास्वतः वाहनैः निपातितः अरुणः इव क्षमातलं प्राप।

व्याख्या

कुम्भिनां गजानां कुम्भतटेषु चीनपिष्टं सिन्दूरं तस्मादागत रेणुविसरः धूलिसमूहः करिणां हस्तिनां भयस्य भीतेरवगाहनात्सम्बन्धात् भास्वतः सूर्यस्य वाहनैरश्वैर्निपातितोऽरुणः सूर्यसारथिरिव "सूरसूतोऽरुणोऽनूरुः काश्यपिर्गरुडाग्रजः" इत्यमरः। क्षमातलं पृथ्वितलं प्राप आजगाम।

भाषा

हाथियो के गण्डस्थलों में लगे हुए सेन्दुर के झरकर गिरने से उड़ी हुई लाल रग की धूलि का समूह, हाथियो का भय हो जाने से अर्थात् हाथियो को देखकर भडक जाने से सूर्य के घोडो के द्वारा नीचे गिराये हुए लाल रग के सूर्य के सारथी अरुण के समान पृथ्वी पर आ पडा।

कोपतः प्रचलितोऽपि भूपतिः सान्त्वनाय हृदि सत्वरोऽभवत्।
ये श्रयन्त्यकरणं श्रियः कृते तेऽन्य एव कुलपांसना नृपाः ॥६९॥

अन्वयः

भूपतिः कोपतः प्रचलितः अपि सान्त्वनाय हृदि सत्वरः अभवत्। ये श्रियः कृते अकरणं श्रयन्ति ते कुलपांसनाः नृपाः अन्ये एव।

व्याख्या

भूपतिर्विक्रमाङ्कदेवः कोपतः क्रोधतः प्रचलितोऽपि क्षुब्धोऽपि तमाक्रान्तुं समायतोऽपीत्यर्थः। सान्त्वनाय साम्ने हृदि चित्ते सत्वरः अभवत्। कोपा-

विष्टोऽपि सामप्रयोगे सत्वरोऽभवदिति भावः। ये जनाः श्रियो लक्ष्म्याः कुले अकरणं दुष्कर्म भवन्ति कुर्वन्ति, ते कुलपांसनाः कुलकण्टकाः कुलनाशकाः नृपा अन्ये एव। विचित्रगतयो दुर्जनाः। वैधर्म्येण अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः।

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव, क्रोध से आक्रमण करने के लिये आया हुआ होने पर भी अपने चित्त मे साम प्रयोग (शान्ति-धारण) करने की शीघ्रता करने लगा। जो लक्ष्मी के लिये दुष्कर्म करने को उतारू हो जाते हैं वे कुल-कलङ्क राजा लोग दूसरे ही होते हैं।

अन्तिकीभवति निम्नगातटे तत्र तत्र परिपन्थिनो भटाः।
एत्य युद्धकरणेन कुन्तल-क्ष्मापतेः क्रुधमदीपयन्पथि ॥७०॥

अन्वयः

पथि अन्तिकीभवति निम्नगातटे तत्र तत्र परिपन्थिनः भटाः युद्धकरणेन एत्य कुन्तलक्ष्मापतेः क्रुधम् अदीपयन्।

व्याख्या

पथि मार्गे अन्तिकीभवति सामिप्यमागच्छति निम्नगातटे कृष्णानदीतीरे तत्र तत्र स्थाने स्थाने परिपन्थिनः शत्रुसम्बन्धिन "प्रत्यर्थि परिपन्थिनः" इत्यमरः। भटाः योधाः "भटा योधाश्च योद्धारः" इत्यमरः। युद्धकरणेन युद्धहेतोः सङ्ग्रामं कर्तुमेत्यागत्य कुन्तलक्ष्मापतेर्विक्रमाङ्कदेवस्य क्रुधं क्रोधमदीपयन् वर्धयामासुः।

भाषा

कृष्णा नदी के तट के समीप आने के रास्ते में बीच २ में विपक्षी वीरो ने युद्ध करने के उद्देश्य से आकर, कुन्तल देश के राजा विक्रमाङ्कदेव के क्रोध को बढा दिया।

श्रीचालुक्यधुरन्धरोऽथ रुधिरस्रोतस्विनीगाहन-
क्रीडाकांक्षिणि कुञ्जरे कृतपदस्तं देशमाक्रान्तवान्।
यत्रानेन करिष्यते प्रतिपथव्यावर्तिताम्भोभर-
भ्राम्यद्वीरकरङ्कसङ्कटतटा सा कृष्णवेणीसरित् ॥७१॥

अन्वयः

अथ रुधिरस्रोतस्विनीगाहनक्रीडाकाङ्क्षिणि कुञ्जरे कृतपदः श्री चालुक्यधुरन्धरः तं देशम् आक्रान्तवान्, यत्र अनेन सा कृष्णवेणी-सरित् प्रतिपथव्यावर्तिताम्भोभरभ्राम्यद्वीरकरङ्कसङ्कटतटा करिष्यते।

व्याख्या

अथेत्यनन्तरं रुधिरस्य रक्तस्य स्रोतस्विन्यो नद्यस्तासु गाहनक्रीडा विलोडन-विहारस्तां काङ्क्षते इच्छतीति तस्मिन् कुञ्जरे गजे कृतं पदं स्थानं चरणो वा येन सः श्रीचालुक्यधुरन्धरः श्रीचालुक्यवंशधुरीणः तं देशमाक्रान्तवानधिष्ठितवान्, यत्र देशे अनेन विक्रमाङ्कदेवेन सा प्रसिद्धा कृष्णवेणी नाम्नी सरिन्नदी प्रतिपथं प्रतिमार्गं व्यावर्तितेन संचलितेनाम्भोभरेण जलसमूहेन भ्राम्यद्भिर्वीराणां हतयोधानां करङ्कैरस्थिपञ्जरैः सङ्कटे व्याप्ते तटे उभयतीरे यस्यास्सा करिष्यते विधास्यते। अत्र शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः। "सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्"।

भाषा

बाद में, खून की नदी में स्नानादि क्रीड़ा करने की इच्छा रखनेवाले हाथी पर बैठे हुए श्री चालुक्य वंश के धुरीण राजा विक्रमाङ्कदेव ने उस प्रदेश पर आक्रमण किया जहाँ इसके द्वारा वह कृष्णा नदी उलटा बहने वाले पानी के समूह से चक्कर खाने वाले मरे हुए वीरों के अस्थिपञ्जरों से तगतट वाली की जानेवाली थी।

अवनितिलकस्तत्रावासं विधाय सरित्तटे
घटयितुमिमं साम्नैवाभूदुपायपरायणः
कुटिलहृदयः स त्वेतस्मान्न सान्त्वनमग्रहीद्
भवति हि मतिर्भाग्यभ्रंशे नितान्तमनङ्कुशा ॥७२॥

अन्वयः

अवनितिलकः तत्र सरित्तटे आवासं विधाय इमं साम्ना एव घट-यितुम् उपायपरायणः अभूत्। सः कुटिलहृदयः तु एतस्मात् सान्त्वनं न अग्रहीत्। हि भाग्यभ्रंशे मतिः नितान्तम् अनङ्कुशा भवति।

व्याख्या

अवनेः पृथिव्यास्तिलकोऽलङ्कारभूतो राजा विक्रमाङ्कदेवस्तत्र तस्मिन् सरित्तटे कृष्णानदीतटे आवासं सैन्यनिवासं विधाय कृत्वा इमं सिंहदेवं लघुभ्रातरं साम्ना शान्त्यैव घटयितुं योजयितुमुपायपरायणः समुद्युक्तोऽभूत् । सः कुटिलहृदयः जिह्मवृत्तिः सिंहदेवस्तु एतस्मात् विक्रमाङ्कदेवात् सान्त्वनं शान्तिं नाग्रहीत् नाश्रितवान् । हि यतः भाग्यस्य भ्रंशे पाते विनाशे वा मतिः बुद्धिः नितान्तमत्यन्तमनङ्कुशा स्वेच्छाचारिणी भवति । अत्र हरिणीच्छन्दः । "नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता" ।

भाषा

पृथ्वी के अलङ्कार रूप राजा विक्रमाङ्कदेव ने कृष्णा नदी के तट पर अपनी सेना का पड़ाव डाल कर अपने छोटे भाई सिंहदेव को साम नीति से ही समझाने के उपाय किये । परन्तु कुटिल हृदय वाले सिंहदेव ने इसके शान्ति के प्रस्तावों को स्वीकार न किया । क्यों कि दुर्भाग्य के उदित होने पर बुद्धि अत्यन्त निरङ्कुश अर्थात् स्वेच्छाचारिणी हो जाती है । अर्थात् उसमे विचार-शक्ति नही रह जाती ।

इति श्री त्रिभुवनमल्लदेव–विद्यापति–काश्मीरकभट्ट श्रीबिल्हणविरचिते विक्रमाङ्कदेवचरिते महाकाव्ये चतुर्दश सर्ग ।

नेत्राब्जाभ्रयुगाङ्कविक्रमशरत्कालेऽत्र दामोदरात्
भारद्वाजबुधोत्तमात्समुदितः श्रीविश्वनाथः सुधीः ।
चक्रे रामकुबेरपण्डितवरात्संप्राप्तसाहाय्यक—
टीकायुग्ममिदं चतुर्दशमिते सर्गे रमानुग्रहात् ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

॥ श्री. ॥

महाकविश्रीबिल्हणविरचितं

विक्रमाङ्कदेवचरितम्

पञ्चदशः सर्गः

भुजविक्रमदन्तिडिण्डिमः समरोत्साहशिखण्डिवारिदः
अथ कुन्तलभर्तुरध्वनद् विजयोद्योगविलासदुन्दुभिः ॥१॥

अन्वयः

अथ भुजविक्रमदन्तिडिण्डिमः समरोत्साहशिखण्डिवारिदः कुन्तलभर्तुः विजयोद्योगविलासदुन्दुभिः अध्वनत् ।

व्याख्या

अथेत्यनन्तरं भुजानां वीरभुजानां विक्रमः पराक्रम एव दन्ती गजः "दन्ती दन्तावलो हस्ती" इत्यमरः। तस्य डिण्डिमः वाद्यविशेषशब्दः "वाद्यप्रभेदाड-मरुमड्डुडिण्डिमझर्झराः" इत्यमरः। समरोत्साहः युद्धोत्साह एव शिखण्डी मयूरस्तस्य कृते वारिदो मेघः। मयूरा नृत्यन्ति मेघदर्शनादिति प्रसिद्धम्। कुन्तलभर्तुर्विक्रमाङ्कदेवस्य विजयस्य सिंहदेवेन सह युद्धे विजयस्योद्योगः प्रयत्नः तस्य विलासो विस्तारस्तस्य दुन्दुभिरुत्साहवर्धको वाद्यविशेषः "भेरी स्त्री दुन्दुभिः पुमान्" इत्यमरः। अध्वनत् शब्दमकरोत्। अस्मिन् सर्गे वियोगिनी छन्दः। विषमे ससजा गुरुः समे सभरालोऽथ गुरुर्वियोगिनी" इति लक्षणम्। अत्र रूपकालङ्कारः।

भाषा

इसके अनन्तर वीरों की भुजाओं के पराक्रम रूपी हाथी पर के नगाड़ो का शब्द स्वरूप, युद्ध के उत्साह रूपी मोर के लिये मेघ की गर्जना के स्वरूप,

कुन्तल देश के राजा विक्रमाङ्कदेव का अपने छोटे भाई सिंह देव पर विजय प्राप्त करने के उद्योग के विस्तार को सूचित करने वाली तुरुही बजने लगी ।

विजयोत्सुकवीरसुन्दरी-कृतनिष्कम्पचतुष्कमण्डलाः ।
नरनाथपथावलोकन-प्रगुणत्वं सुभटाः सिषेविरे ॥२॥

अन्वयः

विजयोत्सुकवीरसुन्दरीकृतनिष्कम्पचतुष्कमण्डलाः सुभटाः नरनाथपथावलोकनप्रगुणत्वं सिषेविरे ।

व्याख्या

विजयोत्सुकाः विजयदर्शनोत्सुकाः वीराणां सुन्दर्यः कान्तास्ताभिः यद्वा वीरपतिवरणार्थं समागता देवाङ्गनास्ताभिः कृतानि विरचितानि निष्कम्पानि स्थिराण्याश्चर्यमयदृश्यत्वात् चतुष्कमण्डलानि मङ्गलार्थं गृहाङ्गणे चतुष्कोणमण्डलानि चतुष्कोणात्मकावस्थानानि वा येषान्ते सुभटाः सुयोधाः "भटा योधाश्च योद्धारः" इत्यमरः । नरनाथो विक्रमाङ्कदेवस्तस्य पन्थाः नरनाथपथः तस्यावलोकने दर्शने प्रगुणत्वं साभिलाषातिशयत्वं सिषेविरे भेजिरे प्राप्ताः । विक्रमाङ्कदेवस्य शीघ्रमागममन्विच्छन्तः अत्युत्कण्ठिता जाता इति भावः ।

भाषा

अपने पतियो के विजय के लिये उत्कण्ठित योद्धाओं की पत्नियों ने, मङ्गल सूचक चतुष्कोण से जिनका चौक पूर दिया है या विजय के लिये उत्सुक अप्सराओ ने युद्ध देखने की अभिलाषा से तथा वीरो के युद्ध में मरने पर उनको वरण करने की अभिलाषा से जिनके चारो ओर अपना स्थिर स्थान बना लिया है, ऐसे वीरगण, विक्रमाङ्कदेव के शीघ्र रणभूमि में आने की इच्छा से अत्यन्त उत्कण्ठित हो उठे ।

रणदुन्दुभिमेघनिस्वनैः सुभटश्रेणिविदूरभूमयः ।
अभवन्निस्मृतासिवल्लरी-नवरत्नाङ्कुरकोटिदन्तुराः ॥३॥

अन्वयः

रणदुन्दुभिमेघनिस्वनैः सुभटश्रेणिविदूरभूमयः निस्सृतासिवल्लरीनवरत्नाङ्कुरकोटिदन्तुराः अभवन् ।

व्याख्या

रणस्य युद्धस्य दुन्दुभयो वाद्यविशेषा एव मेघास्तेषां निस्वनाः शब्दास्तैः सुभटश्रेणय एव विदूरभूमयः विदूरदेशभुवः वैडूर्यभूमयो निसृताः समुत्पन्नाः कोशाद्बहिः कृता वा असिवल्लर्यः खड्गलताः "तृष्यां खड्गे तु निस्त्रिंशश्चन्द्रहासासिरिष्टयः" "वल्ली तु व्रततिर्लता" इत्युभयत्राप्यमरः। एव नवा नवीनोत्पन्नाः रत्नानामङ्कुरास्तेषां कोटिभिरग्रभागैर्बन्धुराः उन्नतानताः "बन्धुरं तून्नतानतम्" इत्यमरः। अभवन्। वैडूर्यभूमिषु मेघगर्जनया रत्नाङ्कुराणि निस्सरन्तीति कविप्रसिद्धिः। अत्र रूपकालङ्कारः।

भाषा

युद्ध के नगाड़े रूपी मेघ के शब्दों से, योद्धाओं की कतार रूपी वैडूर्य की भूमियाँ, निकले हुए असिलता रूपी रत्नाङ्कुरों के अग्रभागों से नीची ऊँची दीख पडने लगी। अर्थात् वैडूर्य भूमियो मे मेघ के शब्दों से नूतन रत्नाङ्कुर निकलते है यह प्रसिद्धि है। वे जैसे नीचे ऊँचे दीख पड़ते है वैसे ही युद्धभूमि में योद्धाओ की असिलताएँ नीची ऊँची दृष्टिगोचर हुईं।

रणसंभ्रमलोलभङ्गिषु न्यपतन्नद्भुतरागनिर्भराः।
कबरीषु कुरङ्गचक्षुषामसिलेखासु च वीरदृष्टयः ॥४॥

अन्वयः

अद्भुतरागनिर्भराः वीरदृष्टयः रणसम्भ्रमलोलभङ्गिषु कुरङ्गचक्षुषां कबरीषु असिलेखासु च न्यपतन्।

व्याख्या

अद्भुतः विचित्रः रागः प्रेम क्रोधजोऽरुणिमा च तेन निर्भराः भरिताः समृद्धा वा वीराणां दृष्टयः रणस्य युद्धस्य सम्भ्रमेण समारोहेण लोला चञ्चला भङ्गिः रचना यासान्तास्तासु कुरङ्गचक्षुषां मृगाक्षीणां कबरीषु केशपाशेषु "कबरी केशवेशोऽथ" इत्यमरः। असिलेखासु खड्गलतासु च न्यपतन् सम्पतिताः। अत्र पर्यायाऽलङ्कारः।

भाषा

अद्भुत प्रेम से अथवा क्रोधजनित लालिमा से भरी वीरों की दृष्टियाँ युद्ध की हलचल से स्थिर न रहने वाली तलवारों पर तथा युद्ध के विचार से सरके हुए मृगनयनियों के केशपाशों पर पड़ीं।

अधिरोपितसारिपञ्जर-स्थितिदर्पोद्धुरयोधमण्डलाः ।
अभजन्त गजाः स्थितिं बहिर्मणिसन्नाहनिवेशपेशलाः ॥५॥

अन्वयः

अधिरोपितसारिपञ्जरस्थितिदर्पोद्धुरयोधमण्डलाः मणिसन्नाहनिवेशपेशलाः गजाः बहिः स्थितिम् अभजन्त ।

व्याख्या

अधिरोपिताः हस्तिषु स्थापिताः ये सारिपञ्जराः गजपर्याणस्थान्यासनानि तेषु स्थित्या दर्पोद्धुराणि मदोन्मत्तानि योधमण्डलानि भटसमूहाः येषु ते मणीनां सन्नाहः कवचः "कवचो गर्दभाण्डे च सन्नाहं पटहेऽपि च" इति विश्वमेदिनी । तस्य निवेशेन धारणेन पेशलाः सुन्दराकृतयो गजाः बहिः शिबिरात् स्थितिं निवासमभजन्त शिश्रियरे ।

भाषा

हाथियो पर के हौदों में बैठने के अभिमान से उद्धत योद्धाओ को धारण करने वाले, मणियो से जड़े कवचो को पहिनने से सुन्दर दीख पडने वाले हाथी बाहर आ गए ।

सुभटः प्रमदाकरार्पितां दलयन्नागरखण्डवीटिकाम् ।
रिपुदन्तिघटासु खण्डनं तृणमुत्साहवशादमन्यत ॥६॥

अन्वयः

सुभटः प्रमदाकरार्पितां नागरखण्डवीटिकां दलयन् उत्साहवशात् रिपुदन्तिघटासु खण्डनम् तृणम् अमन्यत ।

व्याख्या

सुभटः सुयोधः प्रमदया स्वप्रियया करेण हस्तेनार्पिता दत्ता तां नागरखण्डस्य ताम्बूलपत्रस्य वीटिकां (बीड़ा) इति हिन्दी भाषायाम् । दलयम् दन्तैश्चर्वणां कुर्वन्नुत्साहवशात् रिपूणां शत्रुणां दन्तिनो गजास्तेषां घटास्समूहास्तासु "करिणां घटना घटा" इत्यमरः । खण्डनं विदारणं तृणमिवाऽनायाससाध्यममन्यत मेने ।

भाषा

वीर योद्धा ने अपनी स्त्री के हाथ से दिए गए हुए पान के बीडे को चबाते हुए, अदम्य उत्साह के कारण शत्रुओं के हाथी के समह को नष्ट-भ्रष्ट कर देना तुच्छ समझ लिया।

रिपुराजशिरसुः शेखर-स्थितरत्नाङ्कुरकण्टकालिषु ।
भ्रमणक्षमतां दधुः खुरास्तुरगाणां कृतलोहबन्धनाः ॥७॥

अन्वयः

कृतलोहबन्धनाः तुरगाणां खुराः शेखरस्थितरत्नाङ्कुरकण्टकालिषु रिपुराजशिरस्सु भ्रमणक्षमतां दधुः ।

व्याख्या

कृतं विहितं लोहबन्धन लोहनिर्मितं बन्धनं (नाल) इति हिन्दी भाषायाम् । येषु ते कृतलोहबन्धनाः तुरगाणामश्वानां खुराः पादतलानि "शफं क्लीबे खुरः पुमान्" इत्यमरः । शेखरेषु राज्ञां मस्तकालङ्कारेषु स्थितानि निबद्धानि रत्नानि तेषामङ्कुरा अग्रभागा एव कण्टकाः तेषामालयः श्रेणयो येषु ते तेषु रिपुराजानां शत्रुनृपाणां शिरस्सु मूर्धसु भ्रमणस्य चङ्क्रमणस्य क्षमतां सामर्थ्यं दधुः धृतवन्तः । अत्र भङ्ग्यन्तरेण तुरगाणामुत्कर्षवर्णनात्पर्यायोक्तमलङ्कारः ।

भाषा

नाल जड़े हुए घोड़ो के खुर, मस्तक पर के मुकुट के रत्नो के अङ्कुर रूपी कांटो वाले विपक्षी राजाओ के मस्तको पर चलने की क्षमता रखने लगे। अर्थात् वे घोड़े उच्च कोटि के थे ।

रणलम्पटमत्तकुञ्जरं स्फुरदश्वीयसहस्रसङ्कुलम् ।
तदनेकभटोद्भटं बलं क्षुभितस्याप लिपिं पयोनिधेः ॥८॥

अन्वयः

रणलम्पटमत्तकुञ्जरं स्फुरदश्वीयसहस्रसङ्कुलं अनेकभटोद्भटं तत् बलं क्षुभितस्य पयोनिधेः लिपिम् आप ।

व्याख्या

रणेषु युद्धेषु लम्पटा आसक्ताः मत्ताः मदान्धाः कुञ्जरा गजा यस्मिन्तत् अश्वानां समूहा अश्वीयानि स्फुरत्प्रविलसदश्वीयानां सहस्रं तेन सङ्कुलं व्याप्तं अनेकेऽसंख्याताः भटाः योद्धारस्तैरुद्भटं प्रचण्डं तत् प्रसिद्धं बलं सैन्यं क्षुभितस्य संचलितस्य पयोनिधेस्समुद्रस्य लिपिं सादृश्यमाप लेभे । अत्रोपमालङ्कारप्रभेदः ।

भाषा

युद्ध के लिये लालायित मदोन्मत्त हाथियों वाला, कभी स्थिर न रहने वाले हजारो घोडो से युक्त और असख्य योद्धाओ से प्रचण्ड वह विक्रमाङ्कदेव का सैन्य, तूफान के समय के समुद्र की समता को प्राप्त हुआ ।

करिणः करशीकरोत्करैः प्रहितैः क्ष्मापतिमन्दिरोदरे ।
सिषिचुः क्षितिपस्य हृद्गतां विजयाशां कुसुमावलीमिव ॥९॥

अन्वयः

करिणः क्ष्मापतिमन्दिरोदरे प्रहितैः करशीकरोत्करैः क्षितिपस्य हृद्गतां विजयाशां कुसुमावलीम् इव सिषिचुः ।

व्याख्या

करिणो गजाः, क्ष्मापतेर्महीपतेर्विक्रमाङ्कदेवस्य मन्दिरं गृहं तस्योदरेऽभ्यन्तरे प्रहितैः समुत्क्षिप्तैः कराणां शुण्डादण्डानां शीकरोऽम्बुकणाः "शीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः" इत्यमरः । तेषामुत्करंस्समूहैं क्षितिपस्य नृपस्य हृद्गतां मनसि स्थितां विजयाशां कुसुमावलीं पुष्पराशिमिव सिषिचुः जलसिञ्चनं चक्रुर्यथा तस्या म्लानता न भवेत् । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

भाषा

हाथियो ने, राजा के महल के भीतर अपनी सूडो से छोडे हुए जलकणों से राजा की हार्दिक विजय की आशा को फूलो की राशि के समान सीचा । अर्थात् फूलों पर पानी छिडकते रहने के जैसे वे मुर्झाते नही वैसे ही राजा की विजयाशा कम न हो सकी ।

अथ सप्तभिः श्लोकैः कुलकम् ।

दशमम्बुरुहामिव स्रजं विजयश्रीपरिरम्भशंसिने ।
स्फुरणप्रवणाय बाहवे बहुमानेन समर्पयन्नृपः ॥१०॥

अन्वयः

नृपः विजयश्रीपरिरम्भशंसिने स्फुरणप्रवणाय बाहवे बहुमानेन अम्बुरुहां स्रजम् इव दृशं समर्पयन्। 'दन्तिनः पृष्ठमधिरुरोहेति' षोडशसंख्याकश्लोकेन सम्बन्धः।

व्याख्या

नृपः विक्रमाङ्कदेवः विजयस्य श्रीर्लक्ष्मीस्तस्याः परिरम्भ आलिङ्गनं तस्य शंसिने सूचकाय स्फुरणे सञ्चलने प्रवणायोन्मुखाय तत्पराय वा स्फुरणयुक्ताय बाहवे भुजाय बहुमानेनात्यादरेणाऽम्बुरुहां कमलानां स्रजं मालामिव दृशं लोचनं समर्पयन् प्रापयन् "दन्तिनः पृष्ठमधिरुरोह" इति षोडशसंख्याकश्लोकेन सम्बन्धः। शुभशंसिने यथा कश्चिदुपहारं वितरतीत्यप्रस्तुतार्थसूचनादत्र समासोक्तिरलङ्कारः।

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव ने, भावी विजयलक्ष्मी के आलिङ्गन की सूचना करने वाली फुरफुराती हुई अपनी भुजा पर कमल की माला के समान अपनी दृष्टि डालते हुए (शीघ्रता से हाथी के पीठ पर सवारी की।) इसका सम्बन्ध १६ वें श्लोक से है।

पुलकाङ्कुरकण्टकोत्करानतिरागादविजानतीमिव।
वपुषा सुभटश्रियं दधन्निबिडालिङ्गनगाढकौतुकाम् ॥११॥

अन्वयः

अतिरागात् पुलकाङ्कुरकण्टकोत्करान् अविजानतीम् इव निबिडालिङ्गनगाढकौतुकां सुभटश्रियं वपुषा दधत् (नृपो विक्रमाङ्कदेवो दन्तिनः पृष्ठम् अधिरुरोह) इति सम्बन्धः।

व्याख्या

अतिरागादत्यन्तप्रेम्णा पुलको रोमाञ्चः तस्याङ्कुरा एव कण्टकाः तेषामुत्करास्समूहास्तानविजानतीमुपेक्षमाणामिव निबिडं घनं यदालिङ्गनमाश्लेषस्तस्य गाढं कौतुकं उत्कण्ठा यस्यास्सा तां सुभटस्य योधस्य श्रीः शोभा लक्ष्मीर्वा वपुषा शरीरेण "गात्रं वपुः संहननं शरीरं" इत्यमरः। दधत् धारयन्, नृपो दन्तिनः पृष्ठमधिरुरोह-इत्याद्युत्तरेणान्वयः। अत्राऽपि समासोक्त्यलङ्कारः।

भाषा

अत्यधिक प्रेम के कारण मानों रोमाञ्च के अङ्कुर रूपी काटों का अनुभव न करती हुई, गाढ़ आलिङ्गन के उत्कट कौतुक से भरी वीरलक्ष्मी को शरीर से धारण करता हुआ (राजा विक्रमाङ्कदेव जल्दी से हाथी की पीठ पर सवार हो गया)।

हसितेन विनिःसरन्मुख-स्थितकर्पूरपरागपाण्डुना ।
घटयन्प्रतिराजपङ्कज-ग्लपनार्थं तुहिनच्छटामिव ॥१२॥

अन्वयः

विनिस्सरन्मुखस्थितकर्पूरपरागपाण्डुना हसितेन प्रतिराजपङ्कज-ग्लपनार्थं तुहिनच्छटां घटयन् इव। (विक्रमाङ्कदेवो दन्तिनः पृष्ठमधिरुरोह) इत्युत्तरेणान्वयः।

व्याख्या

विनिस्सरन्निर्गच्छन् मुखे स्थितो विद्यमानः यः कर्पूरस्य परागो धूलिस्तद्वत्पाण्डु शुभ्रं तेन हसितेन हास्येन प्रतिराजानः शत्रुनृपतय एव पङ्कजानि कमलानि तेषां ग्लपनार्थं परिम्लानत्वाप्त्यै तुहिनच्छटां हिमशोभां घटयन् कुर्वन् विस्तारयन्निव नृपोऽधिरुरोह हस्तिन. पृष्ठमित्युत्तरेणान्वयः। हिमेन पद्मानि नश्यन्तीति लोके प्रसिद्धम्। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

भाषा

बाहर निकलने वाली मुख मे की कपूर की धूली के समान सफेद हास्य से मानो विपक्षी राजा रूपी कमलो को मूर्छा देने के लिये हिम की शोभा को प्रकट करता हुआ (राजा विक्रमाङ्कदेव हाथी की पीठ पर सवार हुआ।) हिमपात से कमल नष्ट हो जाते है, यह प्रसिद्ध है।

वलयोदररत्नदर्पण-प्रतिबिम्बच्छलतो निजाकृतेः ।
हरिणेव विपक्षसंक्षय-व्रतभाजा भुजयोरधिष्ठितः ॥१३॥

अन्वयः

निजाकृतेः वलयोदररत्नदर्पणप्रतिबिम्बच्छलतः विपक्षसंक्षयव्रत-भाजा हरिणा भुजयोः अधिष्ठितः इव (स नृपो हस्तिनः पृष्ठमधिरुरोह') इत्युत्तरेणान्वयः।

व्याख्या

निजाकृतेः स्वीयस्वरूपस्य विक्रमाङ्कदेवदेहस्य वलययोः कटकयोः कङ्कणयोः 'आवापकः पारिहार्यः कटको वलयोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। उदरे मध्यभागौ तयोः संलग्नं यद्रत्नमेव दर्पणस्तस्मिन्प्रतिबिम्बस्य छलतो व्याजात् विपक्षाणां शत्रूणां संक्षयो विनाश एव व्रतं प्रतिज्ञा तद्भजतीति तेन हरिणा विष्णुना भुजयोर्बाह्वोरधिष्ठितः संश्रित इव। 'नृपो हस्तिनः पृष्ठमधिरुरोह' इत्युत्तरेण सम्बन्धः।

भाषा

कङ्कणो के बीच में जड़े रत्न रूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित अपनी आकृति के मिष से मानों शत्रुओ के नाश का व्रत धारण करने वाले विष्णु भगवान् को अपनी भुजाओ पर धारण करने वाला (राजा हाथी की पीठ पर सवार हुआ।)

घनचन्दनलेपपाण्डुना वपुषा पोषितलोचनोत्सवः।
परितः स्फटिकक्षमाभृता दधता कङ्कटतामिवाश्रितः ॥१४॥

अन्वयः

घनचन्दनलेपपाण्डुना वपुषा पोषितलोचनोत्सवः कङ्कटतां दधता स्फटिकक्षमाभृता परितः आश्रितः इव। (स नृपो हस्तिनः पृष्ठमधिरुरोह' इत्युत्तरेणान्वयः।)

व्याख्या

घनं सान्द्रं चन्दनं तस्य लेपेन पाण्डु शुभ्रं तेन वपुषा शरीरेण पोषितस्संवर्धितः लोचनानां दर्शकवृन्दनयनानामुत्सव आनन्दो येन सः कङ्कटतां कवचत्वं "उरच्छदः कङ्कटको जगरः कवचोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। दधता धारयता स्फटिकमणेः क्षमां पृथ्वीं बिभर्तीति तेन स्फटिकक्षमाभृता कैलासेन परितोऽभितः आश्रित इव संसक्त इव 'नृपो हस्तिनः पृष्ठमधिरुरोह' इत्युत्तरेण सम्बन्धः।

भाषा

गाढ़े चन्दन के लेप के कारण श्वेतवर्ण शरीर से दर्शकों के नेत्रों को आनन्द देनेवाला मानो कवच का काम करने वाले श्वेतवर्ण के स्फटिक भूमि से युक्त कैलास पर्वत से चारों ओर से घिरा हुआ (राजा विक्रमाङ्कदेव हाथी की पीठ पर सवार हुआ।)

धृतमङ्गलमौक्तिकाक्षतः क्षणदानाथ इवामलद्युतिः ।
मदवारणमन्थरैः पदैरथ निष्क्रम्य चतुष्कवेश्मनः ॥१५॥

त्वरयाधिरुरोह दन्तिनः कृतपूजस्य स पृष्ठमादरात् ।
सह मङ्गलतूर्यनिस्वनैरुदयाद्रेरिव शृङ्गमर्यमा ॥१६॥

अन्वयः

अथ धृतमङ्गलमौक्तिकाक्षतः क्षणदानाथः इव अमलद्युतिः सः मदवारणमन्थरैः पदैः चतुष्कवेश्मनः निष्क्रम्य मङ्गलतूर्यनिस्वनैः सह कृतपूजस्य दन्तिनः पृष्ठम् अर्यमा उदयाद्रेः शृङ्गम् इव आदरात् त्वरया अधिरुरोह ।

व्याख्या

अथेत्यनन्तरं धृतानि गृहीतानि मङ्गलाय कल्याणनिष्पादनाय मौक्तिकानि अक्षताश्च येन सः क्षणदाया रात्रेः "रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा" इत्यमरः । नाथः स्वामीव चन्द्र इवामलद्युतिर्धवलकान्तिः स विक्रमाङ्कदेवो मदवारणस्य मत्तद्विरदस्येव मन्थराणि अलसगमनानि तैः पदैश्चरणन्यासैश्चतुष्कवेश्मनः वस्त्रनिर्मितचतुष्कोणगृहात् निष्क्रम्य मङ्गलतूर्याणि माङ्गलिकवाद्यविशेषास्तेषां निस्वनाः शब्दास्तैस्सह कृतपूजस्य विहितार्चस्य दन्तिनो गजस्य पृष्ठं पृष्ठभागमर्यमा सूर्यः "सूरसूर्यार्यमादित्यः" इत्यमरः । उदयाद्रेरुदयाचलस्य शृङ्गं शिखरमिव "कूटोऽस्त्री शिखर शृङ्गम्" इत्यमरः । आदरात् स्नेहवशात् त्वरया शीघ्रमेवाधिरुरोह समुपविष्टवान् । इत्यन्तक्रियाकुलकम् ।

भाषा

इसके अनन्तर माङ्गलिक मोती और अक्षताओ को धारण करने वाला, चन्द्रमा के समान निर्मल कान्तिवाला वह राजा विक्रमाङ्कदेव, मदोन्मत्त हाथी की चाल से चौकोर तम्बू में से निकल कर माङ्गलिक तुरुही के शब्दो के साथ, पूजा किये गए हुए हाथी की पीठ पर, उदयाचल की चोटी पर सूर्य के समान प्रेमपूर्वक शीघ्रता से सवार हुआ ।

क्षितिपेन करी विभूषितस्तरुणीनेत्रसहस्रसङ्गिना ।
हसति स्म सुरेन्द्रदन्तिनः श्रियमारूढपुरन्दरस्य सः ॥१७॥

अन्वयः

तरुणीनेत्रसहस्रसङ्गिना क्षितिपेन विभूषितः सः करी आरूढ-पुरन्दरस्य सुरेन्द्रदन्तिनः श्रियं हसति स्म।

व्याख्या

तरुणीनां युवतीनां नेत्रसहस्राणि तेषां सङ्गी सम्बन्धवान् तेन क्षितिपेन पृथ्वीपालकेन नृपेण विक्रमाङ्कदेवेन विभूषितोऽलङ्कृतः सः करी हस्ती आरूढः समासीनः पुरन्दर इन्द्रः "पुरुहूतः पुरन्दरः" इत्यमरः। यस्मिन्स तस्य सुरेन्द्रस्य महेन्द्रस्य दन्तिन ऐरावतगजस्य श्रियं लक्ष्मीं शोभां वा हसति स्म तिरश्चकार।

भाषा

तरुणियो के सहस्र नेत्रो से सम्बन्धित अर्थात् देखे जाने वाले राजा विक्रमाङ्कदेव से सुशोभित वह हाथी, सहस्र नेत्र वाले इन्द्र की सवारी से युक्त ऐरावत हाथी की शोभा की हँसी उडाने लगा अर्थात् उसको नीचा दिखाने लगा।

महति क्षितिभर्तुराहवे निकटस्थे कुविकल्पदोलिताम्।
अकरोज्जयकुञ्जरः स्थितिं स करास्फालनतः स्थिरामिव ॥१८॥

अन्वयः

निकटस्थे क्षितिभर्तुः महति आहवे सः जयकुञ्जरः कुविकल्प-दोलितां स्थितिं करास्फालनतः स्थिराम् इव अकरोत्।

व्याख्या

निकटस्थे समीपवर्तिनि क्षितिभर्तृ राज्ञो विक्रमाङ्कदेवस्य महति विशाले आहवे युद्धे "सङ्ग्रामाभ्यागमाहवाः" इत्यमरः। सः प्रसिद्धो जयकुञ्जरः विजय-कारकगजः कुत्सिताः विकल्पाः सन्देहाः तैः दोलितामनिश्चितां स्थितिं यद्धे-प्रस्थानं करस्य शुण्डादण्डस्य आस्फालनतः सञ्चालनात् ताडनात् स्थिरामिव दृढामिवाकरोत्। गजं दृष्ट्वा सर्वे विक्रमाङ्कदेवविजये निश्चिता बभूवुरिति भावः। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

भाषा

शीघ्र ही प्रारम्भ होनेवाले राजा विक्रमाङ्कदेव के घोर संग्राम में, बुरी कल्पनाओं से उत्पन्न अस्थिर परिस्थिति को उस विजय हस्ती ने अपनी सूड

को चारो ओर फटकार कर स्थिर बना दिया। अर्थात् उस हस्ती को देखकर सब लोग राजा के निश्चित जय की कल्पना करने लगे।

नलिनीदलचारुकान्तिभिः पदचिह्नैर्मदवारिपूरितैः।
सरसीमिव तापशान्तये रचयामास स पार्थिवश्रियः ॥१९॥

अन्वयः

सः नलिनीदलचारुकान्तिभिः मदवारिपूरितैः पदचिह्नैः पार्थिवश्रियः तापशान्तये सरसीम् इव रचयामास।

व्याख्या

सः जयकुञ्जरः नलिनीदलानां पद्मपत्राणां चारु कान्तिरिव चारु कान्तिर्येषान्तानि तैः मदवारिभिर्मदजलैः पूरितानि व्याप्तानि तैः पदानां स्वचरणानां चिह्नैः पदन्यासचिह्नैः पार्थिवश्रियः राजलक्ष्म्याः तापशान्तये भाविविरहसन्तापनाशाय सरसीं कासारं तडागं "पद्माकरस्तडागोऽस्त्री कासारः सरसी सरः" इत्यमरः। इव रचयामास चकार।

भाषा

उस जयकुञ्जर ने कमललिनी के पत्ते की सुन्दर शोभा के समान शोभावाले, मदजल से भरे अपने गोल पावों के गड्ढो से मानो राजलक्ष्मी के भावी सताप को दूर कर देने के लिये तलाव बना दिया था।

मदपानबहुप्रलापिनां भ्रमराणां करविभ्रमैरभूत्।
रिपुवारणडिण्डिमध्वनि-श्रवणायेव निवारणोन्मुखः ॥२०॥

अन्वयः

(सः) रिपुवारणडिण्डिमध्वनिश्रवणाय इव करविभ्रमैः मदपानबहुप्रलापिनां भ्रमराणां निवारणोन्मुखः अभूत्।

व्याख्या

स गजः रिपूणां विक्रमाङ्कदेवशत्रूणां वारणा गजास्तेषां "कुञ्जरो वारणः करी" इत्यमरः। डिण्डिमध्वनेः गजानामुपरिस्थाप्यमानवाद्यमानदुन्दुभिप्रभृतिवाद्यविशेषशब्दस्य श्रवणायाऽऽकर्णनायेव करस्य शुण्डादण्डस्य विभ्रमा विलासा उत्क्षेपास्तैः मदस्य पानेन बहुप्रलपन्तीति मदपानबहुप्रलापिनस्तेषां भ्रमराणां

द्विरेफाणां "षट्पद्भ्रमरालयः" इत्यमरः। निवारणे दूरीकरणे उन्मुखस्तत्परोऽभूत्।

भाषा

वह जयकुञ्जर मानो शत्रुओ के हाथी पर के नगाड़ों के शब्दों को सुनने के लिये, मद जल पीने से उन्मत्त होकर अधिक शब्द करने वाले भौंरों को, अपनी सूड की फटकारो से भगा देने में तत्पर हुआ।

अथ वीररसावतारतस्तरसा पल्लवितेन चेतसा।
जगदद्भुतभूरिसाहसः प्रहसन्नुच्चलति स्म पार्थिवः ॥२१॥

अन्वयः

अथ जगदद्भुतभूरिसाहसः पार्थिवः वीररसावतारतः पल्लवितेन चेतसा प्रहसन् तरसा उच्चलति स्म।

व्याख्या

अथेत्यनन्तरं जगति लोकेऽद्भुतं विचित्रं भूरि बहुलं साहसं पराक्रमः यस्य सः पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवो राजा विक्रमाङ्कदेवो वीररसस्यावतारतः आविर्भावात् पल्लवितेन विकसितेन चेतसा हृदयेन प्रहसन् प्रहासं कुर्वन् तरसा वेगेन उच्चलति स्म प्रतस्थे।

भाषा

इसके अनन्तर ससार में अद्भुत और अधिक साहस रखने वाला राजा विक्रमाङ्कदेव, वीररस का आविर्भाव होने से प्रसन्न चित्त से हँसते हुए वेग से आगे बढ़ा।

समराङ्गणसङ्गतिं भजन् विजयश्रीपरिरम्भणोत्सुकः।
स बभार विलाससद्मनि प्रणयिन्याः प्रविशन्निवोत्सवम् ॥२२॥

अन्वयः

समराङ्गणसङ्गतिं भजन् विजयश्रीपरिरम्भणोत्सुकः सः प्रणयिन्याः विलाससद्मनि प्रविशन् इव उत्सवं बभार।

व्याख्या

समराङ्गणस्य युद्धभूमेः सङ्गतिं सामीप्यं भजन् तत्र विद्यमानः विजयस्य श्रीः विजयलक्ष्मीः तस्याः परिरम्भणे आश्लेषे उत्सुकः उत्कण्ठितः स विक्रमाङ्कदेवः

प्रणयिन्याः प्रियायाः विलाससद्मनि केलिगृहे प्रविशन् प्रवेशं कुर्वन्निवोत्सवमुत्साहं बभार दधौ ।

भाषा

समरभूमि में प्रवेश कर विजयलक्ष्मी का आलिङ्गन करने के लिये उत्सुक उस राजा विक्रमाङ्कदेव ने प्रणयिनी के केलिगृह में प्रवेश करने के समान आनन्द प्राप्त किया ।

कियतीमपि तीव्रविक्रमः समतिक्रम्य वसुन्धरां ततः ।
अवलोकयति स्म भूपतिः प्रसरत्तूर्यरवं द्विषद्बलम् ॥२३॥

अन्वयः

ततः तीव्रविक्रमः भूपतिः कियतीम् अपि वसुन्धरां समतिक्रम्य प्रसरत्तूर्यरवं द्विषद्बलम् अवलोकयति स्म ।

व्याख्या

ततस्तदनन्तरं तीव्रः प्रबलः उन्नतो वा विक्रमः पराक्रमः साहसं वा यस्य सः तीव्रविक्रमः भूपतिः राजा विक्रमाङ्कदेवः कियतीमपि अल्पपरिमाणां वसुन्धरां पृथिवीं समतिक्रम्य गत्वा प्रसरत् विस्तारमाप्नुवन् तूर्यरवः वाद्यविशेषशब्दः यस्मिंस्तत् द्विषतां शत्रूणां बलं सैन्यसमूहमवलोकयति स्म ददर्श ।

भाषा

इसके अनन्तर प्रबल पराक्रम वाले विक्रमाङ्कदेव राजा ने थोड़ी दूर पृथ्वी पर आगे बढ़ कर फैलने वाले तुरही के शब्दों से युक्त शत्रु की सेना को देखा ।

अथ सिंहदेव गजान् वर्णयितुमारभते :—

मदवारिसमुत्थशैवल-द्युतिरोलम्बकलापजन्मनाम् ।
अदधुर्दशनांशुचन्द्रिकां तिमिराणामिव वारणाय ये ॥२४॥

अन्वयः

ये मदवारिसमुत्थशैवलद्युतिरोलम्बकलापजन्मनां तिमिराणां वारणाय इव दशनांशुचन्द्रिकाम् अदधुः ।

व्याख्या

ये गजाः सिंहदेवहस्तिनः मदवारिभिर्मदजलैस्समुत्थानां समुत्पन्नानां शैवलानां

द्युतिरिव शोभेव द्युतिः शोभा येषास्ते तेषां रोलम्बानां भ्रमराणां कलापास्स-मूहास्तेभ्यो जन्म उत्पत्तिः "जन्मानि जनिरुत्पत्तिरुद्भवः" इत्यमरः। येषां ते तेषां तिमिराणां तमसां "तमिस्त्रं तिमिरं तमः" इत्यमरः। वारणायेव दूरी-करणायेव दशनानां दन्तानामंशुचन्द्रिकां किरणकौमुदीमदधुः धृतवन्तः। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

भाषा

सिहदेव के हाथी मदरूपी जल में उत्पन्न सेवार की शोभा रखनेवाले भौंरो के समूहो से जनित अन्धकार को दूर करने के लिये मानो दातो के किरणो की चादनी को धारण करते थे। अर्थात् उनके दाँत बहुत चमकीले थे।

निजदानजलोत्थकर्दम-स्स्खलनत्रस्ततयेव ये पथि।
पदविन्यसनं दधुः क्रमान्मदनिद्रार्धनिमीलितेक्षणाः ॥२५॥

अन्वयः

मदनिद्रार्धनिमीलितेक्षणाः ये पथि निजदानजलोत्थकर्दमस्खलन-त्रस्ततया इव क्रमात् पदविन्यसनं दधुः।

व्याख्या

मदेन या निद्रा स्वापः "स्यान्निद्रा शयनं स्वापः" इत्यमरः। तयार्धे निमीलिते सम्पुटिते ईक्षणे नयने येषान्ते ये गजाः पथि मार्गे निजदानजलेन स्वकीयमद-वारिणोत्थाः सञ्जाताः कर्दमाः पङ्काः तेषु स्खलनं पतनं तस्मात् त्रस्ततया भये-नेव क्रमात् शनैः २ पदविन्यसनं चरणन्यास दधुः चक्रुः।

भाषा

मदजनित निद्रा से आधे बन्द नेत्रों वाले वे हाथी मार्ग में अपने मदजल से हुए कीचड़ मे फिसलने के भय से मानों धीरे २ आगे पॉव रखते थे।

सरसीसलिलावगाहन-ग्रहिलाः स्वैरविहारकेलिषु।
दलितादरविन्दमण्डलादधिरूढामिव ये दधुः श्रियम् ॥२६॥

अन्वयः

सरसीसलिलावगाहनग्रहिलाः ये स्वैरविहारकेलिषु दलितात् अर-विन्दमण्डलात् अधिरूढाम् इव श्रियं दधुः।

व्याख्या

सरसीनां तडागानां "तडागोऽस्त्री कासारः सरसी सरः" इत्यमरः। सलिलेषु अवगाहनानि स्नानानि तेषु प्रहिलाः वृद्धस्नेहाः ये गजाः स्वैरविहारकेलिषु स्वच्छन्दक्रीडाविलासेषु वलितात् अरविन्दमण्डलात् पद्मसमूहादधिरूढां संश्रितां समागतामिव श्रियं लक्ष्मीं दधुः धृतवन्तः। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

भाषा

तालाब के पानी मे स्नान करने मे अधिक प्रेम रखने वाले वे हाथी मानों जल में स्वच्छन्दविहार करने की क्रीडा से टूटे हुए कमलों के समूह से प्राप्त शोभा को धारण करते थे।

दधुरद्रिविघट्टनेषु ये पतितैर्मूर्धनि निर्झरैरिव।
कलयन्तमतिप्रभूततां कृतधाराजलदुर्दिनं मदम् ॥२७॥

अन्वयः

ये अद्रिविघट्टनेषु मूर्धनि पतितैः निर्झरैः कृतधाराजलदुर्दिनं इव अतिप्रभूततां कलयन्तं मदं दधुः।

व्याख्या

ये गजाः अद्रिषु पर्वतेषु विघट्टनानि आघातास्तेषु मूर्धनि शिरसि पतितैः समागतैः निर्झरैः वारिप्रवाहैः "वारिप्रवाहो निर्झरो झरः" इत्यमरः। कृतं धाराजलेन दुर्दिनं" "मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम्" इत्यमरः। येन स इव अतिप्रभूततां बाहुल्यं कलयन्तं प्राप्तं मदं दधुः धारायामासुः।

भाषा

वे हाथी पर्वतों को टक्कर मारकर तोड़ने से माथे पर गिरने वाले झरनों से वर्षा ऋतु में लगातार बृष्टि होने के समान अत्यन्त आधिक्य को प्राप्त मद-जल को धारण करते थे।

श्रुतिभूषणशङ्खशुक्तिभिः शशिमुग्धाभिरधारयन्त ये।
मदनिर्झरिणीतटस्थलीं कलहंसीभिरुपासितामिव ॥२८॥

अन्वयः

ये शशिमुग्धाभिः श्रुतिभूषणशङ्खशुक्तिभिः कलहंसीभिः उपासिताम् इव मदनिर्झरिणीतटस्थलीम् अधारयन्त इव।

व्याख्या

ये गजाः शशिवन्मुग्धास्तुन्वर्यस्ताभिः चन्द्रसदृशधवलाभिः श्रुत्योः कर्णयोर्भूषणरूपाः शङ्खाः शुक्तयश्च ताभिः कलहंसीभिरुपासितां परितो वेष्टितां मदस्य निर्झरिण्यो नद्यस्तासां तटस्थलीं तीरमधारयन्त धारयामासुः इव ।

भाषा

जो हाथी चन्द्रमा के समान सफेद कान में पहिने हुए भूषण रूप शख और सीपों से मानों कलहंसनियो से युक्त मद की नदी के तट को धारण करते थे ।

ननु कस्य निवेश्यतामिदं शिरसि प्राज्यभुजस्य भूभुजः ।
पदमेकमधारयन्निति ध्रुवमुच्चैस्त्रिपदीनिभेन ये ॥२६॥

अन्वयः

ये त्रिपदीनिभेन ननु कस्य प्राज्यभुजस्य भूभुजः शिरसि इदं निवेश्यताम् इति एकं पदम् उच्चैः ध्रुवम् अधारयन् ।

व्याख्या

ये गजाः त्रिपदीनिभेन त्रयाणां पदानां समाहारस्त्रिपदी चरणत्रयं तस्या निभेन व्याजेन "निभस्तु कथितो व्याजे" इति मेदिनी । पादत्रयावस्थानव्याजेन ननु कस्य प्राज्यौ विशालौ "प्रभूतं प्रचुरं प्राज्यं" इत्यमरः । भुजौ बाहू यस्य स तस्य भूभुजो राज्ञः शिरसि इदं पदं निवेश्यतां स्थाप्यतामिति विचार्य एकं पदं चरणमुच्चैरुन्नतं कृत्वा ध्रुवं निश्चयेनाऽधारयन् धृतवन्तः ।

भाषा

जो हाथी तीन पावो पर खडे होने के मिष से किस विशाल भुजावाले राजा के मस्तक पर यह चौथा पैर रक्खे इस विचार से निश्चय ही एक पाँव ऊपर उठाये हुए थे ।

कृतसन्नहनास्तथाविधाः करिणो यत्र सहस्रशः स्थिताः ।
मदलुब्धमधुव्रतस्वनैरगमन्यामिकतामिव श्रियः ॥३०॥

अन्वयः

यत्र तथाविधाः सहस्रशः कृतसन्नहनाः स्थिताः करिणः मदलुब्धमधुव्रतस्वनैः श्रियः यामिकताम् अगमन् इव ।

व्याख्या

यत्र रणस्थले तथाविधाः पूर्वोक्ताः सहस्रशः कृतं सन्नहनं कवचधारणादिकं यैस्ते कृतसन्नहनाः स्थिताः विद्यमानाः करिणो गजाः मदे लुब्धाः लोलुपाः मधुव्रताः भ्रमरा "मधुव्रतो मधुकरो मधुलिण्मधुपालिनः" इत्यमरः । तेषां स्वनाः शब्दास्तैः श्रियो राजलक्ष्म्याः यामिकतां प्राहरिकतामगमन् इव प्रापुरिव । अत्राऽप्युत्प्रेक्षालङ्कारः ।

भाषा

जिस रणभूमि मे इस प्रकार के कवच से युक्त विद्यमान हजारो हाथी मदलोलुप भौरो की गुजार मे मानों राजलक्ष्मी के पहरेदारो का काम करते थे ।

सम्प्रति सिंहदेवाश्वान् वर्णयति :—

जलराशिनिवेशसङ्कटा जवरोधाय बभूव भूरियम् ।
कविकां दशनैरखण्डयन्निति कोपादिव ये मुहुर्मुहुः ॥३१॥

अन्वयः

ये जलराशिनिवेशसङ्कटा इयं भूः जवरोधाय बभूव इति कोपात् मुहुः मुहुः दशनैः कविकाम् अखण्डयन् इव ।

व्याख्या

येऽश्वाः जलराशिस्समुद्रस्तस्य निवेशेन स्थित्या सङ्कटा सङ्कोचमापन्ना संक्षिप्ता इयं भूः पृथिवी जवस्याऽश्ववेगस्य निरोधाय बभूव, जलप्राप्त्या तेषां गतिवेगोऽवरुद्ध इति कोपात् कोधात् मुहुर्मुहुः वारम्वारं दशनैर्दन्तैः "रदना दशना दन्ताः" इत्यमरः । कविकां खलीनं "कविका तु खलीनोऽस्त्री" इत्यमरः अखण्डयन् इव चर्वितवन्त इव ।

भाषा

सिंहदेव के घोडे समुद्र की स्थिति से पृथ्वी सकुचित होकर उनके वेगों को रोकने में कारण हुई है मानो ऐसा विचार कर क्रोध से बार २ अपनी लगाम के अग्रभाग में लगे लोहे को चबा रहे थे ।

अवलम्बविडम्बनामिमां तरलैर्हन्त हया हसन्ति नः ।
वसुधामिति मत्सरादिव क्षपयन्ति स्म परिक्रमेषु ये ॥३२॥

अन्वयः

ये तरणेः हयाः नः इमाम् अवलम्बविडम्बनां हसन्ति हन्त इति मत्सरात् इव परिक्रमेषु वसुधां क्षपयन्ति स्म ।

व्याख्या

ये सिहवेवाश्वाः तरणेस्सूर्यस्य "द्युमणिस्तरणिर्मित्रः" इत्यमरः । हया अश्वा नोऽस्माकमिमां प्रत्यक्षदृश्यामवलम्बस्य भूम्यवलम्बस्य विडम्बनामाडम्बर-मवलम्बविडम्बनामाश्रयगतिर्वैन्यं निराश्रयगत्यसामर्थ्यं हसन्ति नाद्रियन्ते हन्तेति खेदावसरः इति मत्सरादिव द्वेषबुद्धया परिक्रमेषु गमनेषु वसुधां पृथिवीं क्षपयन्ति स्म चूर्णयन्ति स्म ।

भाषा

जो घोडे, सूर्य के घोडे हम लोगों की इस पृथ्वी के सहारे चलने की तथा बिना अवलम्ब के न चल सकने की हँसी उडाते है, यह एक दुःख की बात है, मानो ऐसे मत्सर से वे अपनी चाल से पृथ्वी को चूर कर रहे थे ।

अवलोक्य रवेस्तुरङ्गमान् नववैदूर्यनिभे नभस्तले ।
हरितासु तृणस्थलीषु ये विहरन्ति स्म वियद्भ्रमादिव ।।३३।।

अन्वय

ये नववैदूर्यनिभे नभस्तले रवेः तुरङ्गमान् अवलोक्य हरितासु तृणस्थलीषु वियद्भ्रमात् इव विहरन्ति स्म ।

व्याख्या

येऽश्वाः नववैदूर्यनिभे नवीनमरकतमणितुल्ये नभस्तले आकाशे रवेस्सूर्यस्य तुरङ्गमानश्वानवलोक्य दृष्ट्वा हरितासु हरिद्वर्णासु तृणस्थलीषु तृणभूमिषु वियद्भ्रमात् आकाशभ्रान्त्या इव विहरन्ति स्म क्रीडन्ति स्म । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

भाषा

जो घोड़े नये मरकत मणि के समान नीले आकाश में सूर्य के घोड़ों को (घूमते हुए) देखकर मानो हरी घास से भरी जमीनो पर आकाश के भ्रम से विहार करते थे ।

वदनस्थितफेनमण्डलच्छलतो दुग्धपयोधिनेव ये ।
निजसूनुतुरङ्गशङ्कया परितोषादुपसृत्य चुम्बिताः ।।३४।।

अन्वय

ये वदनस्थितफेनमण्डलच्छलतः दुग्धपयोधिना निजसूनुतुरङ्गशङ्कया परितोषात् उपसृत्य चुम्बिताः इव ।

व्याख्या

येऽश्वाः वदनेषु मुखेषु स्थितानि फेनमण्डलानि तेषां छलतो व्याजात् दुग्धपयोधिना क्षीरसागरेण निजसूनुतुरङ्ग उच्चैःश्रवास्तस्य शङ्कया सन्देहेन परितोषादानन्दादुपसृत्य तेषां समीपे समागत्य चुम्बिता इव । अत्र सापह्नवोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

भाषा

जो घोड़े मुख में की झाग के मिष से मानो क्षीरसागर द्वारा सुतनिर्विशेष उच्चैःश्रवा नामक घोड़े की शङ्का से प्रसन्न होकर चूम लिये गये हों । इन्द्र का घोड़ा उच्चैःश्रवा समुद्र में से निकलने से समुद्र उसका पिता होता है ।

खुरघट्टितवैरिकुट्टिम–स्फुटितैर्वह्निकणैः कदर्थिताः ।
न निघर्षमकार्षुरङ्घ्रिभिश्चटुलैर्ये क्वचिदेव वर्त्मनि ॥३५॥

अन्वयः

ये क्वचित् एव वर्त्मनि खुरघट्टितवैरिकुट्टिमस्फुटितैः वह्निकणैः कदर्थिताः चटुलैः अङ्घ्रिभिः निघर्षं न अकार्षुः ।

व्याख्या

येऽश्वाः क्वचिदेव वर्त्मनि कस्मिन्नपि मार्गे खुरैः शफैः "शफं क्लीबे खुरः पुमान्" इत्यमरः । घट्टिताः संघर्षिता वैरिणां लक्षणया शत्रुगृहाणां कुट्टिमाः बद्धभूमयः "कुट्टिमोऽस्त्री निबद्धाभूः" इत्यमरः । तेभ्यः स्फुटितैरुत्पन्नैः वह्निकणैरग्निस्फुलिङ्गैः कदर्थिताः पीडिता व्यग्रहृदयाः चटुलैः चपलैरङ्घ्रिभिः पादैः निघर्षं संघर्षणं न अकार्षुः कृतवन्तः । अधिकस्फुलिङ्गोत्पत्तिभयात् । तेषां गमनं वेगातिशयात् पृथ्वीमस्पृष्ट्वैव जातमिति भावः ।

भाषा

जो घोड़े, शत्रुओं के घरों के फर्श पर चलने से उनमें से टाप की रगड़ से निकलने वाली चिनगारियों से पीड़ित होकर, वही रास्ते में अपने पावों से पृथ्वी को रगड़ते ही न थे अर्थात् वे बिना जमीन का सहारा लिये ही वेग से उड़े चले जाते थे ।

निकटस्थितमेघडम्बरैः सुरचापैरिव तैस्तुरङ्गमैः ।
यदुदञ्चयति स्म साध्वसं जगतां वज्रनिपातनिष्ठुरैः ॥३६॥

अन्वयः

यत् निकटस्थितमेघडम्बरैः वज्रनिपातनिष्ठुरैः सुरचापैः इव तैः तुरङ्गमैः जगतां साध्वसम् उदञ्चयति स्म ।

व्याख्या

यत्सैन्यं निकटे समीपे स्थिता ये मेघास्तेषां डम्बरैराटोपैर्वज्रस्य विद्युतः निपातेन निष्ठुराः कठोरास्तैः सुरचापैरिन्द्रशरासनैरिव चित्रवर्णैस्तैः प्रसिद्ध-पराक्रमैः तुरङ्गमैः सिंहदेवस्याऽश्वैः जगतां भुवनस्थितजनानां साध्वसं भयम् "भीतिर्भीः साध्वसं भयम्" इत्यमरः । उदञ्चयति स्म उत्पादयाञ्चकार ।

भाषा

जिस सेना ने, समीप मे विद्यमान मेघाडम्बर से युक्त, बिजली के गिरने से कठोर, इन्द्रधनुष के समान रग बिरगी घोड़ो से सम्पूर्ण जगत् के लोगो में भय का सचार कर दिया ।

सम्प्रति सिंहदेवपदातीन्वर्णयति :—

हृदयस्थितरत्नभूषण–प्रतिबिम्बच्छलतः शिरांसि यैः ।
विधृतानि निजानि लीलया मरणे निर्गहनैरिवोरसि ॥३७॥

अन्वयः

मरणे निर्गहनैः यैः हृदयस्थितरत्नभूषणप्रतिबिम्बच्छलतः निजानि शिरांसि लीलया उरसि विधृतानि इव ।

व्याख्या

मरणे देहत्यागे निर्गहनैर्निर्भयैः यैः सिंहदेवपदातिभिः हृदयेषु स्थितानि धृतानि रत्नानि मणयः एव भूषणान्यलङ्कारास्तेषु प्रतिबिम्बस्य स्वशिरसः छायायाः छलतो व्याजात् निजानि स्वकीयानि शिरांसि लीलया अनायासेनोरसि विधृतानि हृदये स्थापितानि । अनेन पदातीनां रणे विजयार्थं स्वशिरश्छेदने आयासाभावे-नोत्साहप्रतीत्या वीररसध्वनिः ।

भाषा

मर मिटने में निर्भय सिंहदेव की पैदल पलटन के सिपाही हृदय पर पहिने हुए रत्नो के आभूषणो पर पडी मस्तक की परछाही के मिष से मानों उन्होंने अपने मस्तकों को खेलवाड में ही अपनी छाती पर रख लिया था। अर्थात् वे सिपाही युद्ध में अपनी गर्दन कट जाने की कुछ भी परवाह नहीं करते थे।

सहजोष्मविशोषजर्जरं हृदि येषां विरराज चन्दनम् ।
समनीकशतप्रहारजं च्युतमस्थ्नामिव पाण्डुरं रजः ॥३८॥

अन्वय

येषां हृदि सहजोष्मविशोषजर्जरं चन्दनं समनीकशतप्रहारजं अस्थ्नां पाण्डुरं रजः च्युतम् इव विरराज।

व्याख्या

येषां पदातीनां हृदि हृदये सहजेन स्वाभाविकेनोष्मणा तेजसा यो विशोषः शोषणं तेन जर्जरमत्यन्तं शुष्कं पूर्वं विलिप्तं चन्दनं समनीकाः शत्रुयोधाः तेषां शतानि तेषु प्रहारास्ताडनानि तस्माज्जातं अस्थ्नां कीकसानां "कीकसं कुल्यमस्थि च" इत्यमरः। पाण्डुरं शुक्लवर्णं रजः परागः च्युतमिव परिभ्रष्टमिव विरराज शोभते स्म। अत्र क्रियाया उत्प्रेक्षालङ्कारः।

भाषा

जिन पदातियो की स्वाभाविक गर्मी से सूख कर चूर भया हुआ हृदय पर लगाया हुआ चन्दन मानो सैकडो विपक्षो योधाओं पर प्रहार करने से उनकी चूर-चूर भई हड्डियो की गिरी हुई बुकनी की तरह शोभित होता था।

प्रबलेन भुजद्वयेन ये बहुशस्तीर्णमहाहवार्णवाः ।
यशसः प्रणयित्वमागताः पृथुडिण्डीरकलापपाण्डुनः ॥३९॥

अन्वयः

ये प्रबलेन भुजद्वयेन बहुशः तीर्णमहाहवार्णवाः पृथुडिण्डीरकलापपाण्डुनः यशसः प्रणयित्वम् आगताः।

व्याख्या

ये शूराः प्रबलेन प्रकृष्टबलशालिना भुजद्वयेन बाहुयुगलेन बहुशोऽनेकवारं तीर्णः समुल्लङ्घितो महानाहवो युद्धमेव "सङ्ग्रामाभ्यागमाहवाः" इत्यमरः।

अर्णवस्समुद्रो यैस्ते पृथुः विशालो डिण्डीरकलापः फेनसमूहः तद्वत्पाण्डुनः शुभ्रस्य यशसः प्रणयित्वं सङ्गतिमागताः प्राप्ताः। कविसमयप्रसिद्धं यशसः शुक्लत्ववर्णनम्। बाहुभ्यां तरणेन फेनोत्पत्तिः प्रसिद्धैव।

भाषा

जो वीर, अपनी उत्कृष्ट बलशाली दोनों भुजाओं से अनेक बार युद्धरूपी समुद्र को पार कर चुके थे, वे गाढे फेन समूह के ऐसे सफेद यश के भागी हुए। अर्थात् श्वेत यश से प्रेम करने लगे।

समदप्रतिपक्षमर्दनाद्बहुशस्त्रव्रणगर्तशालिनि।
निखिलेऽपि यदङ्गविस्तरे विदधे वीररसः समाश्रयम् ॥४०॥

अन्वयः

वीररसः समदप्रतिपक्षमर्दनात् बहुशस्त्रव्रणगर्तशालिनि निखिले अपि यदङ्गविस्तरे समाश्रयं विदधे।

व्याख्या

वीररसः (रसो जलं च) समदाः मदसहिताः दर्पान्धाः ये प्रतिपक्षाः शत्रवस्तेषां मर्दनात् संघर्षात् बहुशस्त्राणां रणेषु प्रहृतानां विविधशस्त्राणां व्रणास्तेषामेव गर्ता अवटाः "गर्तावटौ भुवि श्वभ्रे" इत्यमरः। तैः शालते शोभते तस्मिन्निखिले सकलेऽपि येषामङ्गविस्तरेऽवयवसमूहे समाश्रयं स्थितिं विदधे कृतवान्। अत्र श्लेषानुप्राणिता गम्योत्प्रेक्षालङ्कारः।

भाषा

मदभरे विपक्षियो का मर्दन करने में, बहुत से शस्त्रो के घावों के गड्ढों से भरे जिनके सम्पूर्ण शरीर के अययवों में वीररस ने आश्रय ले लिया था।

तिमिरैरिव पिण्डतां गतैर्दवदग्धैरिव घर्मवासरैः।
बहुभिः सुभटैस्तथाविधैर्यदसम्भाव्यपराभवागमम् ॥४१॥

अन्वयः

यत् पिण्डतां गतैः तिमिरैः इव दवदग्धैः घर्मवासरैः इव तथाविधैः बहुभिः सुभटैः असम्भाव्यपराभवागमम् (आसीत्)।

व्याख्या

यद् बलं सैन्यं पिण्डतां घनत्वं गतैः प्राप्तैः तिमिरैः तमस्तोमैरिव दवेन वनवह्निना दग्धैः घर्मवासरैः ग्रीष्मदिवसैरिव भयानकं तथाविधैः पूर्वोक्तप्रकारैः बहुभिरगणितैः सुभटैः योधैः असम्भाव्यः अवितर्कितः पराभवस्य पराजयस्याऽऽगमः प्राप्तिर्यस्य तत् इत्थम्भूतं सिंहदेवसैन्यमासीत् ।

भाषा

ठोस अन्धकार के तथा दावानल से जले ग्रीष्मऋतु के दिवसो के समान भयंकर उक्त प्रकार के अनेक योद्धाओं के रहने के कारण, सिंहदेव की सेना का पराजय होना असम्भव था। अर्थात् कालेरंग के तेजस्वी और भयानक योद्धा उस पलटन में थे।

परिभाव्य नितान्तभैरवं तदतिक्रान्तदिगन्तरं बलम् ।
कतरो न जगाम सम्भ्रमं मुमुदे कुन्तलपार्थिवः परम् ॥४२॥

अन्वयः

कतरः अतिक्रान्तदिगन्तरं नितान्तभैरवं तत् बलं परिभाव्य सम्भ्रमं न जगाम परं कुन्तलपार्थिवः मुमुदे ।

व्याख्या

कतरः कः वीरः अतिक्रान्तं व्याप्तं दिगन्तरं दिङ्मध्यं येन तत् नितान्तमत्यन्तं भैरवं भयङ्करं बलं सैन्यं "वरूथिनी बलं सैन्यम्" इत्यमरः। परिभाव्य सम्भ्रमं मतिविभ्रमं न जगाम न प्राप परं किन्तु कुन्तलपार्थिवः विक्रमाङ्कदेवो मुमुदे उत्साहवशादानन्दमग्नो बभूव ।

भाषा

ऐसे दिगन्तव्यापी, अत्यन्त भयंकर सैन्य को देखकर कौन घबड़हट में न पड़ेगा। परन्तु विक्रमाङ्कदेव को उस सैन्य को देखने से हर्ष हुआ।

विजयामृतकर्षणोद्यतैः सुभटैर्वीररसाम्बुधेस्ततः ।
प्रलयप्रतिमं द्वयोर्दिशोः समुपाक्रम्यत युद्धमुद्धतम् ॥४३॥

अन्वयः

ततः वीररसाम्बुधेः विजयामृतकर्षणोद्यतैः सुभटैः प्रलयप्रतिमम् उद्धतं युद्धं द्वयोः दिशोः समुपाक्रम्यत ।

व्याख्या

ततस्तदनन्तरं वीररस उत्साहस्थायिभावात्मकः जलञ्च तस्याम्बुधिस्समुद्रः यद्वा वीररस एवाम्बुधिस्तस्माद्विजय एवाऽमृतं तस्य कर्षणे बलादाहरणे उद्यतैः समुद्युक्तैः सुभटैः सुयोधैः प्रलयस्य सकलविनाशसमयस्य प्रतिमा सादृश्यं यस्य तत् प्रलयप्रतिममुद्धतं भयङ्करं युद्धं द्वयोः दिशोः उभयपक्षे समुपाक्रम्यत प्रारब्धम् । अत्र रूपकालङ्कारः ।

भाषा

इसके अनन्तर वीररस रूपी समुद्र को मथकर विजय रूपी अमृत, निकालने में तत्पर वीरो ने दोनो ओर, प्रलयकाल के समान भयङ्कर युद्ध प्रारम्भ कर दिया ।

अधिरुह्य बलद्वये बलाद्भुजदण्डैः परिदोलनोद्यते ।
समरद्रुमतः फलावलिर्निपपातेव शिरःकदम्बकैः ॥४४॥

अन्वयः

बलद्वये बलात् अधिरुह्य भुजदण्डैः परिदोलनोद्यते (सति) समरद्रुमतः शिरःकदम्बकैः फलावलिः निपपात इव ।

व्याख्या

बलयोः सैन्ययोः "वरूथिनी बलं सैन्यम्" इत्यमरः । द्वयं युगलं बलद्वयं तस्मिन् बलद्वये उभयपक्षसैन्ययोः बलाद् बलपूर्वकमधिरुह्याऽधिष्ठाय भुजदण्डैः परिदोलनं युद्धरूपवृक्षशाखानां सञ्चालनं तस्मिन्नुद्यते सन्नद्धे सति समरद्रुमतः समरवृक्षतः शिरःकदम्बकैः नरमुण्डपतनव्याजात् फलानामावलिः पङ्क्तिः "वीथ्यालिरावलिः पङ्क्तिः" इत्यमरः । निपपात इव भूमितले सम्पतिता इव । अत्र रूपकालङ्कारः ।

भाषा

दोनों सैन्यों के बलपूर्वक जमकर अपनी भुजाओ के चलाते रहने पर या समर रूपी वृक्षपर चढ़कर बलपूर्वक अपनी भुजाओं से उसे हिलाते रहने पर

मस्तकों के समूह के मिष से मानों समर वृक्ष के फल टूट २ कर नीचे गिरने लगे। अर्थात् सिर कट २ कर नीचे गिरने लगे।

सुभटस्य निहत्य वल्गतः सममेव प्रतिपक्षवीरतः।
अविशद्दृशि शोणितच्छटा हृदये खड्गलता च संमुखी ॥४५॥

अन्वयः

निहत्य वल्गतः सुभटस्य दृशि शोणितच्छटा प्रतिपक्षवीरतः हृदये सम्मुखी खड्गलता च समम् एव अविशत्।

व्याख्या

शत्रुवीरान्निहत्य वल्गतः आत्मानं श्लाघमानस्य सुभटस्य सुयोधस्य दृशि शोणितस्य रक्तस्य छटा कान्तिः शोणितच्छटा प्रतिपक्षवीरतः शत्रुभटतः हृदये सम्मुखी समक्षमागता खड्गलताऽसिलता च सममेव सहैव अविशत् प्रविष्टा। अत्र सहोक्तिरलङ्कारः।

भाषा

प्रतिपक्षी वीर पर प्रहार कर अपनी शान बखानने वाले वीर की आँखो में लालिमा की शोभा और विपक्षी वीर की हृदय मे, आगे की हुई सीधी तलवार, दोनों एक साथ ही प्रविष्ट हुईं।

असिना विनिपत्य लोलतां गमिते मूर्धनि भङ्गशक्तितः।
मुदमाप जयामृताशया सुभटस्तत्र पृषत्ककीलिते ॥४६॥

अन्वयः

तत्र सुभटः असिना विनिपत्य भङ्गशक्तितः लोलतां गमिते पृशत्क-कीलिते मूर्धनि जयामृताशया मुदम् आप।

व्याख्या

तत्र समरे सुभटः सुयोधः असिना खड्गेन विनिपत्य वेगेन गत्वा भङ्ग-शक्तितः छेदबलात् लोलतां श्लथत्वं शिथिलतां गमिते प्रापिते पृषत्कैः बाणैः "पृषत्कबाणविशिखा अजिह्मगखगाशुगाः" इत्यमरः। कीलिते प्रतिबद्धे मूर्द्धनि शिरसि जयामृताशया जयरूपसुधाया आशया प्राप्त्याशया मुदं हर्षं "मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः" इत्यमरः। आप प्राप्तवान।

भाषा

उस युद्ध में किसी वीर ने वेग से जाकर तलवार से काटने की शक्ति के कारण मस्तक को ढीला कर देने पर अर्थात् काट देने से मस्तक के डगमगाते रहने पर किन्तु बाणो से कीलित होने से अर्थात् जड दिये जाने से मस्तक के वही जड़े रहने पर विजय रूपी अमृत की आशा से हर्ष प्राप्त किया।

क्षतचञ्चुपुटा विघट्टनान्मुकुटे रत्नमये शकुन्तयः।
न सहर्षमकार्षुरर्थितां परमार्थामिषपिण्डकेष्वपि ॥४७॥

अन्वयः

रत्नमये मुकुटे विघट्टनात् क्षतचञ्चुपुटाः शकुन्तयः परमार्थामिषपिण्डकेषु अपि सहर्षम् अर्थितां न अकार्षुः।

व्याख्या

रत्नमये रक्तवर्णमणिमये मुकुटे शिरोऽलङ्कारे विघट्टनात् चञ्चुसमाघातात् क्षतानि व्रणयुक्तानि चञ्चुपुटानि येषान्ते शकुन्तयः पक्षिणः "शकुन्तिपक्षि शकुनिशकुन्तशकुनद्विजाः" इत्यमरः। परमार्थानि सत्यभूतानि आमिषपिण्डकानि मांसपिण्डानि तेष्वपि सहर्षं सानन्दमर्थिता साभिलाषत्वं नाकार्षुः न चक्रुः।

भाषा

लाल रत्नो के बने मुकुटो पर, खून से सने मास के भ्रम से चोंच मारने से चुटीली चोच वाले पक्षिगण सच्चे मास के पिण्डो को भी अपनी चोचो से सानन्द खाने की इच्छा नही रखते थे।

अवलम्ब्य शनैरगाधतां रुधिरस्रोतसि मार्गरोधिनि।
न परस्परदर्शनेऽप्यभूत् सुभटानां क्षणमाहवोत्सवः ॥४८॥

अन्वयः

रुधिरस्रोतसि शनैः अगाधताम् अवलम्ब्य मार्गरोधिनि (सति) सुभटानाम् आहवोत्सवः क्षणम् अपि परस्परदर्शने न अभूत्।

व्याख्या

रुधिरस्रोतसि शोणितप्रवाहे शनैः मन्दम् २ अगाधतामतलस्पर्शित्वम् अगाधमतलस्पर्शे" इत्यमरः। अवलम्ब्य गृहीत्वा मार्गरोधिनि मार्गप्रतिरोधके सति

सुभटानां सुयोधानामाहवोत्सवः युद्धोत्सवः क्षणमपि परस्परदर्शनेऽन्योन्यदृष्टौ नाभूत् न जातः ।

भाषा

खून की नदियों में धीरे धीरे डुबाव हो जाने से उनसे रास्ता रुक जाने के कारण वीरों को एक क्षण के लिये भी वह युद्धोत्सव परस्पर देख कर प्रहार करने योग्य न रहा ।

गुणवादपरायणा गिरः स्मितसंदिग्धविरोधमीक्षितम् ।
परुषत्वमुवास केवलं करवालेषु भुजोष्मशालिनाम् ॥४९॥

अन्वयः

गिरः गुणवादपरायणाः ईक्षितं स्मितसंदिग्धविरोधं (जातम्) परुषत्वं केवलं भुजोष्मशालिनां करवालेषु उवास ।

व्याख्या

गिरः वचांसि भटानां परस्परगुणानां वादः प्रशंसा तस्मिन्परायणा तत्पराः, ईक्षितं परस्परावलोकितं स्मितेनेषद्धास्येन सन्दिग्धं संशयापन्नो विरोधो द्वेषो यस्मिंस्तत्, (जातम्) परुषत्वं कठोरत्वं केवलं भुजयोः बाह्वोरूष्मणा सन्तापेन तेजसा वा शालन्ते शोभन्त इति भुजोष्मशालिनस्तेषां करवालेषु खड्गलतासु उवास स्थितिं चक्रे । अत्र परिसंख्यालङ्कारः ।

भाषा

उस काल में (आपसी द्वेष दूर होकर) वीरो के गुणो की प्रसंशा से भरी बाते होने लगी, परस्पर मन्दहास पूर्वक देखने से विरोध है या नही यह सदेह उत्पन्न करने वाली दृष्टि से वीर लोग एक दूसरे को देखने लगे, कठोरता केवल अपने भुजबल की गर्मी रखने वालो की तलवारो में ही रहने लगी ।

पतितेषु शिरःसु मानिनामिदमासीदवमाननास्पदम् ।
यदमीषु सरोषमाविशन्नुपरि न्यस्तपदाः पदातयः ॥५०॥

अन्वयः

मानिनां शिरस्सु पतितेषु इदम् अवमाननास्पदम् आसीत् यत् अमीषु उपरि न्यस्तपदाः पदातयः सरोषम् आविशन् ।

व्याख्या

मानिनां स्वबलमदशालिनां शिरस्सु शीर्षेषु पतितेषु भुवि इदमवमाननस्या-वज्ञाया आस्पदं स्थानमासीदभुत् । यत् अमीषु शिरस्सूपरि न्यस्तपदाः न्यस्तानि निक्षिप्तानि पदानि चरणा यैस्ते पदातयः पादैः संचारिणो योधाः सरोषं सक्रोध-माविशन् गमनं कृतवन्तः । मरणानन्तरं स्वेच्छायाः पूर्तिस्तैः कृता । जीवनसमये तु मस्तकेषु पादन्यासो दुश्शक इति भावः ।

भाषा

मानी वीरो के मस्तक कट कर नीचे गिर पडने पर यह एक अपमान जनक विषय हुआ कि पदाति सेना उन मस्तको को पांवतले क्रोध पूर्वक कुचलती हुई आगे बढी ।

शिरसा सुभटस्य दर्शितं शरलूनेन महत्कुतूहलम् ।
च्युतमप्यवनौ न विद्विषि प्रहितं लोचनमाचकर्ष यत् ॥५१॥

अन्वयः

सुभटस्य शरलूनेन शिरसा महत् कुतूहलं दर्शितं यत् अवनौ च्युतम् अपि विद्विषि प्रहितं लोचनं न आचकर्ष ।

व्याख्या

शरेण बाणेन लूनं छिन्नं तेन शिरसा मस्तकेन महत्कुतूहलमाश्चर्यकारि दृश्यं दर्शितम् । यद्यस्मात्कारणात् अवनौ भूमौ च्युतमपि शिरः विद्विषि शत्रौ प्रहितं गतं प्रेरितं वा लोचनं न आचकर्ष न दूरीचकार । मरणानन्तरमपि तस्य युद्धो-त्साहः सावधानता च लक्ष्यवेधे नाल्पतां प्रापतुरिति भावः ।

भाषा

किसी वीर के बाण से कटे सिर ने बड़ा आश्चर्य उत्पन्न किया क्योकि बाण से कट के नीचे गिरने पर भी उसने शत्रु की ओर तरेरे नेत्रो को नहीं हटाया । अर्थात् मरजाने पर भी वीरों का युद्धोत्साह और उनकी सावधानता कम न हुई ।

असिघट्टनतः परस्परं पतिता वह्निकणा रणाङ्गणे ।
अलभन्त पिशाचयोषितां प्रियतामामिषपाककर्मणि ॥५२॥

अन्वयः

रणाङ्गणे परस्परम् असिघट्टनतः पतिताः वह्निकणाः पिशाचयोषिताम् आमिषपाककर्मणि प्रियताम् अलभन्त।

व्याख्या

रणाङ्गणे समरभूमौ परस्परमन्योन्यमसिघट्टनतः खड्गसमाघातात् पतिताः वह्निकणाः स्फुलिङ्गाः "त्रिषु स्फुलिङ्गोऽग्निकणः" इत्यमरः। पिशाचयोषितां भूताङ्गनानामामिषस्य मांसस्य "पिशितं तरसं मांसं पललं क्रव्यमामिषम्" इत्यमरः। पाककर्मणि भोज्यवस्तुपचनकार्ये प्रियतामुपयोगित्वेनादरणीयतामलभन्त प्रापुः। वन्हिकणैः पाचनकर्मणि साहाय्यं कृतमिति भावः।

भाषा

युद्धभूमि में तलवारो की टक्करो से उत्पन्न चिनगारियो ने पिशाचिनिओ को मास पकाने मे सहायता कर उनकी प्रियता प्राप्त की।

गलितद्विपकुम्भमौक्तिकच्छलतो व्योमनिभासिमण्डली।
विनिमीलिततारकावदज्जयतिग्मांशुमिवोदयोन्मुखम् ॥५३॥

अन्वयः

गलितद्विपकुम्भमौक्तिकच्छलतः विनिमीलिततारका व्योमनिभा असिमण्डली जयतिग्मांशुम् उदयोन्मुखम् इव अवदत्।

व्याख्या

गलितान्यसिप्रहारात् च्युतानि द्विपकुम्भानां मौक्तिकानि गजमस्तकानां गजमौक्तिकानि तेषां छलतो व्याजात् विनिमीलिता अदृश्यत्वं गतास्तारका नक्षत्राणि अस्मिन्स्तत् व्योम तन्निभा सदृशा आकाशतुल्यासिमण्डली खड्गसमूहः कृष्णवर्णत्वासाम्यम्। पक्षे-विनिमीलिताः पक्ष्मणाऽऽच्छादिताः तारकाः कनीनिकाः "तारकाक्ष्णः कनीनिका" इत्यमरः। यया सा। खड्गचमत्कृति दृष्ट्वाऽऽश्चर्येणासिकान्तिचाकचिक्येन च नेत्राणि जनानां सम्पुटितानि यया सा व्योमसमाना पूर्वोक्तसाधर्म्येणासिमण्डली खड्गसमूहो विजयतिग्मांशुं विजयसूर्यमुदयोन्मुखमुदयप्रवणमुदयकालसंनिहितमिवावदत् प्रकटयामास। अत्र श्लेषानुप्राणितोत्प्रेक्षा।

भाषा

तलवार के प्रहार से हाथी के मस्तक पर से नीचे गिरी गजमुक्ता के मिष से, ताराओ से रहित काले आकाश मण्डल के समान या अपनी चमक से आँखों को बन्द कर देने वाले और काले आकाश के समान खड्ग-समूह मानो विजय रूपी सूर्य उदयोन्मुख है इसकी सूचना दे रहा था।

हृदयस्थितबाणमूर्छया करिकुम्भस्थलपीठशायिनाम् ।
अभवन्नुपकारहेतवश्चलकर्णव्यजनानिलोर्मयः ॥५४॥

अन्वयः

हृदयस्थितबाणमूर्छया करिकुम्भस्थलपीठशायिनां चलकर्णव्यजनानिलोर्मयः उपकारहेतवः अभवन्।

व्याख्या

हृदये वक्षसि स्थिताः शत्रुणा प्रहृता बाणास्तेषां विषदिग्धत्वात्समागता या मूर्छा संज्ञाहीनता तया करिणां कुम्भस्थलपीठे शेरते करिकुम्भस्थलपीठशायिनस्तेषां चलत्कम्पमान यत्कर्णरूपं व्यजन "व्यजनं तालवृन्तकम्" इत्यमरः। तस्यानिला वायवस्तेषामूर्मयस्तरङ्गाः "भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा" इत्यमरः। उपकारहेतवः मूर्छानिरासकारणीभूता अतएव सहायका अभवन्।

भाषा

हृदय मे लगे बाणो की मूर्छा से हाथियो के मस्तक रूपी विस्तरो पर पड़े वीरो के लिये, हाथियों के हिलने वाले कान रूपी पखो की वायु की लहरें, उनकी मूर्छा दूर करने मे कारण होकर उपकारक हुई।

विरराज नमन्महाकरी भटवक्षःस्थलभेदलम्पटः ।
अवनम्य रणाङ्गणस्थितां जयलक्ष्मीमधिरोपयन्निव ॥५५॥

अन्वयः

भटवक्षःस्थलभेदलम्पटः नमन् महाकरी अवनम्य रणाङ्गणस्थितां जयलक्ष्मीम् अधिरोपयन् इव विरराज।

व्याख्या

भटानां योद्धानां वक्षःस्थलस्य भेदे विदारणे लम्पटः समासक्तः नमन् नीचैः

भवन् महाकरी महागजः अवनम्य स्वयं नम्रो भूत्वा रणाङ्गणे स्थितां विद्यमानां जयलक्ष्मीं विजयश्रीमधिरोपयन्निव स्वोपरि स्थापयन्निव विरराज शुशुभे।

भाषा

योद्धाओ के कलेजों को फाड डालने में लगा हुआ नीचे की ओर झुका महागज मानों युद्ध भूमि में विद्यमान विजयलक्ष्मी को झुककर अपने ऊपर चढ़ा रहा हो ऐसा शोभित होता था।

अभवद्बलमेतदन्तरे सकलं कुन्तलचक्रवर्तिनः।
प्रतिपक्षगजप्रधावन–क्षुभितं दिक्षु विलक्षमास्तृतम् ॥५६॥

अन्वयः

एतदन्तरे प्रतिपक्षगजप्रधावनक्षुभितं कुन्तलचक्रवर्तिनः सकलं बलं दिक्षु विलक्षम् आस्तृतम् अभवत्।

व्याख्या

एतदन्तरे एतस्मिन्नन्तरे प्रतिपक्षगजानां प्रतिगजानां प्रधावनेन क्षुभितं सञ्चलितं कुन्तलचक्रवर्तिनः कुन्तलदेशाधिपस्य विक्रमाङ्कदेवस्य सकलं सम्पूर्णं बलं सैन्यं "वरूथिनी बल सैन्यं" इत्यमरः। दिक्ष्वाशासु विलक्षं विगतं लक्षं यस्य तत् शत्रुगजबलस्य प्रधावनात् लक्ष्यहीनमास्तृतमितस्ततो विस्तृतमभवज्जातम्।

भाषा

इस बीच मे शत्रुओ के हाथियों की दौड़ से घबड़ाया हुआ कुन्तल देश के राजा विक्रमाङ्कदेव का समग्र सैन्य लक्ष्यहीन होकर चारो ओर छितिर-वितिर हो गया।

न स कोऽपि महोद्धुरः करी न तुरङ्गो न पटुर्महाभटः।
विचचार न यः पराङ्मुखः प्रतिपक्षप्रलयानिलाहतः ॥५७॥

अन्वयः

यः प्रतिपक्षप्रलयानिलाहतः पराङ्मुखः न विचचार सः कः अपि महोद्धुरः करी न, पटुः तुरङ्गः न, महाभटः न।

व्याख्या

यः प्रतिपक्षः शत्रुसैन्यमेव प्रलयानिलः प्रलयकालीनोऽनिलो वायुस्तेनाऽऽहतः सन्ताडितः अतएव पराङमुखो रणपराङमुखो न विचचार परिबभ्राम एवम्भूतः स कोऽपि महानुद्धरः प्रचण्डः करी हस्ती न, पटुः वेगेनाप्रतिहतगतिसमर्थः तुरङ्गो न, महाभटः महायोधो नासीत्। अर्थात् सर्वे रणस्थलात् पलायनं चक्रिर इति भावः।

भाषा

शत्रुसैन्य रूपी प्रलयकालीन वायु से आहत ऐसा कोई महाप्रचण्ड हाथी, तेज घोड़ा या महावीर न था जो शत्रु की सेना से पराङमुख न भया हो।

पुलकप्रणयं कपोलयोरथ चालुक्यनृपः प्रकाशयन्।
उदतिष्ठदपारपौरुषः स्वयमुद्दाममदेन दन्तिना ॥५८॥

अन्वयः

अथ अपारपौरुषः चालुक्यनृपः कपोलयोः पुलकप्रणयं प्रकाशयन् स्वयम् उद्दाममदेन दन्तिना उदतिष्ठत्।

व्याख्या

अथेत्यनन्तरमपारमपरिमितं पौरुषं पुरुषार्थः पराक्रमो वा यस्य सः चालुक्यनृपः विक्रमाङ्कदेवः कपोलयोः गण्डयोः पुलकप्रणयं रोमाञ्चसम्बन्धं प्रकाशयन् प्रदर्शयन् स्वयमेव उद्दाममदेनोत्कटमदशालिना दन्तिना गजेन सह गजमारुह्येत्यर्थः। उदतिष्ठत् युद्धार्थं सन्नद्धोऽभूत्।

भाषा

इसके अनन्तर अपरिमित पुरुषार्थ रखने वाला चालुक्यराजा विक्रमाङ्कदेव अपने गण्डस्थल पर रोमाञ्च को प्रकट करता हुवा मदोन्मत्त हाथी पर सवार होकर युद्ध के लिये तयार हुआ।

दलयन्रिपुकीर्तिकन्दलीं रणलीलासरसीमृणालिकाम्।
करिमेघघटाश्च पाटयन्नतनोदद्भुतराजहंसताम् ॥५९॥

अन्वयः

रणलीलासरसीमृणालिकां रिपुकीर्तिकन्दलीं दलयन् करिमेघघटाः च पाटयन् अद्भुतराजहंसताम् अतनोत् ।

व्याख्या

रणो युद्धमेव लीलासरसी क्रीडातडागस्तस्य मृणालिका तां रिपुकीर्तिकन्दलीं रिपोः शत्रोः कीर्तिरेव कन्दली तां दलयन् खण्डयन् करिणो गजा एव मेघास्तेषां घटास्समूहान् च पाटयन् विदारयन् अद्भुतराजहंसतां विचित्रराजश्रेष्ठत्वं विचित्रमरालत्वमतनोत् विस्तारयामास प्रकटितवानित्यर्थः ।

भाषा

युद्धरूपी क्रीडातडाग के मृणाल स्वरूप शत्रु की कीर्तिकन्दली को तोडता हुआ गजरूपी मेघों की घटाओ को चीरता हुआ आश्चर्यजनक राजश्रेष्ठता को या राजहंसता को प्रकट करने लगा। राजहस भी तलाओ में क्रीडा करते समय मृणालों को तोड़ देते हैं और बादलो को चीरते हुए मानसरोवर पर चले जाते हैं ।

क्षतकुञ्जरकुम्भमौक्तिकैर्निपतद्भिर्मुकुलानुकारिभिः ।
रिपुवीरयशःक्षमारुहं स भुजाभ्यां निजगाद कम्पितम् ॥६०॥

अन्वयः

सः निपतद्भिः मुकुलानुकारिभिः क्षतकुञ्जरकुम्भमौक्तिकैः रिपुवीरयशःक्षमारुहं भुजाभ्यां कम्पितं निजगाद ।

व्याख्या

सः विक्रमाङ्कदेवः निपतद्भिः भूमौ समागच्छद्भिः मुकुलान्यनुकुर्वन्तीति मुकुलानुकारीणि तैः कुड्मलसदृशैः क्षताः छिन्नाः कुञ्जराणां गजानां कुम्भाः तेषां मौक्तिकानि तैः रिपुवीराणां शत्रुयोधानां यशः कीर्तिरेव क्षमारुहो वृक्षस्तं भुजाभ्यां बाहुभ्यां कम्पितं सञ्चालितमिति निजगाद प्रकटयामास । अत्र रूपकालङ्कारः ।

भाषा

गिरने वाली कलियों का अनुकरण करने वाले, आहत होकर नीचे गिरने वाले हाथियों के मस्तक के मोतियों के मिष से राजा विक्रमाङ्कदेव ने विपक्षी

वीरों के कीर्तिरूपी वृक्ष को अपनी दोनों भुजाओं से कम्पित कर दिया है, ऐसा प्रकट किया।

रिपुवारणकुम्भमण्डलीं प्रहरन्निर्गहनः क्षमापतिः ।
प्रमदाघनपीवरस्तन–स्मरणस्मेरमुखो बभूव सः ॥६१॥

अन्वयः

सः क्षमापतिः निर्गहनः (सन्) रिपुवारणकुम्भमण्डलीं प्रहरन् प्रमदाघनपीवरस्तनस्मरणस्मेरमुखः बभूव ।

व्याख्या

सः प्रसिद्धः क्षमापति पृथिवीपतिर्विक्रमाङ्कदेवः निर्गहनः निर्भयस्सन् रिपूणां वारणा गजाः "गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी" इत्यमरः। तेषां कुम्भास्तेषां मण्डलीं समूहं प्रहरन् छिन्नां भिन्नां च कुर्वन् प्रमदानां कामिनीनां घना निबिडाः पीवराः स्थूलाः स्तनाः कुचास्तेषां स्मरणेन स्मेरमीषद्धास्ययुक्तं मुखमाननं यस्य सः बभूव। अत्र स्मरणालङ्कारः।

भाषा

वह राजा विक्रमाङ्कदेव निर्भीक होकर शत्रु के हाथियों के कुम्भस्थलों पर प्रहार करता हुआ कामिनिओ के बडे २ कडे स्तनो का स्मरण कर मुस्कुराने लगा। अर्थात् हाथियो के कुम्भस्थलो का कामिनियो के बडे २ कडे स्तनों से सादृश्य का स्मरण होकर उसको कुछ हसी आ गई।

निपतन्तमसौ निवारयन्नरिनाराचमिभस्य मूर्धनि ।
चरणेन निहत्य पृष्ठतः सुरपुष्पप्रकरैरपूर्यत ॥६२॥

अन्वयः

असौ इभस्य मूर्धनि निपतन्तम् अरिनाराचं निवारयन् पृष्ठतः चरणेन निहत्य सुरपुष्पप्रकरैः अपूर्यत ।

व्याख्या

असौ विक्रमाङ्कदेवः इभस्य गजस्योपरि यस्योपरि स्वयं स्थितस्तस्य मूर्धनि शिरसि निपतन्तं समागच्छन्तमरिनाराचं शत्रुबाणं निवारयन्नपसारयन् पृष्ठतः

पृष्ठभागे चरणेन निहत्य ताडयित्वा सुराणां देवानां पुष्पप्रकरैः देववर्षितकुसुमसमूहैः अपूर्यत पूरितो व्याप्तो वाऽभवत् ।

भाषा

वह विक्रमाङ्कदेव अपने हाथी के मस्तक पर गिरने वाले शत्रु प्रेरित बाणो को दूर करता हुआ, आगे बढ़ने के लिये हाथी की पीठ पर अपने चरण से ताडन कर देवो की पुष्प वृष्टि से व्याप्त हो गया । अर्थात् उसकी वीरता देख कर देवो ने पुष्प वृष्टि की ।

करटिध्वजदण्डसङ्गिनीं प्रतिवीरप्रहितां शरावलिम् ।
जयकीलकमालिकामिव क्षितिपालः सविलासमैक्षत ॥६३॥

अन्वयः

क्षितिपालः प्रतिवीरप्रहितां करटिध्वजदण्डसङ्गिनीं शरावलिं जयकीलकमालिकाम् इव सविलासम् ऐक्षत ।

व्याख्या

क्षितिं पृथ्वीं पालयतीति क्षितिपालः विक्रमाङ्कदेवः प्रतिवीरैः शत्रुवीरैः प्रहितां प्रेरितां क्षिप्तां प्रतिवीरप्रहितां करटिनो गजस्योपरि वर्तमानो यो ध्वजदण्डः पताकादण्डस्तस्मिन् सङ्गिनी संसक्ता तां शराणां बाणानामावलिः पंक्तिः "वीथ्यालिरावलिः पङ्क्तिः" इत्यमरः । तां जयकीलकानां विजयस्तम्भाना मालिका समूहः तामिव सविलासं विलासेन क्रीडया सहितं यथास्यात्तथा ऐक्षत ददर्श ।

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव ने शत्रुयोद्धाओं द्वारा गज के ऊपर विद्यमान पताका दण्ड को लक्ष कर छोडे हुए बाणो को विजयस्तम्भ के समुह के समान आनन्द पूर्वक देखा ।

असिना विशिखैः सतोमरैः सहसा कुञ्जरधावनेन च ।
स सहस्रमिवोद्वहन्करान् प्रतिपक्षक्षयदीक्षितोऽभवत् ॥६४॥

अन्वयः

सः असीना सतोमरैः विशिखैः सहसा कुञ्जरधावनेन च सहस्रं करान् इव उद्वहन् प्रतिपक्षक्षयदीक्षितः अभवत् ।

व्याख्या

स विक्रमाङ्कदेव असिना खड्गेन तोमराः शर्वलाः "वा पुंसि शल्यं शङ्कुर्ना शर्वला तोमरोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। (हिन्दी भाषायां गंडासा) तैस्सहितास्तैः सतोमरैः विशिखैः बाणैः सहसा झटिति कुञ्जरधावनेन हस्तिधावनेन च सहस्रं करान् हस्तानिवोद्वहन् धारयन् प्रतिपक्षाणां शत्रूणां क्षयो विनाशस्तस्मिन्दीक्षितः परायणोऽभवत्।

भाषा

वह विक्रमाङ्कदेव तलवार को गड़ासे को और बाणो को सतत चलाता हुआ, और शीघ्रता से हाथी को दौडाने से मानो हजारो हाथों को धारण करता हुआ शत्रुओं के नाश करने मे तत्पर हो गया।

तमवेक्ष्य तुरङ्गवाहिनी-हठनिर्लोठनबद्धकौतुकम्।
तुरगावलिरंशुमालिनः कलयामास गुणाय दूरताम् ॥६५॥

अन्वयः

अंशुमालिनः तुरगावलिः तुरङ्गवाहिनीहठनिर्लोठनबद्धकौतुकं तम् अवेक्ष्य दूरतां गुणाय कलयामास।

व्याख्या

अंशूनां किरणानां मालाः सन्ति अस्मिन्नित्यंशुमाली सूर्यस्तस्य तुरगावलिरश्वसमूहः तुरङ्गाणां घोटकानां वाहिनी सेना "ध्वजिनी वाहिनी सेना" इत्यमरः। तस्या हठस्य दुराग्रहस्य निर्लोठने संचूर्णने बद्धो धृतं कौतुकं उत्साहो येन स तं विक्रमाङ्कदेवमवेक्ष्य विदित्वा दूरतां पृथिव्या अपेक्षया स्वनिवासस्य दूरवर्तित्वं गगनवर्तीत्वात्, गुणाय कल्याणायैव कलयामास विचारयामास। इदं सुष्ठुतममेव यद्वयं सूर्याश्वाः विक्रमाङ्कविपक्षाश्वस्थानापेक्षया दूरे स्थिताः स्मः। अन्यथाऽस्माकमप्याग्रहनिवृत्तिर्बलात्स्यादिति भावः।

भाषा

सूर्य के घोड़े, शत्रु की घोड़े की पलटन के दुराग्रह को नष्ट कर डालने के उत्साह को धारण करने वाले विक्रमाङ्कदेव को देख कर, अपने उस घोडे की पलटन से दूर होने की प्रशसा करने लगे। अर्थात् यदि पास मे होते तो उनकी भी कदर्थना सम्भव थी।

असिधेनुबिलीनकन्धरैः समदाधोरणमस्तकैरसौ ।
पृथिवीन्दुरपूरयन्महीं युगपद्द्यां च यशोभिरुद्भटैः ॥६६॥

अन्वयः

असौ पृथिवीन्दुः असिधेनुविलूनकन्धरैः समदाधोरणमस्तकैः महीम् उद्भटैः यशोभिः द्यां च युगपत् अपूरयत् ।

व्याख्या

असौ पृथिव्या भूमेरिन्दुश्चन्द्रः असिधेनुश्छुरिका तया अथवा असिना धेन्वा च ताभ्यां विलूना छिन्ना कन्धरा ग्रीवा "ग्रीवायां शिरोधिः कन्धरेत्यपि" इत्यमरः । येषान्ते तैः मदेन दर्पेण सहिता ये आधोरणा हस्तिपकाः "आधोरणा हस्तिपका हस्त्यारोहा" इत्यमरः । तेषां मस्तकैः शिरोभिः महीं पृथ्वीमुद्भटैः यशोभिः कीर्तिभिर्द्याञ्च युगपत्सममेवाऽपूरयत् पूरितवान् । अत्र समुच्चयालङ्कारः ।

भाषा

उस पृथ्वी के चन्द्र राजा विक्रमाङ्कदेव ने तलवार तथा धनुष्य से या बडी छूरी से काटी गई गर्दन वाले शेखीवाज पीलवानो के मस्तको से पृथ्वी को और बढे हुए यश से आकाश को एक साथ ही भर दिया ।

अपि शैलविटङ्कभेदिभिर्विशिखैस्तस्य निवेशितव्यथाः ।
द्विषतां करिणः पलायिताः शरणं दिग्द्विरदानिवागमन् ॥६७॥

अन्वयः

अपि तस्य शैलविटङ्कभेदिभिः विशिखैः निवेशितव्यथाः द्विषतां करिणः दिग्द्विरदान् शरणम् इव अगमन् ।

व्याख्या

अप्यन्योऽपि वृत्तान्तः (श्रूयताम्) । तस्य विक्रमाङ्कदेवस्य शैलानां पर्वतानां विटङ्काः शिखराणि तेषां भेदिभिः विदारकैः विशिखैः बाणैः निवेशिता प्रवेशिता कारिता वा व्यथा पीडा येषु ते द्विषतां शत्रूणां करिणः गजाः दिग्द्विरदान् दिग्गजान् शरणमिव रक्षार्थमिवागमन् प्रापुः, मृता इत्यर्थः ।

भाषा

और भी सुनिये । उस विक्रमाङ्कदेव के पर्वतों के शिखरों का भेदन करने

में समर्थ बाणो से पीडित शत्रु के हाथी दिग्गजो की शरण में चले गये। अर्थात् मर गये।

प्रतिवीरविमुक्तमार्गण—प्रचयाघट्टितकङ्कटोत्थितैः।
शिखिभिः स बहूनकल्पयत् समराम्भोनिधिवाडवानिव ॥६८॥

अन्वयः

सः प्रतिवीरविमुक्तमार्गणप्रचयाघट्टितकङ्कटोत्थितैः शिखिभिः बहून् समराम्भोनिधिवाडवान् इव अकल्पयत्।

व्याख्या

स विक्रमाङ्कदेवः प्रतिवीरेषु शत्रुवीरेषु विमुक्ताः प्रक्षिप्ताः मार्गणा बाणाः "कलम्बमार्गणशराः" इत्यमर। तेषां प्रचयास्समूहास्तैराघट्टिताः संघर्षमापन्नाः कङ्कटाः कवचाः "उरश्छदः कङ्कटको जगरः कवचोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। तेभ्य उत्थिता उत्पन्नास्तैः शिखिभि वह्निभिः बहूननेकान् समर एवाम्भोनिधिस्समुद्रस्तस्य वाडवान् बडवाग्नीनिवाकल्पयत् रचितवान्। रूपकोत्थापितेयमुत्प्रेक्षा।

भाषा

उस विक्रमाङ्कदेव ने विपक्षी वीरो पर छोडे हुए बाण समूहो की उनके कवचो से टक्कर होने से उत्पन्न अग्नियो से मानो बहुत से युद्ध रूपी समुद्र के बड़वाग्नियो की रचना की।

रणसीमनि तेन वैरिणो विजयश्रीविरहाद्विषादिनः।
गजमौक्तिकरेणुपाण्डुराः समनीयन्त तपस्वितामिव ॥६९॥

अन्वयः

तेन रणसीमनि विजयश्रीविरहात् विषादिनः गजमौक्तिकरेणुपाण्डुराः वैरिणः तपस्विताम् इव समनीयन्त।

व्याख्या

तेन विक्रमाङ्कदेवेन रणसीमनि युद्धक्षेत्रे विजयश्रियो विजयलक्ष्म्या विरहादन्यत्र गमनात् विषादिनः दुःखिताः गजमौक्तिकानां रेणव इव धूलय इव

पाण्डुराः शुभ्रवर्णाः, रेणुभिः पाण्डुरा वा, वैरिणः शत्रवः तपस्वितां तापसत्वं दीनत्वं वा समनीयन्त इव प्रापिता इव । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

भाषा

उस विक्रमाङ्कदेव ने युद्धक्षेत्र मे विजयश्री के विरह से दु:खित, गजमुक्ता की धूली के समान या गजमुक्ता की धूली से सफेद पड़ गये हुए शत्रुओं को मानो तपस्वी बना दिया । तपस्वी लोग सदैव धूली पोत कर उदास रहते हैं ।

करिपादविपाटितोद्भट-प्रतिभूपालकपालकर्परः ।
भुवनत्रयभाण्डपूरण-क्षमकीर्तिः समरे चचार सः ॥७०॥

अन्वयः

करिपादविपाटितोद्भटप्रतिभूपालकपालकर्परः भुवनत्रयभाण्डपूरण-क्षमकीर्तिः सः समरे चचार ।

व्याख्या

करिणां हस्तिनां पादैश्चरणैर्विपाटितास्संचूर्णिताः उद्भटानामुद्दण्डानां प्रतिभूपालानां शत्रुनृपतीनां कपालकर्पराः शिरोऽस्थिशकलानि येन सः भुवनत्रयमेव भाण्डं तस्य पूरणे क्षमा समर्था कीर्तिर्यस्य सः विशालकीर्तिरित्यर्थः । सः विक्रमाङ्कदेवः समरे युद्धे "अस्त्रियां समरानीकरणाः" इत्यमरः । चचार बभ्राम ।

भाषा

हाथियो के पावो से उद्दण्ड विपक्षी राजाओ की मस्तक की हड्डियो को चूर २ कर देने वाला, त्रिभुवन रूपी बर्तन को भर देने योग्य यश को रखने वाला वह राजा विक्रमाङ्कदेव युद्धभूमि में चारो ओर घूमने लगा ।

न स कोऽपि कठोरपाटवः प्रतिभूभृत्कटके भटोऽभवत् ।
शरवर्षकृताभिभाषणः क्षणमस्याभिमुखो बभूव यः ॥७१॥

अन्वयः

प्रतिभूभृत्कटके सः कः अपि कठोरपाटवः भटः न अभवत् यः क्षणं शरवर्षकृताभिभाषणः (सन्) अस्य अभिमुखः बभूव ।

व्याख्या

प्रतिभूभृतः शत्रोः कटके सैन्ये "कटकस्त्वद्रिनितम्बे बहुभूषणे । सेनायां राजधान्यां च" इति हैमः । सः कोऽपि कठोरपाटवः पूर्णपटुत्वयुक्तः भटः योधः न अभवत् यः क्षणं क्षणमात्रमपि शरवर्षेण बाणवृष्टिद्वारा कृतमभिभाषणमुत्तरप्रत्युत्तरप्रदानं येन स एवम्भूतस्सन् अस्य विक्रमाङ्कदेवस्याभिमुखः सम्मुखो बभूव ।

भाषा

विपक्षी राजा की सेना मे ऐसा कोई भी युद्धकला मे पूर्ण पटु योद्धा न था जो क्षण भर के लिये भी बाणो की वर्षा से बाते करता हुआ इस विक्रमाङ्कदेव के सन्मुख उपस्थित हो ।

क्षणमात्रविसूत्रिताखिल-प्रतिपक्षस्य चुलुक्यभूपतेः ।
वपुषि त्रिदिवौकसां परं सह पुष्पैरपतञ्छिलीमुखाः ॥७२॥

अन्वयः

क्षणमात्रविसूत्रिताखिलप्रतिपक्षस्य चुलुक्यभूपतेः वपुषि त्रिदिवौकसां पुष्पैः सह परं शिलीमुखाः अपतन् ।

व्याख्या

क्षणमात्रेणैव विसूत्रिता विनाशिता अखिलाः प्रतिपक्षाः शत्रवो येन स तस्य चुलुक्यभूपतेः चुलुक्यदेशाधिपस्य वपुषि गात्रे त्रिदिवौकसां देवानां पुष्पैः कुसुमैस्सह परं केवलं शिलीमुखाः भ्रमराः "अलिबाणौ शिलीमुखौ" इत्यमरः । न तु शत्रुशराः अपतन् पतितवन्तः । अत्र विसूत्रणमन्यदेशे पुष्पवृष्टिश्चाऽन्यत्रेति 'असङ्गति' नामाऽलङ्कारः ।

भाषा

थोड़ी ही देर मे सम्पूर्ण शत्रुओ का नाश कर देने वाले चालुक्यराज विक्रमाङ्कदेव के शरीर पर देवो की पुष्पवृष्टि के साथ केवल भौंरे ही आ गिरते थे । अर्थात् शत्रु के बाण नही पडते थे ।

यदनेकपताकिनीभट-क्षयमेकः समनीकमूर्धनि ।
स चकार चुलुक्यपार्थिवस्तदभूत्कस्य न वर्णनास्पदम् ॥७३॥

अन्वयः

समनीकमूर्धनि एकः सः चुलुक्यपार्थिवः यत् अनेकपताकिनीभट-क्षयं चकार तत् कस्य वर्णनास्पदं न अभूत् ।

व्याख्या

समनीकमूर्धनि समराग्रभागे एक एव सः चुलुक्यदेशाधिपो विक्रमाङ्कदेवो यदनेका पताकिन्यः सेनास्तासां भटास्तेषां क्षयं विनाशं चकार विदधे तत् कस्य जनस्य वर्णनस्य प्रशंसाया आस्पदं स्थानं "आस्पदं पदकृत्ययोः" इति मेदिनी । नाभूत् न जातम् ।

भाषा

समरभूमि में अकेले उस चालुक्य देश के राजा विक्रमाङ्कदेव ने जो अनेक सेना के योद्धाओं का नाश किया उसकी प्रशंसा किसने नहीं की। अर्थात् सब ने उसकी प्रशंसा की।

चकितेव कबन्धताण्डवैः समरप्राङ्गणरङ्गभूमिषु ।
परिदृष्टपराक्रमं भुजं विजयश्रीः क्षितिभर्तुराश्रिता ॥७४॥

अन्वयः

विजयश्रीः समरप्राङ्गणरङ्गभूमिषु कबन्धताण्डवैः चकिता इव परिदृष्टपराक्रमं क्षितिभर्तुः भुजम् आश्रिता ।

व्याख्या

विजयश्रीः विजयलक्ष्मीः समरप्राङ्गणानि युद्धाजिराणि "अङ्गणं चत्वराजिरे" इत्यमरः । एव रङ्गभूमयस्तासु कबन्धानां मुण्डरहितशरीराणां "कबन्धोऽस्त्री क्रियायुक्तमपमूर्धकलेवरम्" इत्यमरः । ताण्डवैरुद्धतनृत्यैः चकिताऽऽश्चर्यान्विता इव परिदृष्टः आलोकितः पराक्रमः साहसो यस्य स तं क्षितिभर्तुः पृथ्वीपतेः विक्रमाङ्कदेवस्य भुजं बाहुमाश्रिताऽवलम्बं समाश्लिष्टवती । अत्र समासोक्ति-रलङ्कारः ।

भाषा

विजयलक्ष्मी युद्ध रूपी आगन की रङ्गभूमियों में बिना सिर के धडों के

नाचो से मानो आश्चर्य मे पड़ कर, देखा है साहस जिसका ऐसे राजा विक्रमाङ्कदेव की भुजा मे आश्रित हो गई।

कवचे परितः कृतस्थितीन् भुजयोर्व्याप्तिविबन्धकारिणः।
कमलप्रतिमेन पाणिना विशिखान्सस्मितमुच्चखान सः ॥७५॥

अन्वयः

सः कवचे परितः कृतस्थितीन् भुजयोः व्याप्तिविबन्धकारिणः विशिखान् कमलप्रतिमेन पाणिना सस्मितम् उच्चखान।

व्याख्या

स विक्रमाङ्कदेवः कवचे कङ्कटे "उरच्छदः कङ्कटको जगरः कवचोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। परितोऽभितः कृता विहिता स्थितिः स्थानं यैस्तान् भुजयोर्बाह्वोः व्याप्तेः विस्तारस्य विबन्धः प्रतिरोधस्तस्य कारिणो विशिखान् शत्रुशरान् कमलप्रतिमेन पद्मनिभेन कोमलेन पाणिना हस्तेन सस्मितमीषद्धास्ययुक्तं यथा स्यात्तथा उच्चखानाऽऽकृष्टवान्। सस्मितमित्यनेन कष्टाभावः प्रदर्शितः।

भाषा

उस विक्रमाङ्कदेव ने चारो ओर से कवच में घुसे हुए और भुजाओं को फैलाने मे रुकावट करने वाले बाणो को कमल के समान कोमल व सुन्दर अपने हाथ से उखाड़ कर फेंक दिया।

स बभार शिरस्त्रमण्डलस्थितनाराचसहस्रभारतः।
प्रणमन्निव सङ्गरश्रियं क्षणमूर्ध्वानतकन्धरं शिरः ॥७६॥

अन्वयः

सः शिरस्त्रमण्डलस्थितनाराचसहस्रभारतः ऊर्ध्वानतकन्धरं शिरः सङ्गरश्रियं प्रणमन् इव क्षणं बभार।

व्याख्या

स विक्रमाङ्कदेव शिरः त्रायते अनेनेति शिरस्त्रं शीर्षण्यं शिरोरक्षककवचं शिरस्त्रस्य मण्डले स्थिता नाराचा. बाणास्तेषां सहस्राणि तेषां भारतः भारात्

ऊर्ध्वमग्रे आनता नम्रीभूता कन्धरा ग्रीवा यस्य तत् शिर सङ्गरश्रियं सङ्ग्राम-लक्ष्मीं प्रणमन्निव प्रणामं कुर्वन्निव क्षणं मुहूर्तमात्रं बभार ।

भाषा

उस राजा विक्रमाङ्कदेव ने, सिर के कवच पर चारों ओर से लगे हजारों बाणो के बोझे से आगे की ओर झुकी गर्दन वाले मस्तक को मानो समरलक्ष्मी को थोडी देर के लिये प्रणाम करते हुए धारण किया था ।

रिपुशोणितबिन्दुमुद्रितौ स बिभर्ति स्म भुजौ महाभुजः ।
क्षपितप्रतिपक्षशेखर—च्युतरत्नाङ्कुरदन्तुराविव ॥७७॥

अन्वयः

महाभुजः सः क्षपितप्रतिपक्षशेखरच्युतरत्नाङ्कुरदन्तुरौ इव रिपुशोणितबिन्दुमुद्रितौ भुजौ बिभर्ति स्म ।

व्याख्या

महान्विशालो भुजो बाहुर्यस्य सः महाभुजः स विक्रमाङ्कदेवः क्षपिता विनाशिता ये प्रतिपक्षा शत्रुयोधास्तेषां शेखरात् शिरोभूषणाच्च्युतानि रत्नान्येवाङ्कुराः यद्वा तेषामङ्कुरा रक्तरत्नाङकुरसमानकान्तयः तैर्दन्तुरौ विषमौ इव सुशोभितौ इत्यर्थः । रिपुशोणितस्य शत्रुरुधिरस्य बिन्दुभिः मुद्रितावङ्कितौ भुजौ बिभर्ति स्म धारयति स्म ।

भाषा

विशाल भुजा वाला वह विक्रमाङ्कदेव, विनाशित शत्रुओं के मुकुटो मे के लाल रत्नो के अङकुरो के समान नीचे ऊँचे दीख पडने वाले शत्रुओं के रक्त बिन्दुओ से चिन्हित दोनो भुजाओ को धारण करता था ।

रणसीमनि तत्र तत्र ये विशिखैः क्ष्मातिलकस्य कीलिता ।
अपतन्नपि धावतां न ते करिणां कुम्भतटीविटङ्कतः ॥७८॥

अन्वयः

रणसीमनि ये क्ष्मातिलकस्य विशिखैः तत्र तत्र कीलिताः ते धावताम् अपि करिणां कुम्भतटीविटङ्कतः न अपतन् ।

व्याख्या

रणसीमनि युद्धाग्रे ये वीराः क्ष्मातिलकस्य पृथिवीभूषणरूपस्य विक्रमाङ्कदेवस्य विशिखैः बाणैः "पृषत्कबाणविशिखाः" इत्यमर.। तत्र तत्र स्थानेषु कीलिता. करिपृष्ठस्थलेषु प्रत्युप्ताः "बद्धे कीलितसंयतौ" इत्यमरः। ते वीराः धावतामपि पलायमानानामपि करिणां हस्तिनां कुम्भतटीविटङ्कतः गजकुम्भशिखरात् न अपतन् भूमौ न समापतितवन्तः। अत्र काव्यलिङ्गनामाऽलङ्कारः।

भाषा

रणभूमि मे जो जो वीर पृथ्वी के भूषण राजा विक्रमाङ्कदेव के बाणो से जहाँ जहाँ हाथियो के पृष्ठस्थल पर जड दिये गये थे वे वीर, हाथियो के दौड़ने पर भी वहां से जमीन पर नही गिरे।

अथ विहतवीरविलासिनीविलापं प्रस्तौति—

अयि नाथ [1]विमुञ्च कैतवं किमु मूर्छामिषमीलिते दृशौ।
न तवायमुपेक्षितुं क्षणः सुभट स्वामिचमूपराभवम् ॥७९॥

अन्वयः

अयि नाथ कैतवं विमुञ्च मूर्छामिषमीलिते दृशौ किमु। हे सुभट स्वामिचमूपराभवम् उपेक्षितुं तव अयं क्षणः न।

व्याख्या

अयि नाथ! हे प्रिय! कैतवं व्याजं "कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे" इत्यमरः। विमुञ्च त्यज मूर्छाया मिषेण व्याजेन मीलिते सम्पुटिते दृशौ किमु। हे सुभट सुयोध! स्वामिनः पत्युः चमूस्सेना "सेना पृतनानीकिनीचमूः" इत्यमरः। तस्याः पराभवं पराजयमुपेक्षितुमवहेलनां कर्तुं तव भवत अयं क्षण कालो नोचितः। उत्तिष्ठ शत्रुं पराजयस्व।

भाषा

युद्ध मे मारे गये वीर की स्त्री विलाप करती है कि हे स्वामी कपट छोड़ दो। क्या मूर्छा के बहाने से आँखे बन्द किये हो। हे वीर! अपने मालिक की सेना के पराजय की उपेक्षा करने का तुम्हारा यह समय नही है।

[1] "विमुक्तकैतव" इति पाठात् "विमुञ्च कैतव" इति पाठः साधुतर.।

पुरुषाः सुरधाम्नि दुर्लभास्तदिहायान्ति निलिम्पपांसुलाः ।
अलमेतदुपाधिनामुना मयि कामिन्नवधीरणेन ते ।।८०।।

अन्वयः

सुरधाम्नि पुरुषाः दुर्लभाः तत् निलिम्पपांसुलाः इह आयान्ति । हे कामिन् मयि एतदुपाधिना अमुना ते अवधीरणेन अलम् ।

व्याख्या

सुराणां देवानां धाम स्थानं सुरधाम तस्मिन्पुरुषाः मनुष्याः दुर्लभाः दुःखेन प्राप्तुं शक्याः तत्तस्मात्कारणात् निलिम्पपासुलाः निलिम्पा देवास्तेषां पांसुलास्स्वैरविहारिण्यः "स्वैरिणी पांसुला च स्यात्" इत्यमरः । इह भूलोके आयान्ति समागच्छन्ति । हे कामिन् ! कामुक ! मयि त्वत्प्रियायामेतदुपाधिना एतद्व्याजेनामुना ते तवावधीरणेन तिरस्कारेण अलम् । मौनं त्यज ममावमाननं मा कुरु वचो ब्रूहीति भावः ।

भाषा

स्वर्ग मे पुरुष दुर्लभ है । इसलिये देवो की स्वैरिणियाँ या अप्सराएँ यहाँ आती है । हे कामी ! इस कारण से तुम जो मेरा अनादर कर रहे हो यह समाप्त कर दो । अर्थात् मौन छोड कर मेरा अनादर न करते हुए मुझसे बोलो ।

विदितं यदयं विगाहसे सुभट श्वाससमीरगोपनम् ।
सुरवारपुरन्ध्रिचुम्बनादिह ते नूतनमस्ति सौरभम् ।।८१।।

अन्वयः

हे सुभट यत् अयं श्वाससमीरगोपनं विगाहसे (तत्) विदितम् । ते सुरवारपुरन्ध्रिचुम्बनात् इह नूतनं सौरभम् अस्ति ।

व्याख्या

हे सुभट ! हे सुयोध ! यद्यस्मात्कारणादयं वीरः त्वं श्वाससमीरस्य श्वासवायोर्गोपनं ज्ञापनाभावं विगाहसे करोषि एतद्विदितं ज्ञातम् । ते तव सुराणां वारपुरन्ध्रयो वारविलासिन्यस्तासां चुम्बनात् इह श्वाससमीरे नूतनं सौरभं गन्धः

अस्ति। तत्सौरभं श्वासमार्गेण बहिः कर्तुं नेच्छसि। अतएव श्वासवायोर्गोपनं करोषीति भावः।

भाषा

हे वीर! तुम जो सास रोकने का काम कर रहे हो इसका मतलब मै समझती हूँ। देवो की स्वैरिणियो का या अप्सराओ का चुम्बन करने से, तुम्हारे श्वासवायु मे एक नवीन सुगन्ध आ गई है। जिसे सास लेकर प्रकट कर देना नही चाहते हो।

मम भाग्यविपर्ययादिदं त्वमपर्यन्तमधैर्यमाश्रितः।
अहहाभिसरन्ति सम्पदश्चपलाः स्वामिगृहादनङ्कुशाः ॥८२॥

व्याख्या

मम भाग्यविपर्ययात् इदं (जातम्) (यत्) त्वम् अपर्यन्तम् अधैर्यम् आश्रितः। अहह स्वामिगृहात् अनङ्कुशाः चपलाः सम्पदः अभिसरन्ति।

व्याख्या

मम भाग्यविपर्ययात् दौर्भाग्यादिदं जातं यत्त्वमपर्यन्तमन्तरहितं महत्तमम-धैर्यं चापलमाश्रितः गृहीतवान्। अहहेति खेदे स्वामिनः सिंहदेवस्य गृहाद-नङ्कुशाः प्रतिबन्धरहिताः उच्छृङ्खलास्सम्पदः श्रियोऽभिसरन्ति गच्छन्ति।

भाषा

मेरे दुर्भाग्य से यह हुआ है कि तुम एक दम सदैव के लिये अधीर हो उठे हो। हाय! राजा सिंहदेव के घर से बिना रोक टोक यह चञ्चल लक्ष्मी चली जा रही है।

चलितोऽसि सुराङ्गनागृहं मम सौभाग्यविपर्ययाद्यदि।
किमु विस्मरसि स्मरातुर प्रभुसम्मानमिहान्यदुर्लभम् ॥८३॥

अन्वयः

हे स्मरातुर! यदि मम सौभाग्यविपर्ययात् सुराङ्गनागृहं चलितः असि (तर्हि) इह अन्यदुर्लभं प्रभुसम्मानं किमु विस्मरसि।

व्याख्या

हे स्मरेणातुर पीड़ित ! प्राणनाथ ! यदि मम सौभाग्यविपर्ययात् दौर्भाग्यविपरिणामात् सुराङ्गनागृहं देवाङ्गनासदनं स्वर्गं चलितः प्रस्थितोऽसि तर्हीह नृलोके अन्यैर्जनैर्दुर्लभं दुष्प्रापं प्रभुसम्मानं मत्कृतं स्वामिसत्कारं किमु विस्मरसि ।

भाषा

हे कामासक्त ! यदि मेरे दुर्भाग्य से तुम सुराङ्गना के घर स्वर्ग मे जाते हो तो इस ससार मे अन्य पुरुषो को न प्राप्त होने वाली (मेरे द्वारा की गई) पतिसेवा को क्यो भूलते हो । अर्थात् ऐसी पतिसेवा वह सुराङ्गना न कर सकेगी इसे याद रक्खो ।

इति वीरविलासिनिजन-स्फुरदाक्रन्दसहस्रदुर्दिनाम् ।
रणभूमिमसौ विलोकयन्नरिपृष्ठग्रहणान्न्यवर्तत ॥८४॥

अन्वयः

असौ इति वीरविलासिनीजनस्फुरदाक्रन्दसहस्रदुर्दिनां रणभूमिं विलोकयन् अरिपृष्ठग्रहणात् न्यवर्तत ।

व्याख्या

असौ विक्रमाङ्कदेवः इति पूर्वोक्तरूपेण वीराणां विलासिन्यो जनास्तेषां स्फुरन्विलसन् आक्रन्दो रोदनं तेषां सहस्रेण दुर्दिनां "मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम्" इत्यमरः । अश्रुवृष्टियुक्ता रणभूमिं युद्धभूमिं विलोकयन् पश्यन् अरीणां शत्रूणां पृष्ठग्रहणात् मारणार्थं पृष्ठधावनात् न्यवर्तत निवृत्तः ।

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव, पूर्वोक्त प्रकार से शत्रुओ की स्त्रियो के विलाप मे, फूट २ कर रोकर आसुओ की वृष्टि होनेवाली रणभूमि को देखता हुआ शत्रुओ का पीछा करने से रुक गया ।

तदनु नृपतिः प्राप्तः पारं परं समराम्बुधेः
सरलितधनुः श्रुत्वा शत्रोः पलायनमाकुलम् ।
अहह कृपणस्त्यक्तः कीर्त्याप्यसाविति विव्यथे
प्रकृतिमहतां दुर्वृत्तेष्वप्यहो चटुलाः क्रुधः ॥८५॥

अन्वयः

तदनु नृपतिः समराम्बुधेः परं पारं प्राप्तः सरलितधनुः शत्रोः आकुलं पलायनं श्रुत्वा अहह कीर्त्या अपि असौ कृपणः त्यक्तः इति विव्यथे। प्रकृतिमहतां दुर्वृत्तेषु अपि अहो क्रुधः चटुलाः।

व्याख्या

तदनु तदनन्तरं नृपतिः विक्रमाङ्कदेवः समराम्बुधेः सङ्ग्रामसमुद्रस्य परमन्तिमं पारं प्राप्तो विजयान्वित इत्यर्थः। सरलितं शिथिलितं धनुश्चापं "धनुश्चापौधन्व-शरासनकोदण्डकार्मुकम्" इत्यमरः। यस्य सः शत्रोः सिंहदेवस्याऽऽकुलं भयसम्भ्रमं पलायनं गमनं श्रुत्वा अहहेति खेदे कीर्त्याऽपि यशसाप्यसौ कृपणो दीनः सिंह-देवस्त्यक्तः इति हेतोः विव्यथे दुःखं प्राप। प्रकृत्या स्वभावेन महतां महात्मना दुर्वृत्तेष्वपि दुराचारिष्वपि अहो क्रुधः कोपाः चटुलाः क्षणस्थायिन्यः ननु सर्वदैव तिष्ठन्ति। अतएवेदानीं सिंहदेवस्योपरि क्रोधः गतप्राय एवेति भावः। अस्मिन् श्लोके हरिणीच्छन्दः। तल्लक्षणं यथा-नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता। अत्रार्थान्तरन्यासश्चाऽलङ्कारः।

भाषा

इसके अनन्तर राजा विक्रमाङ्कदेव, युद्ध रूपी समुद्र के पूर्णतया पार होकर अर्थात विजयी होकर, धनुष को ढीला कर अर्थात् प्रत्यञ्चा को उतार कर, घबड़हट के साथ विपक्षी सिंहदेव का युद्ध भूमि से भागना सुनकर, हाय! यह सिंहदेव राजलक्ष्मी से तो पहिले ही वञ्चित हो चुका था अब बिचारा कीर्ति से भी त्यक्त हो गया इस विचार से दुःखी हो गया। ऊँचे विचार वाले महात्माओं का कुकर्मियों के प्रति भी क्रोध क्षणिक रहता है।

करितुरगसमृद्धां सार्धमन्तःपुरेण
क्षितिपतिरथ सर्वां शत्रुलक्ष्मीं गृहीत्वा।
ललितगतिकरेणुन्यस्तहेमासनस्थः
प्रवरजयपताकां राजधानीं विवेश ॥८६॥

अन्वयः

अथ क्षितिपतिः अन्तःपुरेण सार्धं करितुरगसमृद्धां सर्वां शत्रुलक्ष्मीं गृहीत्वा ललितगतिकरेणुन्यस्तहेमासनस्थः प्रवरजयपताकां राजधानीं विवेश।

व्याख्या

अथेत्यन्तरं क्षितिपतिर्विक्रमाङ्कदेवः अन्तःपुरेणावरोधस्थस्त्रीजनेन "अन्तःपुरं स्यादवरोधनम्" इत्यमरः । सार्धं सह करिभिर्गजैस्तुरगैरश्वैश्च समृद्धां सर्वां सकलां शत्रुलक्ष्मीं गृहीत्वा ललिता रमणीया गतिर्गमनं यस्यास्ता ललितगतिः करेणुः करिणी तस्यां न्यस्ते निक्षिप्ते हेमासने सुवर्णासने तिष्ठतीति ललितगतिकरेणुन्यस्तहेमासनस्थः प्रवरा श्रेष्ठा जयपताका विजयवैजन्ती "पताका वैजयन्ती स्यात्" इत्यमरः । यस्यां सा तां राजधानीं राजनगरीं कल्याणपुरं विवेश प्राप्तवान् । अत्र श्लोके मालिनीच्छन्दः । "ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः" इति लक्षणात् ।

भाषा

इसके अनन्तर राजा विक्रमाङ्कदेव अपनी अन्त पुर की स्त्रियों के साथ हाथी और घोडो से समृद्ध शत्रुकी समग्र लक्ष्मी को लेकर, सुन्दर चाल वाली हथिनी के ऊपर बंधे सोने के सिंहासन पर बैठ कर, श्रेष्ठ विजयपताका से शोभित अपनी राजधानी कल्याणनगरी में प्रविष्ट हुआ ।

सम्प्राप्तं कुलकण्टकं तमटवीमध्यादवन्ध्यैर्भटैः
कारुण्योद्गतबाष्पगद्गदपदः सम्भाष्य सन्तोष्य च ।
चालुक्यान्वयशेखरोऽथ-शिखरप्रेङ्खोलमुक्ताफल-
प्रालम्बद्युतिपुञ्जदर्शितयशोगुच्छामगच्छत्पुरीम् ॥८७॥

अन्वयः

अथ चालुक्यान्वयशेखरः अवन्ध्यैः भटैः अटवीमध्यात् सम्प्राप्तं तं कुलकण्टकं कारुण्योद्गतबाष्पगद्गदपदः (सन्) सम्भाष्य सन्तोष्य च शिखरप्रेङ्खोलमुक्ताफलप्रालम्बद्युतिपुञ्जदर्शितयशोगुच्छां पुरीम् अगच्छत् ।

व्याख्या

अथेत्यनन्तरं चालुक्यान्वयस्य चालुक्यवंशस्य शेखरः शिरोभूषणरूपः अवन्ध्यैः सफलप्रयासैः भटैर्योधैरटवीमध्यात् वनमध्यात् सम्प्राप्तं हस्तगतं तं कुलकण्टकं स्वकुलविनाशकं सिंहदेवं कारुण्येन कृपया उद्गतं यद्वाष्पमश्रु तेन गद्गदं पदं शब्दो यस्य सः यद्वा गद्गदानि पदानि यस्य सः सन् सम्भाष्य सम्भाषणं कृत्वा संतोष्य सन्तोषं च दत्वा शिखरेषु प्रासादाग्रभागेषु प्रेङ्खोलाश्चञ्चला ये मुक्ता-

फलानां प्रालम्बा ऋजुलम्बमानमुक्तामालास्तेषां द्युतिपुञ्जैर्दर्शिता यशसां गुच्छा यया सा तां पुरीं स्वराजधानीं कल्याणपुरीमगच्छदयासीत्। अत्र शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः। 'सूर्याश्वैर्यदि स. सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितमिति लक्षणात्।

भाषा

इसके अनन्तर चालुक्यवंश के मुकुट राजा विक्रमाङ्कदेव ने सफल परिश्रम वाले योद्धाओं द्वारा जगल के मध्य में पाये हुए कुलाङ्गार सिंहदेव को, दया से उत्पन्न आसुओ के कारण गद्गद शब्दो से युक्त वाणी से बोल कर और उसको ढाढस देकर महलो की चोटियो पर चञ्चल मोती की मालाओ की चमक से कीर्ति के गुच्छों को प्रकट करने वाली कल्याणपुरी में प्रवेश किया।

इति श्री त्रिभुवनमल्लदेव-विद्यापति-काश्मीरकभट्ट श्री बिल्हणविरचिते विक्रमाङ्कदेवचरिते महाकाव्ये पञ्चदश सर्ग.।

नेत्राब्जाभ्रयुगाङ्कविक्रमशरत्कालेऽत्र दामोदरात्
भारद्वाजबुधोत्तमात्समुदितः श्रीविश्वनाथः सुधीः।
चक्रे रामकुबेरपण्डितवरात्संप्राप्तसाहाय्यकः
सर्गे पञ्चदशे रमाकरुणया टीकाद्वयं निर्मलम्॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

॥ श्री ॥

महाकविश्रीबिल्हणविरचितं

विक्रमाङ्कदेवचरितम्

षोडशः सर्गः

कुङ्कुमस्मितसङ्कोची क्रौञ्चीमदनदेशकः ।
मित्रमुत्तरवायूनां वियल्लावण्यतस्करः ॥१॥
शरत्कालातपक्लान्त—कान्तावक्त्रेन्दुवल्लभः ।
अथाजगाम हेमन्तः सामन्तः स्मरभूपतेः ॥२॥

अन्वयः

अथ कुङ्कुमस्मितसङ्कोची क्रौञ्चीमदनदेशकः उत्तरवायूनां मित्रं वियल्लावण्यतस्करः शरत्कालातपक्लान्तकान्तावक्त्रेन्दुवल्लभः स्मरभूपतेः सामन्तः हेमन्तः आजगाम ।

व्याख्या

अथ विक्रमाङ्कदेवस्य विजयानन्तरं स्वपुरप्रवेशे सति कुङ्कुमस्य काश्मीरदेशोत्पन्नस्य केसरस्य स्मितं विकासं सङ्कोचयतीति मुद्रयतीति कुङकुमस्मितसङ्कोची क्रौञ्ची पक्षिविशेषस्य दयिता तस्यै मदनं कामोद्दीपनं दिशतीति ददातीति क्रौञ्चीमदनदेशकः क्रौञ्चीकामोद्दीपक उत्तरवायूनामुत्तरदिक्पवनानां मित्रं प्रवर्तकः वियत आकाशस्य लावण्य सौन्दर्यं तस्य तस्करः विनाशकः शरत्कालस्याऽऽतपेन ग्रीष्मेण क्लान्ताः श्रान्ताः कान्तास्तासां वक्त्रमेवेन्दुर्वक्त्रेन्दुर्वदनचन्द्रमाः तस्य वल्लभः प्रियः प्रसन्नतासम्पादकः स्मरः काम एव भूपती राजा तस्य स्मरभूपतेः सामन्तः पराधीनराजा हेमन्तः ऋतुः आजगाम । अत्रानुष्टुप् छन्दः तल्लक्षणम्—"श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुःपादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।"

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव के विजय प्राप्त कर कल्याणपूर में आने के बाद केसर के विकास को बन्द करनेवाला, अर्थात् केसर की उत्पत्ति का समाप्ति सूचक, क्रौञ्ची का कामोद्दीपन करनेवाला, उत्तरी हवा का बहाने वाला, आकाश के सौन्दर्य को नष्ट कर देने वाला, शरत् ऋतु की घाम से मलिन कामिनियो के मुखचन्द्रों को प्रसन्नता देने वाला, राजा कामदेव का सामन्त हेमन्तऋतु आ गया। हेमन्तऋतु मे केसर नहीं होता, क्रौञ्ची कामासक्त हो जाती है, उत्तरी हवा बहने लगती है, बादलो के टुकड़ो से आकाश की शरदृऋतु की शोभा नष्ट हो जाती है और शरत्काल के कडे घाम से पीढित कामिनियो को आलिङ्गनादि कामक्रीडाओं से विशेष सुख मिलता है।

शरद्वितीर्णसौभाग्य—भङ्गदक्षः क्षपापतेः।
कान्तामुखानां हेमन्तः सेवकत्वमशिक्षत ॥३॥

अन्वयः

हेमन्तः क्षपापतेः शरद्वितीर्णसौभाग्यभङ्गदक्षः कान्तामुखानां सेवकत्वम् अशिक्षत।

व्याख्या

हेमन्तर्तुः क्षपा रजनी "त्रियामा क्षणदा क्षपा" इत्यमरः। तस्याः पतिस्तस्य क्षपापतेः चन्द्रस्य शरदा वितिर्ण दत्तं सौभाग्यं नैर्मल्यं तस्य भङ्गे नाशे दक्षः प्रवीणः कान्तामुखानां स्त्रीवदनानां सेवकत्वं सेवामशिक्षत उपादिशत्। हेमन्ते चतुरपुरुषव्यवहारसमारोपात् समासोक्तिनामाऽलङ्कारः।

भाषा

चन्द्रमा को शरत् ऋतु द्वारा दिये हुए नैर्मल्य को नष्ट कर देने में प्रवीण, हेमन्तऋतु ने चन्द्रमा को कामिनियो के मुखो की सेवा करने की शिक्षा दी।

अजायन्त विभावर्यस्तपने मन्दतेजसि।
दिवसग्रस्तविस्तार-कर्षणाय कृतक्षणाः ॥४॥

अन्वयः

तपने मन्दतेजसि (सति) विभावर्यः दिवसग्रस्तविस्तारकर्षणाय कृतक्षणाः अजायन्त।

व्याख्या

तपने तापयति लोकं स्वतेजसा इति तपनस्सूर्यस्तस्मिंस्तपने "तपनः सविता रविः इत्यमरः । मन्दं तेजो यस्य स तस्मिन् गलितप्रतापे जाते सति विभावर्यो रजन्यः "विभावरीतमस्विन्यौ रजनी यामिनी तमी" इत्यमर । दिवसेन ग्रस्तो गृहीतो यो विस्तारो विशालत्वं तस्य कर्षणाय पुनर्ग्रहणाय कृतक्षणाः कृतमहोत्सवा जाता यद्वा गृहीतनियमा जाताः । दिवसपतिस्सूर्यस्तस्य मन्दत्वाद्दिवसायामस्याऽपि सङ्क्षिप्तत्वमिति भावः । रात्रीणां दैर्घ्यं जातमिति पर्यायेण कथनात्पर्यायोक्तं नामाऽलङ्कार ।

भाषा

सूर्य की धूप मन्द पड़ जाने से, रात्रियाँ, दिन द्वारा गृहीत बड़े होने को उससे छीन लेने के लिये नियम पालन करने लगी। अर्थात् रात्रियाँ बड़ी होने लगी और दिन छोटे होने लगे।

दोलयन्तः कपोलेषु कस्तूरीपत्रबन्धुषु ।
अलकानलकास्त्रीणां ववुः कैलासवायवः ॥५॥

अन्वयः

अलकास्त्रीणां कस्तूरीपत्रबन्धुषु कपोलेषु अलकान् दोलयन्तः कैलासवायवः ववुः ।

व्याख्या

अलकास्त्रीणां कुवेरपुरीकामिनीनां कस्तूरीपत्रबन्धुषु कस्तूरिकारचितपत्रलतारचनावत्सु कपोलेष्वलकान् चूर्णकुन्तलान् "अलकाश्चूर्णकुन्तलाः" इत्यमरः : दोलयन्तः चञ्चलयन्तः कैलासपवना उत्तरवायवो ववुराजग्मुः ।

भाषा

अलकापुरी अर्थात् कुबेर की नगरी में रहने वाली कामिनियों के कस्तूरी से की हुई पत्ररचना से युक्त कपोलों पर बालों को बिखारने वाले कैलास के वायु अर्थात् उत्तरी वायु बहने लगे।

रतिकोपे प्रसादे च दधानाः परिपूर्णताम् ।
आयामवत्यो यामिन्यः कामिनीनां मुदेऽभवन् ॥६॥

अन्वयः

रतिकोपे प्रसादे च परिपूर्णतां दधानाः आयामवत्यः यामिन्यः कामिनीनां मुदे अभवन् ।

व्याख्या

रतिकोपे केलिकलहे प्रसादे प्रियकर्तृकप्रसन्नतासम्पादने च परिपूर्णतां दधानाः पर्याप्तसमयशालित्वं धारयन्त्यः आयामो दैर्घ्यं "दैर्घ्यमायाम आनाहः" इत्यमरः । तद्वत्यो यामिन्यो रात्रयः कामिनीनां मुदे हर्षाय अभवन् ।

भाषा

केलिकलह में और पति द्वारा मनौवल कराने में पर्याप्त समय देने वाली जाडे की बडी बडी रातो से कामिनियो को आनन्द मिलता था ।

प्रौढत्वमाचरन्तीभिर्नीत्वा सङ्कोचपात्रताम् ।
अक्रियन्त त्रियामाभिः स्त्रीजिता इव वासराः ।।७।।

अन्वयः

प्रौढत्वम् आचरन्तीभिः त्रियामाभिः वासराः सङ्कोचपात्रतां नीत्वा स्त्रीजिताः इव अक्रियन्त ।

व्याख्या

प्रौढत्वं दीर्घत्वं प्रागल्भ्यं च आचरन्तीभि सम्पादयित्रीभिः त्रियामाभी रात्रिभि. वासराः दिनानि सङ्कोचस्य पात्रतां स्थानत्वं नीत्वा प्रापयित्वा, सङ्कोच-मल्पत्वमधृष्णुत्वं च स्त्रीभिर्जिता वशीकृता इवाक्रियन्त सम्पादिताः ।

भाषा

बडी बडी और प्रगल्भ रातो ने दिवसो को छोटा बनाकर अर्थात् बातो से नीचा दिखा कर स्त्रैणो के समान अपने वश मे कर लिया । अर्थात् जिस प्रकार प्रौढा और प्रगल्भ स्त्री अपने पति को सङ्कुचित कर नीचा दीखाकर अपने वश मे कर लेती है उसी प्रकार रात्रि ने अपने विस्तार से दिन को छोटा कर उसे अपने वश में कर लिया ।

अलभन्त नभःक्षेत्रे तारास्तरलकान्तयः ।
त्विषं तुषारबीजानां नूतनाङ्कुरशालिनाम् ।।८।।

अन्वयः

नभःक्षेत्रे तरलकान्तयः ताराः नूतनाङ्कुरशालिनां तुषारबीजानां त्विषम् अलभन्त ।

व्याख्या

नभः आकाशमेव क्षेत्रं केदारः "क्षेत्रं शरीरे केदारे" इति मेदिनी । तस्मिन् तरलकान्तयः चञ्चलद्युतयस्तारा नक्षत्राणि "नक्षत्रमृक्षं भं तारा" इत्यमरः । नूतनाङ्कुरशालिनां नूतनेषु नवीनेष्वङ्कुरेषु हरिततृणेषु शालन्ते शोभन्ते इति नूतनाङ्कुरशालिनस्तेषां तुषारबीजानां हिमरूपबीजानां "तुषारस्तुहीनं हिमम्" इत्यमरः । त्विषं कान्तिमलभन्त प्राप्तवत्यः । अत्र निदर्शनालङ्कारः ।

भाषा

आकाशरूपी हरे भरे खेत में चञ्चल कान्तिवाले तारों ने नये घास के अंकुरों पर शोभित होने वाले कोहरे के बीजों की कान्ति को प्राप्त किया ।

सशङ्केनेव कन्दर्प—दर्पोष्मपरिचिन्तनात् ।
शीतेन मदिराक्षीणां नास्पृश्यत कुचस्थली ॥६॥

अन्वयः

कन्दर्पदर्पोष्मपरिचिन्तनात् सशङ्केन इव शीतेन मदिराक्षीणां कुचस्थली न अस्पृश्यत ।

व्याख्या

कन्दर्पस्य कामस्य दर्पो गर्वस्तस्य य उष्मा उष्णत्वं प्रतापो वा तस्य परिचिन्तनं ध्यानं तस्मात् सशङ्केन भीतेनेव शीतेन शैत्येन मदिराक्षीणां मत्तनयनानां कुचस्थली स्तनद्वयं नास्पृश्यत न स्पृष्टा । हेमन्ते स्त्रीणां कुचद्वये उष्णत्वं सर्वदा विराजते इति भावः । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

भाषा

कामदेव के अभिमान की गर्मी के विचार से शङ्कित होकर मानो शैत्य ने मत्तनयना कामिनिओं की कुचस्थली का स्पर्श नहीं किया ! अर्थात् हेमन्तऋतु में कामिनियों के कुच सदैव गरम रहते हैं ।

अभूवन्नद्भुतोष्माणः शीतव्याप्ते जगत्त्रये ।
कुचोत्सङ्गाः कृशाङ्गीणां स्थानं मन्मथतेजसः ॥१०॥

अन्वयः

शीतव्याप्ते जगत्त्रये मन्मथतेजसः स्थानं कृशाङ्गीणां कुचोत्सङ्गाः अद्भुतोष्माणः अभूवन् ।

व्याख्या

शीतेन शैत्येन व्याप्ते सञ्छादिते जगत्त्रये भुवनत्रये मन्मथस्य कामस्य तेजसः प्रतापस्योष्मणो वा स्थानं कृशाङ्गीणां कृशशरीराणां नायिकानां कुचोत्सङ्गास्तनपरिसरा अद्भुतो विचित्र ऊष्मा येषान्ते अभूवन् । अत्रोक्तनिमित्ता विशेषोक्तिरलङ्कारः ।

भाषा

तीनो लोको के शीत से व्याप्त हो जाने पर भी कामदेव के तेज के स्थान कृशाङ्गी कामिनियो की कुचस्थलियाँ अद्भुत गर्मी से युक्त थीं ।

यामिनीभिरनीयन्त सततं कामिनीजनाः ।
अनङ्गसङ्गतैरङ्गैर्गाढालिङ्गनकौतुकम् ॥११॥

अन्वय

यामिनीभिः कामिनीजनाः अनङ्गसङ्गतैः अङ्गैः गाढालिङ्गनकौतुकम् सततम् अनीयन्त ।

व्याख्या

यामिनीभिः रजनीभिः कामिनीजनाः स्त्रीजनाः अनङ्गेन कामेन सङ्गतानि सम्बद्धानि तैस्सकामैरङ्गैः शरीरावयवैः गाढालिङ्गनस्य गाढाश्लेषस्य कौतुकमानन्दं सततं निरन्तरमनीयन्त प्रापिताः ।

भाषा

रात्रियों ने कामिनिओ को काम से भरे शरीर के अवयवो से सतत गाढ़ आलिङ्गन का आनन्द दिलाया । अर्थात् रातें बड़ी और ठण्डी होने से कामिनिओं को अपने पति से लपट कर चिरकाल तक पड़े रहने का आनन्द मिलता था ।

अक्षिप्यन्त तुषाराद्रि-वायुस्फुटनशङ्कया ।
कान्ताभिः कुङ्कुमालेप-निचुलेषु मुखेन्दवः ॥१२॥

अन्वयः

कान्ताभिः तुषाराद्रिवायुस्फुटनशङ्कया कुङ्कुमालेपनिचुलेषु मुखेन्दवः अक्षिप्यन्त ।

व्याख्या

कान्ताभिः कामिनीभिः तुषाराद्रेर्हिमाचलस्य वायोः पवनस्य कारणात् स्फुटनं चर्मणो विदीर्णता तस्य शङ्कया भयेन कुङ्कुमस्य काश्मीरजस्य आलेपः आलेपनमेव निचुला निचोलका "निचुलस्तु निचोले स्यात्" इति मेदिनी । आवरणानि तेषु मुखेन्दवः स्वीयचन्द्राभिन्नाननान्यक्षिप्यन्त न्यस्ताः । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

भाषा

कामिनियो ने हिमालय के ठण्डे वायु से चमड़ा फट जाने के सन्देह से अपने चन्द्रवदनों को केसर का लेप रूपी केचुली मे रख लिया । अर्थात् मुखचन्द्रों पर केसर का गाढा लेप चढ़ा लिया ।

पुण्ड्रेक्षुपाकपूतानि क्षेत्राणि दधि मांसलम् ।
आसीत्कुङ्कुमचर्चा च हन्त हेमन्तजीवितम् ॥१३॥

अन्वयः

पुण्ड्रेक्षुपाकपूतानि क्षेत्राणि मांसलं दधि कुङ्कुमचर्चा च हन्त हेमन्तजीवितम् आसीत् ।

अन्वयः

पुण्ड्रेक्षवो पुष्टा इक्षवः तेषां पाकेन परिणामेन पूतानि पवित्राणि सुन्दराणीत्यर्थः । क्षेत्राणि केदाराः मांसलं घनं दधि कुङ्कुमचर्चा केसरविलेपनं स्वाङ्गेषु हन्तेति हर्षे "हन्त हर्षेऽनुकम्पायां" इत्यमरः । हेमन्तर्तोः जीवितम् आसीत् ।

भाषा

पौढों के पकने से जगमगाते खेत, गाढ़ा दही, और केसर का लेप, ये हर्ष का विषय है कि, हेमन्त ऋतु के प्राण थे । अर्थात् उपर्युक्त तीनो चीजे हेमन्त ऋतु में ही प्राप्त हो सकती है ।

मद्वैरिणः कठोरांशोरियं प्रणयभूरिति ।
रोषादिव तुषारेण निरदह्यत पद्मिनी ॥१४॥

अन्वयः

मद्वैरिणः कठोरांशोः इयं प्रणयभूः इति रोषात् इव तुषारेण पद्मिनी निरदह्यत ।

व्याख्या

मद्वैरिणो मच्छत्रोः कठोरांशोः तीक्ष्णकिरणस्य सूर्यस्येयं कमलिनी प्रणयभूः स्नेहास्पदमिति हेतो रोषात् क्रोधादिव तुषारेण हिमेन पद्मिनी कमलिनी निरदह्यत निर्दग्धा । अत्र प्रत्यनीकनामाऽलङ्कारः ।

भाषा

मेरे शत्रु सूर्य की यह कमलिनी प्रीतिपात्र है इस क्रोध से मानो हिम ने पद्मिनी को सुखा दिया ।

समक्षमपि सूर्यस्य पर्यभूयत पद्मिनी ।
तेजस्विनोऽपि कुर्वन्ति किं कालवशमागताः ॥१५॥

अन्वयः

सूर्यस्य समक्षम् अपि पद्मिनी पर्यभूयत । कालवशम् आगताः तेजस्विनः अपि किं कुर्वन्ति ।

व्याख्या

सूर्यस्य महामहिमशालिनः भास्करस्य समक्षमपि पश्यतोऽपि पद्मिनी कमलिनी पर्यभूयत दुःखिताभूत् कालवशमागताः कालचक्रमुपागताः तेजस्विनोऽपि बलिनोऽपि किं कुर्वन्ति किमपि कर्तुं न समर्था भवन्तीति भावः । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ।

भाषा

सूर्य के देखते रहने पर भी पद्मिनी की दुर्दशा हो गई । कालचक्र में पड जाने पर बडे प्रतापी लोग भी क्या कर सकते है । अथात् कुछ भी नही कर सकते ।

अङ्गेषु स्पर्शसौभाग्यमपि सामान्ययोषिताम् ।
परिपोषितकन्दर्पस्ततान तुहिनागमः ॥१६॥

अन्वयः

परपोषितकन्दर्पः तुहिनागमः सामान्ययोषिताम् अपि अङ्गेषु स्पर्शसौभाग्यम् ततान ।

व्याख्या

परिपोषितः परिवर्धितः कन्दर्पः कामो येन स तुहिनस्याऽऽगमो यस्मिन्काले स तुहिनागमः हेमन्तः सामान्ययोषितां साधारणस्त्रीणामङ्गेष्वपि शरीरावयवेष्वपि स्पर्शस्य सौभाग्यं स्पर्शे सुखकारित्वं ततान विस्तारयामास ।

भाषा

काम को बढाने वाले हेमन्तऋतु ने साधारण स्त्रियो के शरीर के अवयवों में भी स्पर्शजन्य आनन्द को बढा दिया ।

विहारयोग्येषु दिनेषु तेषु देवश्चुलुक्यान्वयचक्रवर्ती ।
मृगेन्द्रगामी मृगयां विधातुं स निर्जगाम स्वभुजार्जितश्रीः ॥१७॥

अन्वयः

स्वभुजार्जितश्रीः मृगेन्द्रगामी चुलुक्यान्वयचक्रवर्ती देवः सः विहारयोग्येषु तेषु दिनेषु मृगयां विधातुं निर्जगाम ।

व्याख्या

स्वभुजेन स्वबाहुनार्जिता समुपानीता श्रीः लक्ष्मीः येन स अत एव मृगेन्द्रवद्गच्छतीति मृगेन्द्रगामी सिंहगामी चुलुक्यान्वयस्य चुलुक्यनामराजवंशस्य चक्रवर्ती देवः स विक्रमाङ्कदेवो विहारयोग्येषु क्रीडायोग्येषु तेषु दिवसेषु मृगयामाखेटं "आखेटो मृगया स्त्रियाम्" इत्यमरः । विधातुं सम्पादयितुं निर्जगाम । स्वपुराद्बहिर्जगाम । अतः परं उपजातिच्छन्दः ।

भाषा

अपने भुजबल से लक्ष्मी का उपार्जन करने वाला, सिंह के ऐसी चाल वाला चालुक्यवंश का चक्रवर्ती वह विक्रमाङ्कदेव हेमन्तऋतु के विहार करने योग्य दिनों मे शिकार खेलने के लिये निकल पड़ा ।

स वारबाणेन रणैकवीरः श्रियं दधे नीरदमेचकेन ।
आमुक्तनीलोत्पलकङ्कटस्य देवस्य चूताङ्कुरकार्मुकस्य ॥१८॥

अन्वयः

रणैकवीरः सः नीरदमेचकेन वारबाणेन आमुक्तनीलोत्पलकङ्कटस्य चूताङ्कुरकार्मुकस्य देवस्य श्रियं दधे।

व्याख्या

रणे युद्धे एक एव वीरः स विक्रमाङ्कदेवो नीरद इव मेघ इव मेचकः श्यामलस्तेन "कालश्यामलमेचकाः" इत्यमरः। वारबाणेन कञ्चुकेन "कञ्चुको वारबाणोऽस्त्री" इत्यमरः। आमुक्तो धृतः परिधृतो नीलोत्पलानां कङ्कटः कवचः "उरश्छदः कङ्कटको जगरः कवचोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। येन स तस्य चूताङ्कुर आम्राङ्कुर एव कार्मुकं धनुर्यस्य स तस्य देवस्य कामदेवस्य श्रियं लक्ष्मीं दधे धारयामास। अत्र निदर्शनालङ्कारः।

भाषा

युद्ध मे अपना सानी न रखनेवाला वह विक्रमाङ्कदेव मेघ के ऐसे काले कवच को पहिनने से, नीले कमलों के कवच को पहिनने वाले और आम के बौर का धनुष धारण करने वाले कामदेव की शोभा धारण करने लगा।

स कञ्चुकस्योपरि नीलभासः स्थितेन हारेण रराज राजा
समेघनक्षत्रगणोऽवतीर्णो विद्याधरः कश्चिदिवाम्बराग्रात् ॥१६॥

अन्वयः

सः राजा नीलभासः कञ्चुकस्य उपरि स्थितेन हारेण समेघनक्षत्रगणः कश्चित् विद्याधरः अम्बराग्रात् अवतीर्णः इव रराज।

व्याख्या

स राजा विक्रमाङ्कदेवो नीला भाः कान्तिर्यस्य स तस्य कञ्चुकस्य वारबाणस्य "कञ्चुको वारबाणोऽस्त्री" इत्यमरः। उपरि स्थितेनोपरि धृतेन हारेण मेघाश्च नक्षत्रगणाश्च तैस्सह कश्चित् विद्याधरः यक्षः अम्बराग्रावाकाशाग्रात् अवतीर्ण इव रराज शुशुभे। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

भाषा

वह राजा विक्रमाङ्कदेव नीले रग के कवच के ऊपर पहिने हुए हार के कारण मानो मेघ और नक्षत्रों को धारण करने वाला आकाश से नीचे उतरा कोई विद्याधर हो ऐसा शोभित होता था।

सहागतान्तः-पुरसुन्दरीभिरुदारहारप्रतिबिम्बिताभिः ।
वक्षःस्थले तस्य कलत्रमाद्यं रराज लक्ष्मीः सपरिच्छदेव ॥२०॥

अन्वय

तस्य वक्षःस्थले उदारहारप्रतिबिम्बिताभिः अन्तःपुरसुन्दरीभिः सह आगता सपरिच्छदा लक्ष्मीः आद्यं कलत्रम् इव रराज ।

व्याख्या

तस्य विक्रमाङ्कदेवस्य वक्षःस्थले उदारो महान् "उदारोदातृमहतोः" इत्यमरः । हारस्तस्मिन् प्रतिबिम्बिताभिः प्रतिफलिताभिरन्तःपुरसुन्दरीभिस्सहाऽऽगता सपरिच्छदा सपरिजना लक्ष्मीः आद्यं प्रथमं नवीनपरिणयसमयानन्तरमागत कलत्रं वधूरिव "कलत्रं श्रोणिभार्ययोः" इत्यमरः । रराज शोभते स्म ।

भाषा

उस राजा विक्रमाङ्कदेव के छाती पर लटके हार मे प्रतिबिम्बित अन्त पुर की स्त्रियो के साथ मानो अपने परिजनो के साथ आई हुई लक्ष्मी उसकी प्रथम भार्या उसके हृदय मे विराजित हो ऐसी शोभित होती थी ।

बभार हारावलिमौक्तिकानि वक्षःस्थलेन स्फटिकोज्ज्वलेन ।
उच्चैःस्थितस्य प्रतिबिम्बितानि स कुड्मलानीव यशोद्रुमस्य ॥२१॥

अन्वयः

सः स्फटिकोज्ज्वलेन वक्षःस्थलेन हारावलिमौक्तिकानि उच्चैःस्थितस्य यशोद्रुमस्य प्रतिबिम्बितानि कुड्मलानि इव बभार ।

व्याख्या

स विक्रमाङ्कदेवः स्फटिकवदुज्ज्वल चमत्कृतं तेन वक्षःस्थलेन हारावलिस्थितमौक्तिकानि हारस्य मुक्ताफलानि उच्चैः स्थितस्योपरिभागे विद्यमानस्य यशोद्रुमस्य कीर्तिवृक्षस्य प्रतिबिम्बितानि प्रतिफलितानि कुड्मलानि इव बभार दध्रे ।

भाषा

उस विक्रमाङ्कदेव ने स्फटिक के समान उज्वल और चमकने वाले वक्ष.स्थल पर हारावलि के मोतियो को मानो उसके स्फटिक के समान उज्ज्वल वक्ष.स्थल मे प्रतिबिम्बित ऊपर विद्यमान किर्तिवृक्ष की कलियों के समान धारण किया था ।

नेत्राभिरामं दधता प्रपञ्चं नीलातपत्रेण स राजते स्म ।
खण्डेन लक्ष्मीकुलमन्दिराणां नीलोत्पलानामिव राजहंसः ॥२२॥

अन्वयः

स नेत्राभिरामं प्रपञ्चं दधता नीलातपत्रेण राजहंसः लक्ष्मीकुलमन्दिराणां नीलोत्पलानां खण्डेन इव राजते स्म ।

व्याख्या

स विक्रमाङ्कदेवो नेत्रयोर्नयनयोरभिरामं सुन्दरं प्रपञ्चं विस्तारं 'विपर्यासे विस्तरे च प्रपञ्च" इत्यमरः । दधता धारयता नीलातपत्रेण नीलछत्रेण राजहंसः लक्ष्म्याः श्रियः कुलमन्दिराणामादिधाम्नां नीलोत्पलानां नीलकमलानां खण्डेन समूहेनेव राजते स्म शोभते स्म ।

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव, नेत्रो को सुख देने वाले विस्तीर्ण नीले रग के छत्र से मानो लक्ष्मी के आदिनिवासस्थानभूत नीले कमलो के समूह से शोभित राजहस के समान शोभित होता था ।

द्वयोर्दिशोः फेनविपाण्डुराभ्यां स चामराभ्यां पृथिवीतलेन्द्रः ।
प्रसाधिताशेषदिगन्तरस्य रेजे यशोभ्यामिव दोर्युगस्य ॥२३॥

अन्वयः

पृथिवीतलेन्द्रः सः द्वयोः दिशोः फेनविपाण्डुराभ्यां चामराभ्यां प्रसाधिताशेषदिगन्तरस्य दोर्युगस्य यशोभ्याम् रेजे इव ।

व्याख्या

पृथिवीतलस्येन्द्रः स विक्रमाङ्कदेवो द्वयोर्दिशोः वामदक्षिणयोः फेनवत्पाण्डुराभ्यां शुक्लाभ्यां चामराभ्यां प्रसाधितान्यलङ्कृतान्यशेषाणि दिगन्तराणि येन स तस्य दोर्युगस्य बाहुयुगलस्य यशोभ्यां रेजे इव शुशुभे इव ।

भाषा

पृथ्वी का इन्द्र वह राजा विक्रमाङ्कदेव दोनो दिशाओ मे चलाये जाने वाले फेन के ऐसे सफेद चवरो से मानो सम्पूर्ण पृथ्वी को अलकृत करने वाली अपनी दोनो भुजाओ के यशो से शोभित हो रहा था ।

व्योमाङ्गणस्थेन रराज वाजी झम्पासु तस्याग्रखुरद्वयेन ।
समुद्यतो मूर्धनि ताडनाय रोषादिवोष्णांशुतुरङ्गमाणाम् ॥२४॥

अन्वयः

वाजी झम्पासु व्योमाङ्गणस्थेन तस्य अग्रखुरद्वयेन रोषात् उष्णांशु-तुरङ्गमाणां मूर्धनि ताडनाय समुद्यतः इव रराज ।

व्याख्या

वाज्यश्वः झम्पासूत्पतनेषु व्योमाङ्गणस्थेनाऽऽकाशस्थेन तस्याऽश्वस्याग्रखुरयोः द्वयेन रोषात् क्रोधात् उष्णांशोस्सूर्यस्य तुरङ्गमाणां अश्वानां "तुरङ्गाश्वतुरङ्गमाः" इत्यमरः । मूर्धनि शिरसि ताडनाय समुद्यत इव सन्नद्ध इव रराज शुशुभे । अत्र फलोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

भाषा

विक्रमाङ्कदेव का घोडा उछाल में आकाश की ओर उठाये हुए अपने अगले दो खुरो से मानों क्रोध से सूर्य के घोड़ों के मस्तक पर मारने के लिए उद्यत हो ऐसा शोभित होता था ।

तेजोनिधेस्तस्य तुरङ्गमोऽसौ देहेन डिण्डिरविपाण्डुरेण ।
घर्मेण दग्धानिव नीलदेहान् सहस्ररश्मेस्तुरगाञ्जहास ॥२५॥

अन्वयः

तस्य तेजोनिधेः असौ तुरङ्गमः डिण्डीरविपाण्डुरेण देहेन घर्मेण दग्धान् (अत एव) नीलदेहान् सहस्ररश्मेः तुरगान् जहास इव ।

व्याख्या

तस्य तेजोनिधेः प्रभाववतो विक्रमाङ्कदेवस्यासौ तुरङ्गमोऽश्वः डिण्डीरवत्फेन-वत् "हिण्डीरोऽब्धिकफः फेनः" इत्यमरः । (डिण्डीरः) डाविर्वा पाठ. । पाण्डु-रेणोज्वलेन देहेन घर्मेणाऽऽतपेन दग्धान् कृष्णवर्णपीडितान् अतएव नीलदेहान् श्यामशरीरान् सहस्ररश्मेस्तुरगानश्वान् जहास इव परिहसति स्म इव ।

भाषा

उस तेजस्वी विक्रमाङ्कदेव का घोड़ा फेन के समान श्वेतवर्ण का होने से मानो कडी धूप से झुलसे अतएव काले (हरे) रंग के सूर्य के घोडो की हसी उडाता था ।

तेजोविशेषात्परितोषितानां प्राप्येव वेगं मनसां सकाशात् ।
वाजी स राजीवमुखस्य तस्य विवेद वायोरपि पङ्गुभावम् ॥२६॥

अन्वयः

राजीवमुखस्य तस्य सः वाजी तेजोविशेषात् परितोषितानां मनसां सकाशात् वेगं प्राप्य इव वायोः अपि पङ्गुभावं विवेद ।

व्याख्या

राजीवमिव कमलमिव मुखं यस्य स तस्य राजीवमुखस्य कमलवदनस्य तस्य विक्रमाङ्कदेवस्य सः प्रसिद्धो वाजी अश्वः तेजोविशेषात्प्रभावविशेषात् परितोषितानां सन्तोषितानां मनसां सकाशात् वेगं प्राप्य गृहीत्वा इव वायोः पवनस्यापि पङ्गुभावं गमनासामर्थ्यं विवेद ज्ञातवान् । मनसो गति सर्वोत्कृष्टेति प्रसिद्धम् ।

भाषा

कमलवदन उस राजा विक्रमाङ्कदेव का प्रसिद्ध वह घोडा मानो अपने विशिष्ट प्रभाव से सन्तुष्ट किये हुए मनो से वेग प्राप्त कर वायु को भी चाल में पङ्गू है ऐसा समझता था । अर्थात् वायु से भी तेज मन की गति के समान उस घोडे की गति थी । मन की गति वायु की गति से तेज मानी गई है ।

पर्याणमाणिक्यरुचां चयेन हरिप्रभस्यास्य हरिश्चकाशे ।
आपूरिताङ्गः खुरखण्डितारि-भूपालरत्नाङ्गणपांसुनेव ॥२७॥

अन्वयः

हरिप्रभस्य अस्य हरिः पर्याणमाणिक्यरुचां चयेन खुरखण्डितारि-भूपालरत्नाङ्गणपांसुना आपूरिताङ्गः इव चकाशे ।

व्याख्या

हरेरिन्द्रस्य प्रभेव कान्तिरिव प्रभा कान्तिर्यस्य स तस्य अस्य विक्रमाङ्कदेवस्य हरिरश्वः पर्याणेऽश्वपृष्ठस्थे उपवेशनासने माणिक्यान्यलङ्करणार्थं संलग्ना मणयस्तेषां रुचः कान्तयस्तासां चयेन पुञ्जेन खुरैः खण्डितानि संचूर्णितानि अरिभूपालानां शत्रुनृपतीनां रत्नजटितान्यङ्गणानि तेषां पांसुः धूलिस्तेनाऽऽपूरितानि व्याप्तान्यङ्गानि यस्य स आपूरिताङ्गः इव चकाशे बभौ ।

भाषा

इन्द्र के समान कान्ति वाले विक्रमाङ्कदेव का घोड़ा, रत्न जड़े जीन के कान्तिसमूह से मानो खुरों से चूर चूर की हुई शत्रु राजाओं के रत्नों से जड़ें अगनो की धूलि से व्याप्त शरीरावयव वाला हो ऐसा शोभित होता था।

जनस्य चित्रोल्लिखिताश्ववार-दृढासने तत्र निपत्य दृष्टिः ।
भ्रान्ता तुरङ्गभ्रमिपृष्ठलग्ना श्रमादिवान्यत्र न गन्तुमैच्छत् ॥२८॥

अन्वयः

जनस्य दृष्टिः चित्रोल्लिखिताश्ववारदृढासने तत्र निपत्य भ्रान्ता तुरङ्गभ्रमिपृष्ठलग्ना श्रमात् इव अन्यत्र गन्तुं न ऐच्छत्।

व्याख्या

जनस्य प्रेक्षकलोकस्य दृष्टिः चित्रे उल्लिखितस्याश्ववारस्याश्वारोहिण इव दृढमासनं यस्य स तस्मिन् तत्र विक्रमाङ्कदेवे निपत्य सम्भ्रमाद् गत्वा भ्रान्ताऽपूर्वसौन्दर्यदर्शनाश्चर्यचकिता सती इतस्ततस्तत्रैव गता तुरङ्गस्याश्वस्य भ्रमिरावर्तभ्रमणं तस्य पृष्ठे लग्ना सङ्गता अतएव श्रमादिव वस्तुतस्त्वपूर्वसौन्दर्यदर्शनकौतुकादिवान्यत्र प्रदेशे गन्तुं नैच्छत्।

भाषा

प्रेक्षकों की नजर चित्र में खींचे घोड़सवार के समान दृढ आसन वाले राजा विक्रमाङ्कदेव पर पड, आश्चर्य से चकित होकर घोड़े के चौफेर घूमने के पीछे लगी हुई मानों थक जाने से अन्य स्थानों को देखने की इच्छा नहीं करती थी। अर्थात् सब प्रेक्षक आश्चर्य से विक्रमाङ्कदेव को और घोड़े की चाल को ही देखते रहे।

सञ्चारिणी मन्मथराजधानी लीलावनं विभ्रमपल्लवानाम् ।
अन्तःपुरं तस्य जगाम पृष्ठे परा प्रतिष्ठा रसनायकस्य ॥२९॥

अन्वयः

तस्य पृष्ठे सञ्चारिणी मन्मथराजधानी विभ्रमपल्लवानां लीलावनं रसनायकस्य परा प्रतिष्ठा अन्तःपुरं जगाम।

व्याख्या

तस्य विक्रमाङ्कदेवस्य पृष्ठे पृष्ठप्रदेशे सञ्चारिणी जङ्गमा मन्मथराजधानी कामपुरी स्वरूपं, विभ्रमाः स्त्रीणां विलासा एव पल्लवास्तेषां लीलावनं क्रीडारण्य-मुद्यानमित्यर्थः। रसनायकस्य कामस्य परा प्रतिष्ठा परं पदमन्तःपुरमन्तःपुरस्थः स्त्रीसमूहः जगाम प्रस्थिताः मृगयालीलादर्शनार्थमिति । अत्र रूपकालङ्कारः ।

भाषा

उस राजा विक्रमाङ्कदेव के पीछे २ जगम कामदेव की राजधानी स्वरूप, स्त्रियो के विलास रूपी पत्तो वाला लीलावन-स्वरूप कामदेव का परम पद स्वरूप, अन्त पुर की स्त्रियो का समूह चलता था ।

वाराङ्गनास्तस्य तुरङ्गमेषु भ्रूकार्मुकारूढकटाक्षबाणाः ।
विरेजिरे दिग्विजयोद्यतस्य सेना इवानङ्गनराधिपस्य ।।३०।।

अन्वयः

तुरङ्गमेषु भ्रूकार्मुकारूढकटाक्षबाणाः तस्य वाराङ्गनाः दिग्विजयोद्यतस्य अनङ्गनराधिपस्य सेनाः इव विरेजिरे ।

व्याख्या

तुरङ्गमेष्वश्वेषु "तुरङ्गाश्वतुरङ्गमाः" इत्यमरः । भ्रुवावेव कार्मुकं धनुः "धनुश्चापौधन्वशरासनकोदण्डकार्मुम्" इत्यमरः । तस्मिन्नारूढाः कृतसन्धानाः कटाक्षा एव बाणा यासान्ताः तस्य विक्रमाङ्कदेवस्य वाराङ्गनाः गणिकाः "वारस्त्री गणिका वेश्या" इत्यमरः । दिक्षु विजयायोद्यतस्याऽनङ्गनराधिपस्य कामदेवनृपस्य सेना इव विरेजिरे शोभां चक्रिरे । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

भाषा

घोडो पर सवार राजा विक्रमाङ्कदेव की, भौ रूपी धनुष पर कटाक्ष रूपी बाणो को चढाए हुई वेश्याएँ मानो दिग्विजय करने के लिए सन्नद्ध कामदेव राजा की पलटनें ही हो ऐसी शोभित होती थी ।

पापर्द्धिलीलासरसीमरालाः कृतान्तदूता मृगपोतकानाम् ।
हिंसाकटाक्षा इव चित्रवर्णाः श्वानः प्रसस्रुः पुरतस्तदीयाः ।।३१।।

अन्वयः

पापर्द्धिलीलासरसीमरालाः मृगपोतकानां कृतान्तदूताः तदीयाः चित्रवर्णाः श्वानः पुरतः हिंसाकटाक्षाः इव प्रससुः ।

व्याख्या

पापानामेनसां "पापं किल्विषकल्मषम् । कलुषं वृजिनैनोघम्" इत्यमरः । ऋद्धिस्सम्पत्तिरेव मृगयैवेत्यर्थः, लीलासरसी क्रीडातडागस्तस्याः मराला हंसाः मृगाणां हरिणानां पोतकाः शिशवः "पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः" इत्यमरः । कृतान्तदूताः कृतान्तस्य "कृतान्तो यमुनाभ्राता शमनो यमराड्यमः" इत्यमरः । यमराजस्य दूताः संहारकाः इत्यर्थः । तदीयास्तस्य विक्रमाङ्कदेवस्य सम्बन्धिनः चित्रवर्णा नानावर्णयुक्ताः श्वानः सारमेयाः "कौलेयकः सारमेयः कुक्कुरो मृगदंशकः । शुनको भषकः श्वा स्यात्" इत्यमरः । पुरतोऽग्रे हिंसायाः मूर्तिमत्याः कटाक्षाः अपाङ्गदर्शनानि "अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ कटाक्षोऽपाङ्गदर्शने" इत्यमरः । इव प्रसस्रुः चेलुः ।

भाषा

पाप की समृद्धि रूप मृगया रूपी तलाव के राजहस, हिरणों के बच्चो के लिए यमराज के दूत, राजा विक्रमाङ्कदेव के रगबिरंगी कुत्ते आगे आगे हिसा की तिरछी नजर के समान दौडते थे ।

त्रैलोक्यलङ्घनकुतूहलिना हयेन
देवः कियन्तमपि मार्गमसौ विलङ्घ्य ।
कर्णान्तसङ्कटितनेत्रपुटो ददर्श
व्यालोलमत्तहरिणानि वनान्तराणि ॥३२॥

अन्वयः

असौ देवः त्रैलोक्यलङ्घनकुतूहलिना हयेन कियन्तम् अपि मार्गं विलङ्घ्य कर्णान्तसङ्कटितनेत्रपुटः (सन्) व्यालोलमत्तहरिणानि वनान्तराणि ददर्श ।

व्याख्या

असौ देवः विक्रमाङ्कदेवः त्रैलोक्यस्य त्रिभुवनस्य लङ्घनेऽतिक्रमणे कुतूहलमस्त्यस्येति त्रैलोक्यलङ्घनकुतूहली तेन हयेनाऽश्वेन कियन्तमपि किञ्चित्प्रमाणमपि

मार्गं पन्थानं विलङ्घ्याऽतिक्रम्य कर्णयोः श्रोत्रयोरन्तौ प्रान्तभागौ तयोः संघटते संप्रापिते नेत्रयोः पुटे सम्पुटितस्वरूपे यस्य स एवम्भूतस्सन् व्यालोलाश्चञ्चला मत्ता मदान्धा हरिणा मृगा येषु तानि वनान्तराण्यनेकान् वनप्रदेशान् ददर्श दृष्टवान् । अतः परं वसन्ततिलकाच्छन्दः । "उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग." । इति लक्षणात् ।

भाषा

इस विक्रमाङ्कदेव ने, तीनों लोको को लाँघ जाने का कुतूहल रखने वाले घोडे पर बैठकर कुछ रास्ता पार कर, कानो तक अपने नेत्रो को फैलाते हुए अर्थात् चौकन्ने होकर चञ्चल और मदान्ध जानवरों से भरे अनेक जगलो को देखा ।

सार्धं प्रियेण कियतापि परिग्रहेण
स प्राविशद्विशदकीर्तिकृतावतंसः ।
नीरन्ध्रनीलनिचुलप्रचुरच्छदालि-
प्रच्छादितार्ककिरणासु गिरिस्थलीषु ॥३३॥

अन्वयः

विशदकीर्तिकृतावतंसः सः प्रियेण कियता अपि परिग्रहेण सार्धं नीरन्ध्रनीलनिचुलप्रचुरच्छदालिप्रच्छादितार्ककिरणासु गिरिस्थलीषु प्राविशत् ।

व्याख्या

विशदाभिर्धवलाभिः कीर्तिभिः कृतो विरचितोऽवतंस. कर्णभूषणं भूषणं वा येन सः विशदकीर्तिकृतावतंस. स विक्रमाङ्कदेवः प्रियेण कान्तेन कियतापि किंचित्प्रमाणेनाल्पसंख्यकेनेत्यर्थः । परिग्रहेण परिजनेन परिवारजनेन वा सार्धं सह "सार्धं सत्रा समं सह" इत्यमरः । नीरन्ध्राः छिद्ररहिता घना इत्यर्थः । नीलाः श्यामलाः निचुलवृक्षा वेतसद्रुमाः "निचुलो हिज्जलोऽम्बुजः" इत्यमरः । तेषां प्रचुरा बहुलाः छदाः पत्राणि "दलं पर्णं छदः पुमान्" इत्यमरः । तेषामालिः पङ्क्तिः तया प्रच्छादिताः संवृता अर्कस्य सूर्यस्य किरणा यासु ताः तासु गिरिस्थलीषु पर्वतस्थलीषु प्राविशदभ्यन्तरं जगाम ।

भाषा

श्वेतकीर्ति के आभूषण वाले राजा विक्रमाङ्कदेव ने कुछ प्यारे नौकरों या आत्मीयों के साथ घने नीले बेंत के अधिक पत्तों की पङ्क्ति से सूर्य के किरणों को रोकने वाली पर्वतस्थलिओ मे प्रवेश किया।

देवस्य विक्रमनिधेरथ सूकराणां
शैलानुकारिकरिणामिव चक्रवालम्।
स्निग्धद्वराहगृहिणीपरिचुम्ब्यमान-
मुस्तासुगन्धिमुखबालकमाविरासीत् ॥३४॥

अन्वयः

अथ विक्रमनिधेः देवस्य (पुरस्तात्) स्निग्धद्वराहगृहीणीपरिचुम्ब्यमानमुस्तासुगन्धिमुखबालकं शैलानुकारिकरिणाम् इव सूकराणां चक्रवालम् आविरासीत्।

व्याख्या

अथेत्यनन्तरं विक्रमनिधेः पराक्रमशालिनो देवस्य विक्रमाङ्कदेवस्य पुरस्तादग्रे स्निह्यन्त्य. वात्सल्यभावं प्रदर्शयन्त्यः वराहाणां गृहिण्यः पत्न्यस्ताभिः परिचुम्ब्यमानानि मुस्तासुगन्धीनि "मुस्ता मुस्तकमस्त्रियाम्" इत्यमरः। मुखानि येषान्ते बालका लघुवराहाः यस्मिन्तत् शैलमनुकुर्वन्तीति शैलानुकारिणः शैलानुकारिणश्च ते करिण स्तेषां पर्वतसदृशहस्तिनामिव सूकराणां वराहाणां "वराहः सूकरो घृष्टि" इत्यमरः। चक्रवालं समूह आविरासीत् प्रादुर्बभूव।

भाषा

इसके अनन्तर पराक्रमशील राजा विक्रमाङ्कदेव के सन्मुख प्रेमभरी शूकरियों से चुम्बित मोथे की सुगन्ध से भरे मुखवाले सूअर के बच्चो से युक्त पर्वत के ऐसे बडे २ हाथियो के समान सूअरो का झुण्ड प्रकट हुआ।

गत्वा पदानि कतिचित्पुरतः सगर्वं
पृष्ठस्थितान्प्रति मुहुः प्रतिपालयन्तम्।
बाणेन तत्र करिपोवरदेहमेकं
कक्षान्तरे क्षितिपतिः क्षपयाञ्चकार ॥३५॥

अन्वयः

तत्र क्षितिपतिः सगर्वं कतिचित् पदानि पुरतः गत्वा पृष्ठस्थितान् प्रति मुहुः प्रतिपालयन्तं करिपीवरदेहम् एकं बाणेन कक्षान्तरे क्षपयाञ्चकार ।

व्याख्या

तत्र वनान्तरे क्षितिपतिः पृथ्वीपतिर्विक्रमाङ्कदेवः गर्वेण दर्पेण सहितं सगर्वं यथास्यात्तथा कानिचित्कियन्ति पदानि पुरतः गत्वा पृष्ठे पृष्ठप्रदेशे स्थितान् वराहान् प्रति मुहुः वारम्वारं प्रतिपालयन्तं स्वयूथात्पृष्ठे वर्तमानान् वराहान् यूथस्थले प्राप्त्यै प्रतीक्षमाणं करिवत् गजवत् पीवरः स्थूलो देहो यस्य स तमेकं वराहं बाणेन शरेण कक्षान्तरे बाहुमूलमध्ये क्षपयाञ्चकार जघान ।

भाषा

उस वनस्थली में राजा विक्रमाङ्कदेव ने, गर्व के साथ कुछ पांव आगे बढ़कर और झुण्ड में पीछे आनेवाले सूअरों की बार बार प्रतीक्षा करने वाले, हाथी के समान मोटे शरीर के एक सूअर को बाहुमूल में मारा ।

केचिन्निपेतुरवनौ सह मार्गणेन
मार्गं कियन्तमपि केऽपि गताः सशल्याः ।
चेरुः कठोरशरघोरणिपातभीत्या
शैलस्थलीषु विषमासु परे वराहाः ॥३६॥

अन्वयः

केचित् मार्गणेन सह अवनौ निपेतुः सशल्याः के अपि कियन्तम् अपि मार्गं गताः परे वराहाः कठोरशरधोरणिपातभीत्या विषमासु शैलस्थलीषु चेरुः ।

व्याख्या

केचिद्वराहाः मार्गणेन बाणेन "कलम्बमार्गणशराः" इत्यमरः । सहाऽवनौ भूमौ "क्ष्मावनिर्मेदिनी मही" इत्यमरः । निपेतुः । यस्मिन्समये शरो वराहं निहत्य तस्य देहं भित्वा च पृथिव्यां पपात तस्मिन्नेव काले वराहोऽपि पपात भूमौ इति भावः । शल्येन सहितास्सशल्याः शङ्कुसहिताः केऽपि कियन्तमपि मार्गं गताः, ततः भूमौ पतिता मृताः, परेऽन्ये वराहाः कठोराणां तीक्ष्णानां शराणां

धोरणिः परम्परा तस्याः पातभीत्या पातभयेन विषमासूच्चावचासु शैलस्थलीषु पर्वतस्थलीषु वेगः जग्मुः ।

भाषा

कुछ सूअर बाण के साथ ही जमीन पर गिर पड़े अर्थात् मर गए । कुछ गड़े बाण के साथ कुछ दूर चले अर्थात् चलकर गिर पडे और मर गए । दूसरे कठोर बाणों की परम्परा के गिरने के अर्थात् लगने के भय से नीची ऊंची पर्वतस्थली मे भाग गए ।

विपर्ययं पूर्वकथाद्भुतस्य चालुक्यभूपालशरश्चकार ।
पपात यन्नष्टधृतिर्वराहस्तं विह्वलाङ्गं वसुधा बभार ॥३७॥

अन्वयः

चालुक्यभूपालशरः पूर्वकथाद्भुतस्य विपर्ययं चकार यत् नष्टधृतिः वराहः पपात वसुधा विह्वलाङ्गं तं बभार ।

व्याख्या

चालुक्यभूपालस्य विक्रमाङ्कदेवस्य शरो बाणः पूर्वा पूर्वकाले प्रसिद्धा कथाऽऽ-विवराहो भूमिं बन्तेनोवाहेति । तस्या अद्भुतो विषयस्तस्य विपर्ययं वैपरीत्यं प्राति-कूल्यं चकार यद्यस्मात्कारणात् नष्टा गता धृतिर्धैर्यं यस्य स वराहः कोलः पपात वसुधा पृथ्वी विह्वलानि शरव्यथया व्याकुलान्यङ्गानि शरीरावयवा यस्य स तं वराहं बभारोवाह । पूर्वं तु वराह एव भूमिं बभारेदानीं तु वैपरीत्यं जातमित्या-श्चर्यहेतुः । अत्र उपजातिश्छन्दः ।

भाषा

चालुक्यवंशीय राजा विक्रमाङ्कदेव के बाण ने पूर्वकाल मे प्रसिद्ध वराह द्वारा उठाई गई पृथ्वी की कथा के विषयको पलट दिया । क्योकि कि धैर्य से रहित जो सूअर पृथ्वी पर गिर पडता था उस विकल शरीर सूअर को पृथ्वी धारण करती थी । अर्थात् पूर्वकाल में आदिवराह ने पृथ्वी को धारण किया था अब पृथ्वी ही वराह को धारण करती है यह विक्रमाङ्कदेव के बाण ने नई स्थिति उत्पन्न कर दी ।

क्रोडः सक्रीडमेतेन तरौ नाराचकीलितः ।
लीलामालानबद्धस्य दध्रे मुग्धस्य दन्तिनः ॥३८॥

अन्वयः

एतेन तरौ सक्रीडं नाराचकीलितः क्रोडः आलानबद्धस्य मुग्धस्य दन्तिनः लीलां दध्रे।

व्याख्या

एतेन विक्रमाङ्कदेवेन तरौ वृक्षे सक्रीडं सविलासं यथास्यात्तथा नाराचैर्बाणैः "प्रक्ष्वेडनास्तु नाराचाः" इत्यमरः। कीलितो विद्धो प्रत्युप्तश्च क्रोडो वराहः "वराहः सूकरो घृष्टिः कोलः" इत्यमरः। आलाने गजबन्धनस्तम्भे "आलानं बद्धस्तम्भेऽथशृङ्खला" इत्यमरः। बद्धस्तस्य मुग्धस्य कार्याकार्यविकलस्य दन्तिनः हस्तिनः लीलां लीलासदृशीं लीलां चरितं दध्रे कृतवान्। अत्र निदर्शनालङ्कारः। अत्राऽनुष्टुप् छन्दः।

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव द्वारा खेलवाड़ मे अपने बाण से पेड़ मे जड दिया गया हुआ सूअर गजबन्धन-स्तम्भ मे बाँधे हुए किंकर्त्तव्यता विमूढ हाथी की हालत को प्राप्त हुआ।

श्वा निर्गतः कनकशृङ्खलया सहैव
कोपान्निरीक्ष्य विशतो गहने वराहान्।
रुद्धस्तया विटपिकण्टककीलकेषु
साक्रन्दकण्ठकुहरो मुहुरुत्पफाल ॥३९॥

अन्वयः

कनकशृंखलया सह एव निर्गतः श्वा कोपात् गहने विशतः वराहान् निरीक्ष्य तया विटपिकण्टककीलकेषु रुद्धः (सन्) साक्रन्दकण्ठकुहरः मुहुः उत्पफाल।

व्याख्या

कनकस्य स्वर्णस्य शृङ्खला कण्ठबद्धा रज्जुस्तया सहैव निर्गतः स्वस्थानान्निसृतः श्वा कुक्कुरः कोपात् क्रोधात् गहने वने विशतः प्रवेशं कुर्वतो वराहान् निरीक्ष्य दृष्ट्वा तया सुवर्णशृङ्खलया विटपिनां वृक्षाणां "विटपी पादपस्तरुः" कण्टकरूपकीलकेषु रुद्धः प्रतिबद्धस्सन् साक्रन्दः सशब्दः कण्ठकुहरो गलबिलं यस्य स यथा स्यात्तथा मुहुर्वारम्वारमुत्पफाल उत्पतति स्म। अतः परं वसन्ततिलकाच्छन्दः।

भाषा

घने जंगल में घुसने वाले सूअरो को देखकर क्रोध से गले में बंधी सोने की सिकड़ी समेत दौड़ पडा हुआ कुत्ता, पेड़ के काटे रूपी कील में सिकड़ी फंस जाने से आगे पीछे जाने में असमर्थ होकर रोते हुअे गले से बार-बार उछलने लगा।

रुद्धं विलोक्य हरिणं हरिणी गतापि
व्यावृत्य बाणविषये नृपतेश्चचार।
प्रायेण देहविरहादपि दुःसहोऽयं
सर्वाङ्गसंज्वरकरः प्रियविप्रयोगः ॥४०॥

अन्वयः

हरिणी हरिणं रुद्धं विलोक्य गता अपि व्यावृत्य नृपतेः बाणविषये चचार। प्रायेण सर्वाङ्गसंज्वरकरः अयं प्रियविप्रयोगः देहविरहात् अपि दुःसहः।

व्याख्या

हरिणी मृगी हरिणं मृगं रुद्धं बाणघाताय प्रतिरुद्धं विलोक्य शरणस्थानगमनायोग्यं वीक्ष्य गताऽप्यन्यस्थानं शरणं यातापि व्यावृत्य परावृत्य नृपतेः विक्रमाङ्कदेवस्य बाणविषये शरगोचरे चचारागतवती। प्रायेण बाहुल्येन सर्वाङ्गेषु संज्वरस्य सन्तापस्य करः सम्पादकोऽयं प्रियस्य पत्युर्विप्रयोगः विरहः देहस्य विरहात् मरणापेक्षयापि दुःसह दुःखेन सोढुं शक्यः भवतीत्यर्थः। अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कार ।

भाषा

हरिणी, हरिण को फँसा हुआ देख कर भी अर्थात् अब बाण लग कर वह मरेगा ही ऐसा ममझ कर भी लौट कर राजा के बाण के निशाने के आगे आकर चरने लगी। प्राय: सम्पूर्ण शरीर के अवयवो में ज्वर अर्थात् पीड़ा उत्पन्न कर देने बाला यह पतिवियोग मर जाने से भी अधिक दु खद होता है।

उड्डीय केऽपि निबिडीकृतचापदण्डे
चालुक्यभूभुजि गता गगनं कुरङ्गाः।
सप्तर्षिमण्डलसमीपमिव प्रविश्य
निर्बाधमाश्रममृगत्वमवाप्तुकामाः ॥४१॥

अन्वयः

चालुक्यभूभुजि निबिडीकृतचापदण्डे (सति) के अपि कुरङ्गाः उड्डीय सप्तर्षिमण्डलसमीपं प्रविश्य निर्बाधम् आश्रममृगत्वम् अवाप्तुकामाः इव गगनं गताः ।

व्याख्या

चालुक्यदेशस्य भूभुजि नृपे विक्रमाङ्कदेवे निबिडीकृतचापदण्डे आकृष्ट-कार्मुके सति केऽपि कुरङ्गाः मृगाः उड्डीयोत्प्लुत्य सप्तर्षिमण्डलसमीपं प्रविश्य निर्बाधं भयरहितमाश्रमस्य मृगत्वं हरिणत्वमवाप्तुं प्राप्तुं कामो येषान्ते अवाप्तु कामा इव गगनमाकाशं गताः । उत्प्रेक्षालङ्कारः ।

भाषा

चालुक्यदेश के राजा विक्रमाङ्कदेव के द्वारा धनुष तान लिये जाने पर कुछ मृग छलाग मारकर आकाश मे उछल पड़े मानो सप्तर्षि मण्डल के समीप में पहुँच कर वे अपने को भयरहित आश्रम मृग बनाना चाहते हों । राजा लोग आश्रम के मृगों की शिकार नही करते थे ऐसी प्रसिद्धि है ।

स्वयमस्य पयोदवारिधारा-भ्रममासाद्य पृषत्कधोरणीषु ।
शरगोचरमागतो मयूरश्छलितो दिव्यपयोदुराग्रहेण ॥४२॥

अन्वयः

मयूरः अस्य पृषत्कधोरणीषु स्वयं पयोदवारिधाराभ्रमम् आसाद्य दिव्यपयोदुराग्रहेण छलितः शरगोचरम् आगतः ।

व्याख्या

मयूरः बर्ही "मयूरो बर्हिणो बर्ही" इत्यमरः । अस्य विक्रमाङ्कदेवस्य पृषत्कानां बाणानां धोरणीषु परम्परासु स्वयं पयोदस्य मेघस्य वारिधाराया जलधाराया भ्रमं भ्रान्तिमासाद्य प्राप्य दिव्यं गगनगतं पयो जलं तस्य दुराग्रहेण प्रीत्या छलितस्सन् शरगोचरं बाणविषयमागतः प्राप्तः । अत्र औपच्छंदसिकं वृत्तम् । तल्लक्षणं 'पर्यन्तेर्यो तथैव शेषमौपच्छन्दसिकं सुधीभिरुक्तम् ।' अत्र भ्रान्तिमदलङ्कारः ।

भाषा

मोर, विक्रमाङ्कदेव की बाणों की वृष्टि से स्वय मेघ की वृष्टि का भ्रम प्राप्त कर आकाश से गिरने वाले पानी को पीने के दुराग्रह से वञ्चित होकर

बाण का निशाना बन गया। अर्थात् बाण लग जाने से मर गया। मोर सदैव बादल से गिरने वाली बूंदों को ही पीकर प्रसन्न होते हैं ऐसी प्रसिद्धि है।

स चकार शिखण्डिमण्डलानां नृपतिस्तत्र तथा यथा बभूव।
पथिकप्रमदासु कोमलाज्ञः कलकेकाविकलः पयोदकालः ॥४३॥

अन्वयः

तत्र सः नृपति शिखण्डिमण्डलानां तथा चकार यथा कलकेकाविकलः पयोदकालः पथिकप्रमदासु कोमलाज्ञः बभूव।

व्याख्या

तत्र वने स नृपतिर्विक्रमाङ्कदेवः शिखण्डिमण्डलानां मयूरसमूहानां तथा वृत्तान्तं चकार यथा कलकेका मधुरमयूरवाणी तया विकलः रहितः पयोदकालः मेघसमयः पथिकप्रमदासु पथिकस्त्रीषु कोमला शिथिलाऽऽज्ञाऽऽदेशो यस्य सः कोमलाज्ञः प्रतिहताज्ञो बभूव। असंख्यमयूरा हता इति भावः। अत्राप्यौपच्छन्दसिकं वृत्तम्।

भाषा

उस जंगल में राजा विक्रमाङ्कदेव ने मयूरसमूहों का वह हाल किया अर्थात् इतने अधिक मोरों को मारा जिससे मोर की बोली से रहित वह वर्षाकाल प्रोषितभर्तृकाओं के लिये शिथिल आदेश वाला हो गया। अर्थात् मयूरों की केका न सुनाई पड़ने से वियोगिनिओं को वर्षाऋतु में भी कामजनित असह्य पीडा न हुई।

स्वेच्छाविहाररसिकस्य वनस्थलीषु
काकुत्स्थतः किमपि तस्य लघुत्वमासीत्।
यस्माद्दशाननजयी रघुराजपुत्रः
पञ्चाननं तु निजघान चुलुक्यवीरः ॥४४॥

अन्वयः

वनस्थलीषु स्वेच्छाविहाररसिकस्य तस्य काकुत्स्थतः किम् अपि लघुत्वम् आसीत्। यस्मात् रघुराजपुत्रः दशाननजयी चुलुक्यवीरः तु पञ्चाननं निजघान।

व्याख्या

वनस्थलीष्वरण्यस्थलीषु स्वेच्छाविहारे स्वच्छन्दक्रीडायां रसिकः प्रेमयुक्तः तस्य विक्रमाङ्कदेवस्य काकुत्स्थतः रामापेक्षया किमपि लघुत्वं हीनत्वमासीत्। यस्मात् यतः रघुराजस्य दशरथस्य पुत्रः रामः दशाननस्य रावणस्य जयी विजयकर्ता चुलुक्यवीरस्तु विक्रमाङ्कदेवस्तु पञ्चाननं सिंहं निजघान हतवान्। अत्र वसन्ततिलकाच्छन्दः व्याजोक्तिरलङ्कारश्च।

भाषा

वनस्थलियो मे स्वच्छन्द विहार करने के रसिक उस विक्रमाङ्कदेव की श्री रामचन्द्र की तुलना में कुछ न्यूनता थी। क्योंकि रामचन्द्र दस मुख वाले का विजयी हुआ था और इस चालुक्य वीर ने तो पांच मुख वाले को मारा अर्थात् रामचन्द्र ने दशमुख रावण को मारा था किन्तु इसने पाच मुख वाले को अर्थात् शेर को मारा।

अपि शरधिविकृष्टैश्चिच्छिदे कङ्कपत्रै-
　　र्निकटमपि न रोहिद्गर्भिणीचक्रवालम्।
स्मरणसरणिमागाद्गर्भभारालसानां
　　विलसितमबलानां यद्बलाद्भूमिभर्तुः ॥४५॥

अन्वयः

शरधिविकृष्टैः अपि कङ्कपत्रैः निकटम् अपि रोहिद्गर्भिणीचक्रवालं न चिच्छिदे। यत् गर्भभारालसानाम् अबलानां विलसितं भूमिभर्तुः स्मरणसरणिं बलात् आगात्।

व्याख्या

शरधेस्तूणीरात् विकृष्टैराकृष्टैरपि कङ्कपत्रैर्बाणविशेषैः निकटमपि रोहिद्गर्भिणीचक्रवालं रोहितां मृगविशेषाणां गर्भिण्यस्तासां चक्रवालं समूहं न चिच्छिदे बिभिदे। यत् यतः गर्भभारेणालसानामालस्ययुक्तानामबलानां स्त्रीणां विलसितं चेष्टितं भूमिभर्तुर्विक्रमाङ्कदेवस्य स्मरणसरणिं स्मृतिपथं बलात् हठादागात् प्राप्नोत्। अस्मिन् श्लोके मलिनीच्छन्दः। "ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः" इति लक्षणात्।

भाषा

तरकस में से खीच कर बाहर निकाल लिये हुए भी बाणो से मृग विशेष की गर्भिणी मृगियो के झुण्ड को पास में आने पर भी राजा विक्रमाङ्कदेव ने नहीं मारा। क्योकि गर्भ के बोझ से आलस्ययुक्त गर्भिणी स्त्रियो की हालत राजा विक्रमाङ्कदेव के स्मृतिपथ में अचानक आ गई।

किं वा बहुप्रलपितैरवराहयूथ-
मुत्सन्नकेसरि कदर्थितरङ्कुसार्थम्।
कुर्वन्नरण्यमुपसृत्य निषेव्यते स्म
तत्रैव कुन्तलपतिः शिशिरश्रियापि ॥४६॥

अन्वयः

बहुप्रलपितैः किम् वा, अरण्यम् अवराहयूथम् उत्सन्नकेसरि कदर्थितरङ्कुसार्थम् कुर्वन् कुन्तलपतिः तत्र एव शिशिरश्रिया अपि उपसृत्य निषेव्यते स्म।

व्याख्या

बहुप्रलपितैः किं वा बहुभाषितैः किम्वाऽरण्यं नास्ति वराहयूथो वराहसमूहो यस्मिन्तदवराहयूथं वराहसमूहरहितमुत्सन्नाः विनाशिताः केसरिणः यस्मिंस्तत् कदर्थिताः मारिताः रङ्कूणां मृगाणां "रङ्कुशम्बररौहिषाः" इत्यमरः। सार्थाः समूहाः यस्मिंस्तत् कुर्वन् कुन्तलपतिः विक्रमाङ्कदेवः तत्रैव अरण्ये एव शिशिरश्रिया शिशिरकालस्य शोभया लक्ष्म्या अप्युपसृत्य प्राप्य निषेव्यते स्म सुष्ठु संसेवितः। अतः परं वसन्ततिलकाच्छन्दः।

भाषा

अथवा बहुत अधिक कहने से क्या लाभ। जगल को सूअरों की झुण्ड से रहित, मारे गए सिंहो वाला और नष्ट किये हुए रङ्कु मृगों के झुण्डों वाला बनाकर राजा विक्रमाङ्कदेव वही पर प्राप्त शिशिर ऋतु की शोभा से सेवित हुआ। अर्थात् मृगया करते करते शिशिर ऋतु का आविर्भाव होगया।

यत्सुभ्रुवां घुसृणलेपकवोष्णमङ्गं
यद्यौवनोष्ममधुराणि कुचस्थलानि।

कामस्य तत्सकलकामुकयामिकस्य
श्यामासु जीवितमजायत शैशिरीषु ॥४७॥

अन्वयः

यत् सुभ्रुवां घुसृणलेपकवोष्णम् अङ्गं यत् यौवनोष्ममधुराणि कुचस्थलानि तत् सकलकामुकयामिकस्य कामस्य शैशिरीषु श्यामासु जीवितम् अजायत ।

व्याख्या

यत् सुभ्रुवां स्त्रीणां घुसृणस्य कुङ्कुमस्य लेपेन कवोष्णमीषदुष्णं "कोष्णं कवोष्णं मन्दोष्णं" इत्यमरः । अङ्गं यच्च यौवनस्योष्मा तेजस्तेन मधुराणि मनोहराणि कुचस्थलानि स्तनमण्डलानि तत् सकलं सकलानां कामुकानां कामिजनानां यामिकः प्राहरिकः नियन्तेत्यर्थः । तस्य कामस्य मदनस्य शैशिरीषु शिशिरकालगतासु श्यामासु रात्रिषु शैत्यप्रधानासु जीवितं कामतृष्णोत्पादकमजायत ।

भाषा

सुन्दर भौवो वाली कामनियों का केसर के लेप से कुछ गरम शरीर, जवानी की गर्मी से प्रिय लगने वाले कुच स्थल, ये समग्र कामियों के पहरेदार कामदेव का शिशिर ऋतु की ठंडी रातो में जीवन था । जाड़ों मे रात्रि में आग की गर्मी से सर्व साधारण अपना जीवन बचाते ही हैं । कामदेव के ये जीवन-आधार थे अर्थात् ये दोनों कामोद्रेक करने वाले थे ।

शुभ्रेषु राङ्कवपटेषु हसन्तिकासु
लीलाहसन्मलयजेन्धनपावकासु ।
कृष्णागुरुज्वलनधूमशिखासु चासीत्
त्रैलोक्यकामुकजयी मदनप्रतापः ॥४८॥

अन्वयः

शुभ्रेषु राङ्कवपटेषु लीलाहसन्मलयजेन्धनपावकासु हसन्तिकासु कृष्णागुरुज्वलनधूमशिखासु च मदनप्रतापः त्रैलोक्यकामुकजयी आसीत् ।

व्याख्या

शुभ्रेषु शुक्लेषु राङ्कवपटेषु मृगरोमजकम्बलेषु "राङ्कवं मृगरोमजम्" इत्यमरः। लीलया हसन् विलसन् मलयजेन्धनस्य चन्दनकाष्ठस्य पावकोऽग्निर्यासु तास्तासु हसन्तिकास्वङ्गारशकटीषु "अङ्गारधानिकाङ्गारशकट्यपि हसन्त्यपि" इत्यमरः। कृष्णागुरुज्वलनस्य कृष्णागुरुवह्नेः धूमशिखासु धूपधूमाग्रपरम्परासु च मदनप्रतापः कामप्रतापः त्रैलोक्यस्य कामुकाः कामिनः तेषां जयी विजयकर्ताऽऽसीत्। अत्र पर्यायाऽलङ्कारः।

भाषा

सफेद रङ्कुसंज्ञक मृगो के रोओ से बने कम्बलों में, लीलापूर्वक सुलगी चन्दन की लकड़ी की आग से युक्त बोरसियो मे और कस्तूरी और अगर के धूप के अग्रभागों मे कामदेव का प्रताप तीनों लोको के कामुको पर विजय प्राप्त करने वाला था।

अङ्गारहासिषु विलासगृहोदरेषु
तल्पेषु तूलपटकल्पितवेष्टनेषु।
उष्णेषु च प्रणयिनीकुचमण्डलेषु
शान्तिं जगाम शिशिरस्य तुषारगर्वः ॥४६॥

अन्वयः

अङ्गारहासिषु विलासगृहोदरेषु तूलपटकल्पितवेष्टनेषु तल्पेषु उष्णेषु प्रणयिनीकुचमण्डलेषु च शिशिरस्य तुषारगर्वः शान्तिं जगाम।

व्याख्या

अङ्गाराणां ज्वलदग्नीनां हासा हसन्तिकाः येषु तेषु विलासस्य गृहोदरेषु क्रीडागृहमध्येषु तूलपटैः कर्पटैः कल्पितानि रचितानि वेष्टनान्याच्छादनानि येषां तानि तेषु तल्पेषु शय्यासु "तल्पं शय्याट्टदारेषु" इत्यमरः। उष्णेषु प्रणयिनीनां विलासिनीनां कुचमण्डलानि स्तनसमूहास्तेषु च शिशिरस्य शिशिरकालस्य तुषारगर्वो हिमाभिमानः "तुषारस्तुहिनं हिमम्" इत्यमरः। शान्तिं जगाम शैथिल्यं प्राप।

भाषा

जलती हुई आग से युक्त बोरसी वाले क्रीडाघरो के मध्य में, मोटे कपड़ों के ओढनों से युक्त बिस्तरो में और कामिनिओ की गरम कुचस्थलियों में शिशिर-

ऋतु का सर्दी का अभिमान शान्त हो गया। अर्थात् इन तीनो की उपस्थिति में शीत जन्य पीड़ा नही होती थी।

गात्रेषु सौष्ठवकृता मृगयाश्रमेण
　　श्यामाभिरुल्लिखितमन्मथविस्तराभिः।
आलिङ्गनैश्च सुदृशामनुरञ्जितोऽसौ
　　सर्वर्तुगोत्रतिलकं शिशिरं विवेद ॥५०॥

अन्वयः

असौ गात्रेपु सौष्ठवकृता मृगयाश्रमेण उल्लिखितमन्मथविस्तराभिः श्यामाभिः सुदृशां आलिङ्गनैः च अनुरञ्जितः शिशिरं सर्वर्तुगोत्रतिलकं विवेद।

व्याख्या

असौ विक्रमाङ्कदेवः गात्रेषु शरीरावयवेषु सौष्ठवं स्वास्थ्यं लाघवं करोतीति सौष्ठवकृत् तेन मृगयायाः श्रमः परिश्रय. तेनोल्लिखितो वर्द्धितो मन्मथस्य कामक्रीडाया विस्तरो विशालता याभिस्तास्ताभिः श्यामाभिः रात्रिभिः सुदृशां कामिनीनां आलिङ्गनैश्चाऽनुरञ्जितः प्रसादितस्सन् शिशिरकालं सर्वर्तुगोत्रतिलकं सकलर्तुषु श्रेष्ठं विवेद ज्ञातवान्।

भाषा

विक्रमाङ्कदेव ने शरीर के अवयवो में लघुता और स्वास्थ्य देने वाले मृगया के श्रम के कारण, काम क्रीडा की विशालता को बढाने वाली बडी रातो के कारण और सुन्दर नयनो वाली कामिनिओ के आलिङ्गनो के कारण प्रसन्न होकर शिशिर ऋतु को सब ऋतुओ में श्रेष्ठ जाना।

गौरीविभ्रमधूपधूमपटलश्यामायमानोदराः
　　कण्ठच्छेदभयान्न ये कवलिताः श्रीकण्ठहारोरगैः।
स्फारोन्मीलितशारदागृहबृहद्द्वाराग्रघण्टारवा-
　　स्ते श्लाघामलभन्त कुन्तलपतेः कैलासशैलानिलाः ॥५१॥

अन्वयः

ये गौरीविभ्रमधूपधूमपटलश्यामायमानोदराः श्रीकण्ठहारोरगैः कण्ठक्षोदभयात् न कवलिताः स्फारोन्मीलितशारदागृहबृहद्द्वाराग्रघण्टारवाः ते कैलासशैलानिलाः कुन्तलपतेः श्लाघाम् अलभन्त ।

व्याख्या

ये गौरी पार्वती तस्याः विभ्रमधूपो विलासधूपः तस्य धूमपटलं तेन श्यामायमानान्युदराणि मध्यभागाः येषान्ते (पवनाः) श्रीकण्ठस्य शिवस्य हारभूताः कण्ठभूषणभूता उरगास्सर्पाः "उरगः पन्नगो भोगी" इत्यमरः । तैः कण्ठक्षोदः शैत्यात्कटुत्वाधिक्यात्कण्ठेषु क्षोदः क्षोभस्तस्य भयाद्भीत्या न कवलिताः न भक्षिताः, स्फारमत्यर्थमुन्मीलितो विस्तारं नीतः शारदागृहस्य काश्मीरसरस्वतीमन्दिरस्य बृहद्द्वाराग्रेषु स्थितानां घण्टानां रवो यैस्ते कैलासशैलस्यानिलाः कैलासपर्वतात्प्रवृत्ताः पवनाः कुन्तलपतेर्विक्रमाङ्कदेवस्य श्लाघां प्रशंसापात्रत्वमलभन्त गताः । अस्मिन् श्लोके शार्दूलविक्रीडितंच्छन्दः । तल्लक्षणम्—'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ स त त गाः शार्दूलविक्रीडितम् ।

भाषा

पार्वती के विलास भरे धूप के धूओ के समूह से बीच में काले रंग के, महादेव के हार रूपी सर्पों से कड़ुवा तथा ठंडा होने के कारण गले में ठसका उत्पन्न होने के भय से न खाए गए हुए, काश्मीर की शारदादेवी के मन्दिर के बड़े द्वार के आगे लटकाए घण्टो के शब्द को दूर-दूर तक फैलाने वाले उन कैलास पर्वत के वायुओ की कुन्तल देश के राजा विक्रमाङ्कदेव ने बड़ी प्रशसा की ।

स्पृष्टाः स्तोकं वितस्तातटतुहिनकणैः पीडयन्तः पयोष्णीं
चञ्चन्तश्चन्द्रभागालहरिषु यमुनावीचिमैत्रीपवित्राः ।
धुन्वानाः सिद्धसिन्धोरुभयतटगतां देवदारुद्रुमालीं
तस्य प्रीत्यै बभूवुस्तुहिनगिरितटीकेलिकाराः समीराः ॥५२॥

अन्वयः

वितस्तातटतुहिनकणैः स्तोकं स्पृष्टाः पयोष्णीं पीडयन्तः चन्द्रभागालहरिषु चञ्चन्तः यमुनावीचिमैत्रीपवित्राः सिद्धसिन्धोः उभयतटगतां देवदारुद्रुमालीं धुन्वानाः तुहिनगिरितटीकेलिकाराः समीराः तस्य प्रीत्यै बभूवुः ।

व्याख्या

वितस्ता नाम नदी तस्या तटं तस्य तुहिनकणाः हिमकणाः तैः स्तोकमल्पं "स्तोकाल्पक्षुल्लकाः श्लक्ष्णं" इत्यमरः। स्पृष्टाः पयोष्णीं नाम्नीं नदीं पीडयन्तः तया सह सम्मेलनं कुर्वाणाः ततः चन्द्रभागानदीलहरिषु चञ्चन्तः दोलायमानाः यमुनानद्या वीचीनां तरङ्गाणां मैत्री सम्बन्धस्तया पवित्राः शुद्धाः पूताः सिद्ध-सिन्धोर्गङ्गायाः उभयतटगतां तटयुगलस्थितां देवदारुद्रुमाणामालीं परम्परां धुन्वानाः कम्पयन्तः तुहिनगिरिः कैलासस्तस्य तटी तस्यां केलिं क्रीडां कुर्वन्तीति तुहिनगिरितटीकेलिकाराः समीराः विक्रमाङ्कदेवस्य प्रीत्यै प्रसन्नतायै बभुवुः जाताः। अस्मिन् श्लोके स्रग्धराच्छन्दः। तल्लक्षणम्—"म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।"

भाषा

वितस्ता नदी के तट के बरफ़ के कणो का थोड़ा स्पर्श करने वाले, पयोष्णी नदी को झकझोरने वाले, चन्द्रभागा नदी की लहरो पर बहने वाले, यमुना नदी की लहरो के सम्बन्ध से पवित्र, गङ्गा नदी के दोनो तटो के देवदारू वृक्षो की श्रेणी को जोर से हिलाने वाले, कैलास पर्वत के नितम्ब भाग में क्रीडा करने वाले वायुओ से विक्रमाङ्कदेव को प्रसन्नता हुई।

इति नरपतिः सार्धं दारैरुदारविचेष्टितः
शिशिरसमयश्लाघ्यक्रीडासुखान्यनुभूय सः।
नगरमगमल्लीलागारप्रमोदमुपासितुं
क्षणमपि कुतस्तादृक्षाणां विलासदरिद्रता॥५३॥

अन्वयः

उदारविचेष्टितः सः नरपतिः इति दारैः सार्धं शिशिरसमयश्लाघ्य-क्रीडासुखानि अनुभूय लीलागारप्रमोदम् उपासितुं नगरम् अगमत्। तादृक्षाणां विलासदरिद्रता क्षणम् अपि कुतः।

व्याख्या

उदाराणि महान्ति विचेष्टितानि कार्याणि शौर्यादीनि यस्य स नरपतिः विक्रमाङ्कदेव इति इत्थं प्रकारेण दारैः स्त्रीभिः "भार्या जायाऽथ पुंभूम्नि दाराः" इत्यमरः। सार्धं सह "सार्धं तु साकं सत्रा समं सह" इत्यमरः। शिशिरसमयस्य

श्लाघ्यानि प्रशंसनीयानि क्रीडासुखानि रतिक्रीडानन्दाननुभूयाऽनुभवं कृत्वा लीलागारस्य विलासगृहस्याऽऽनन्दमुपासितुं सेवितुं नगरं स्वराजधानीं कल्याणपुरमागमत् जगाम। तादृशाणां तादृशां पुण्यवतां विलासचरित्रता क्रीडावारित्रयं क्षणमपि कुतः कथम्भवति। भाग्यवतां विलाससुखसौभाग्यस्य प्राचुर्यं सर्वत्रेतिभावः। अस्मिन् श्लोके हरिणीच्छन्दः। नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता" इति लक्षणात्। अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः।

भाषा

बड़े बड़े शौर्य भरे कार्य करने वाला राजा विक्रमाङ्कदेव, इस प्रकार से भार्या के साथ शिशिर ऋतु के प्रशसनीय रतिक्रीडादि सुखो का अनुभव कर विलासगृह के आनन्दो का उपभोग करने के लिये अपनी राजधानी कल्याणपुर मे लौट आया। विक्रमाङ्कदेव की कोटि के मनुष्यो के लिये क्षण भर के लिये भी विलास सुख के सौभाग्य की कमी कहाँ अर्थात् कही नही है

इति श्री त्रिभुवनमल्लदेव-विद्यापति-काश्मीरकभट्ट श्री विल्हण-विरचिते विक्रमाङ्कदेवचरिते महाकाव्ये षोडश. सर्ग.।

नेत्राब्जाभ्र[illegible]
पार्वती के [illegible] ...ङ्कविक्रमशरत्कालेऽत्र दामोदरात्
भारद्वाजबुधोत्तमात्समुदितः श्रीविश्वनाथः सुधीः।
चक्रे रामकुबेरपण्डित-वरात्संप्राप्तसाहाय्यकः
सर्गे षोडशके रमाकरुणया टीकाद्वयं निर्मलम्॥

ॐ शान्तिः शान्ति शान्ति।

॥ श्रीः ॥

महाकविश्रीबिल्हणविरचितं

विक्रमाङ्कदेवचरितम्

सप्तदशः सर्गः

विधाय भूमेस्तलमस्तकण्टकं
ववर्ष हेम्ना स सहर्षमर्थिनाम् ।
अकुर्वतां सर्वजनार्तिखण्डनं
वृथा तडित्पल्लवचञ्चलाः श्रियः ॥१॥

अन्वयः

सः भूमेः तलम् अस्तकण्टकं विधाय सहर्षम् अर्थिनाम् (उपरि) हेम्ना ववर्ष । सर्वजनार्तिखण्डनम् अकुर्वतां तडित्पल्लवचञ्चलाः श्रियः वृथा ।

व्याख्या

स विक्रमाङ्कदेवो भूमेः पृथिव्यास्तलं पृष्ठमस्ताः निर्मूलमुच्छिन्नाः कण्टकाः शत्रवः कण्टकरूपाः यस्मिस्तत् विधाय कृत्वा सहर्षं सानन्दमर्थिनां याचकानां "मार्गणो याचकार्थिनौ" इत्यमरः । उपरि हेम्ना सुवर्णेन ववर्ष, सुवर्णदानं कृतवानित्यर्थः । सर्वजनानामार्तिः पीडा आर्थिकपीडेत्यर्थः । तस्याः खण्डनं विनाशमकुर्वतां न सम्पादयतां जनानां तडितो विद्युतः "तडित्सौदामनी विद्युत्" इत्यमरः । पल्लवाः विस्ताराः तडित्पल्लवा इव चञ्चला अस्थिराः श्रियः सम्पदः वृथा । उचितोपयोगाभावादित्यर्थान्तरन्यासालङ्कारोऽत्र ध्येयः । अत्र उपजातिश्छन्दः । वंशस्थेन्द्रवंशयोः संकरः ।

भाषा

विक्रमाङ्कदेव ने पृथ्वीतल को शत्रु-रहित कर याचकगणों पर सानन्द सुवर्ण वृष्टि की अर्थात् याचकगणों को खूब धन दिया । सब लोगो की

आर्थिक पीड़ा को दूर न करने वालो की बिजली की लकीर के समान चञ्चल लक्ष्मी व्यर्थ है।

चुलुक्यवंशे महतां महीभुजां
महाभुजः शेखरतामसौ गतः।
न मानुषिमेव निराचकार यः
प्रजासु दैवीमपि चिच्छिदे रुजम् ॥२॥

अन्वयः

यः प्रजासु मानुषीं रुजम् एव न निराचकार दैवीम् अपि रुजं चिच्छिदे (अतः) असौ महाभुजः चुलुक्यवंशे महतां महीभुजां शेखरतां गतः।

व्याख्या

य विक्रमाङ्कदेवः प्रजासु मानुषीं मानवसम्बन्धादागतां शत्रुसम्बन्धिनीं रुजमेव पीडामेव न निराचकार खण्डितवान् किन्तु दैवीमापदमपि चिच्छिदे निरस्तवान्, अतः असौ महाभुजः महाबाहुः विक्रमाङ्कदेवः चुलुक्यवंशे महतां महीभुजां नृपालानां शेखरतां शिरोमणित्वं गतः प्राप्तः।

भाषा

इस विक्रमाङ्कदेव ने अपनी प्रजा की केवल शत्रु आदि से होने वाली मानुषी पीड़ा को ही नही किन्तु दैवी पीड़ा को भी दूर कर दिया। इसलिये यह बडी २ भुजावाला विक्रमाङ्कदेव चालुक्यवश के बड़े २ राजाओ का भी शिरोमणि बन गया।

पयोभिरस्मान्परिपूरयन्ति ये
पयोधयस्ते दधतेऽस्य वश्यताम्।
इतीव तत्सेवनवाञ्छया जलं
यथोपयोगं मुमुचुः पयोमुचः ॥३॥

अन्वयः

ये पयोभिः अस्मान् परिपूरयन्ति ते पयोधयः अस्य वश्यतां दधते इति इव तत्सेवनवाञ्छया पयोमुचः जलं यथोपयोगं मुमुचुः।

व्याख्या

ये (समुद्राः) पयोभिः जलैरस्मान् (मेघान्) परिपूरयन्ति परिपूर्णान् कुर्वन्ति ते पयोधयस्समुद्राः अस्य विक्रमाङ्कदेवस्य वश्यतामधीनत्वं वहते धारयन्तीति हेतोरिव तस्य विक्रमाङ्कदेवस्य सेवनस्य सेवाया वाञ्छा इच्छा तया पयो मुञ्चन्तीति पयोमुचो मेघाः जलं यथोपयोगमावश्यकताया अनुकूलं मुमुचुः ववुः। नातिवृष्टिर्न च न्यूना वृष्टिर्जलस्य क्वचिदपि तस्य राज्ये बभूवेति भावः।

भाषा

जो समुद्र जल से हम मेघो को भर देते हैं वे समुद्र इसके वश में हैं ऐसा विचार कर मानो मेघ इसकी सेवा करने की इच्छा से इसके राज्य मे यथेच्छ वृष्टि करते थे अर्थात् इसके राज्य मे कभी भी अतिवृष्टि या अनावृष्टि नहीं होती थी।

अकालमृत्युर्न चचार कुत्रचित्
क्वचिन्नदुर्भिक्षमलक्ष्यत क्षितौ।
किमन्यदन्यायनिबर्हणो नृपः
स राज्यमिक्ष्वाकुपतेरदर्शयत् ॥४॥

अन्वयः

अकालमृत्युः कुत्रचित् न चचार क्षितौ दुर्भिक्षं क्वचित् न अलक्ष्यत। अन्यत् किम् अन्यायनिबर्हणः सः नृपः इक्ष्वाकुनृपतेः राज्यम् अदर्शयत्।

व्याख्या

अकालमृत्युरनुचितसमये मरणं कुत्रचित् कस्मिंश्चित्स्थाने न चचार बभूव, क्षितौ भूमौ दुर्भिक्षं दुष्कालः क्वचित्स्थाने नालक्ष्यत न दृष्टम् अन्यत् वस्तु किं वर्णनीयमन्यायस्य निबर्हणः निवारकः स नृपो विक्रमाङ्कदेव इक्ष्वाकुनृपते रामस्य राज्यमदर्शयत्।

भाषा

इसके राज्य मे कहीं भी अकालमृत्यु नही होती थी। पृथ्वी पर कहीं भी अकाल नही पड़ता था। ज्यादे क्या कहा जाय, अन्याय को दूर करने वाले इस राजा विक्रमाङ्कदेव ने रामराज्य की झलक दिखाई।

न भानुरत्यर्थमतापयज्जनं
वबुः समीराः श्रममात्रहारिणः ।
फलानि भङ्क्त्वातिभरेण पादपान्
भियेव पक्वान्यभजन्त पाण्डुताम् ।।५।।

अन्वयः

भानुः जनम् अत्यर्थं न अतापयत् । समीराः श्रममात्रहारिणः (सन्तः) वबुः । पक्वानि फलानि अतिभरेण पादपान् भङ्क्त्वा भिया इव पाण्डुताम् अभजन्त ।

व्याख्या

भानुस्सूर्यः जनं लोकं "लोकस्तु भुवने जने" इत्यमरः । अत्यर्थमत्यन्तं न अतापयदातपेन सन्तप्तं चकार, समीराः वायवः श्रममात्रं स्वेदबिन्दुदूरीकरणेन परिश्रमनिरासक्षममात्रं (मन्दं मन्दं) हरन्तीति श्रममात्रहारिणः सन्तः ववुः वान्ति स्म । पक्वानि पाकपरिणतानि फलान्यतिभरेण फलानां प्रचुरत्वाद्भाराधिक्येन पादपान् वृक्षान् भङ्क्त्वा त्रोटयित्वा भञ्जनरूपापराधभियः इव पाण्डुतां पाण्डुवर्णमभजन्त समाश्रितवन्तः । अत्र हेतूत्प्रेक्षालङ्कारः ।

भाषा

इसके राज्य में सूर्य इसकी प्रजा को अधिक ताप से पीडित नहीं करता था । वायु परिश्रम मात्र दूर कर देने के ध्येय से धीरे-धीरे बहते थे । पके हुए फल अधिक बोझे से पेडों को तोड कर मानो भय से पीले पड़ गए थे ।

जनैरवज्ञातकपाटमुद्रणैः
क्षपासु रक्षाविमुखैरसुप्यत ।
करा विशन्ति स्म गवाक्षवर्त्मसु
क्षपापतेश्छिद्रपथैर्न तस्कराः ।।६।।

अन्वयः

क्षपासु अवज्ञातकपाटमुद्रणैः रक्षाविमुखैः जनैः असुप्यत । क्षपापतेः कराः गवाक्षवर्त्मसु विशन्ति स्म तस्कराः छिद्रपथैः न विशन्ति स्म ।

व्याख्या

क्षपासु रात्रिष्ववज्ञातमुपेक्षितं कपाटमुद्रणं द्वारावरोधो यैस्ते तैः रक्षासु रक्षणकार्येषु विमुखा अतत्पराः असावधानाः तैः जनैरसुप्यत शयनं कृतम् । तस्य राज्ये चौरादिभयाभावाज्जनाः कपाटमुद्रणमप्युपेक्ष्य निश्चिन्ताः क्षपासु शयनं चक्रुः। क्षपापतेश्चन्द्रस्य कराः किरणाः गवाक्षवर्त्मसु जालमार्गेषु वातायनेषु "वातायनं गवाक्षोऽस्त्र" इत्यमरः। विशन्ति स्म प्रवेशं चक्रुः तस्कराः चौराः छिद्रपर्यैविवर-मार्गैः गृहे न विशन्ति स्म राज्ञो दण्डभयादिति भावः। अत्र परिसंख्याऽलङ्कारः।

भाषा

रात्रियों में किवाडा बन्द करने की परवाह न करने वाले, घर की रक्षा की चिन्ता न रखने वाले लोग खुर्राटा मार कर सोते थे। चन्द्रमा के किरण झरोखों के रास्तो से भीतर घुसते थे। चोर लोग सेंध मार कर घर में नहीं घुसते थे।

दिशः कृताः सन्तततूर्यनिस्वनै-
रलक्ष्यदिक्कुञ्जरकण्ठगर्जिताः ।
पुरे पुरे सन्ततमुत्सवादभूद्
ध्वजांशुकप्रावृतभास्करं नभः ॥७॥

अन्वयः

दिशः सन्तततूर्यनिस्वनैः अलक्ष्यदिक्कुञ्जरकण्ठगर्जिताः कृताः। पुरे पुरे सन्ततम् उत्सवात् नभः ध्वजांशुकप्रावृतभास्करम् अभूत्।

व्याख्या

दिशः आशाः सन्तता अविरतास्तूर्याणां वाद्यविशेषाणां निस्वनाः शब्दास्तैः सन्तततूर्यनिस्वनैः अलक्ष्यं श्रोतुमयोग्यं दिक्कुञ्जराणां दिग्गजानां कण्ठस्य गर्जितं यासु ताः कृताः सम्पादिताः। पुरे पुरे नगरे नगरे सन्ततं निरन्तरमुत्सवात् महोत्सवावानन्वपरम्परया नभः आकाशं ध्वजानां पताकानां "पताका वैजयन्ती स्यात्केतनं ध्वजमस्त्रियाम्" इत्यमरः। अंशुकैर्वस्त्रैः प्रावृतः समाच्छादितो भास्करः सूर्यो यस्मिंस्तत् अभूत्। महोत्सवेषु ध्वजो गृहाणामुपरि धार्यते इति लोकरीतिः।

भाषा

दिशाएँ लगातार बजने वाले तुरही आदि वाद्यों के शब्दों से दिग्गजों की न सुनाई पड़ने वाली कण्ठगर्जनाओं वाली कर दी गईं। नगर-नगर में लगातार उत्सव होते रहने से आकाश पताकाओं के कपड़ों से छिपे हुए सूर्य वाला हो गया। अर्थात् दिग्गजों की गर्जनाओं से अधिक जोर से बाजे बजते थे और अधिक पताकाओं के लगने से सूर्य छिप गया था।

उदारशौर्यैकरसः क्षमापतिः
स निर्विनोदः समरोत्सवं विना।
समापिताशेषमदान्धभूपयो-
रसेवकत्वं भुजयोरमन्यत ॥८॥

अन्वयः

उदारशौर्यैकरसः क्षमापतिः सः समरोत्सवं विना निर्विनोदः (सन्) समापिताशेषमदान्धभूपयोः भुजयोः असेवकत्वम् अमन्यत।

व्याख्या

उदारो महान् शौर्ये पराक्रमे एकः प्रधानो रस आनन्दो यस्य स उदारशौर्यैकरसः सः क्षमापतिर्विक्रमाङ्कदेवः समरोत्सवं युद्धरूपोत्सवं विना निर्विनोदः चित्ताह्लादशून्यस्सन् समापिता विनाशिता अशेषास्सकला मदान्धा मत्ता भूपा राजानो याभ्यां तौ तयोः भुजयोर्बाह्वोः "भुजबाहूप्रवेष्टो दोः" इत्यमरः। असेवकत्वममन्यत निष्फलत्वं वृथात्वं वा ज्ञातवान्।

भाषा

केवल बड़ा पराक्रम दिखाने में ही आनन्द प्राप्त करने वाले उस राजा विक्रमाङ्कदेव ने समरोत्सव के अभाव में उदास होकर, सम्पूर्ण मदान्ध राजाओं का नाश करने वाली अपनी दोनों भुजाओं को अपनी सेवा न करने वाली समझा। अर्थात् उनसे अब कोई पराक्रम के कार्य न होने की आशंका से उनको निष्फल समझा।

क्रमादजायन्त निजाकृतेः समाः
कुलप्रतिष्ठानिधयोऽस्य सूनवः ।
अनन्यसाधारणपुण्यशालिनां
फलन्त्ययत्नेन मनोरथद्रुमाः ॥९॥

अन्वयः

निजाकृतेः समाः कुलप्रतिष्ठानिधयः अस्य सूनवः क्रमात् अजायन्त । अनन्यसाधारणपुण्यशालिनां फलद्रुमाः अयत्नेन फलन्ति ।

व्याख्या

निजाकृतेः स्वीयस्वरूपस्य समाः तुल्याः कुलप्रतिष्ठाया वंशमर्यादाया निधयः योग्यस्थानभूताः अस्य विक्रमाङ्कदेवस्य सूनवः पुत्राः क्रमादजायन्त जन्म लेभिरे । अनन्यसाधारणपुण्यशालिनां पुण्यविशेषवतां मनोरथद्रुमाः मनोरथा अभिलाषा एव द्रुमा वृक्षा अयत्नेन विनैव प्रयासं फलन्ति फलानि प्रसुवते ।

भाषा

धीरे २ इस राजा विक्रमाङ्कदेव को अपने स्वरूप के अनुकूल वंशमर्यादा के आकर अर्थात् वंशमर्यादा का पूरी तौर से पालन करने वाले, पुत्र हुए । अनुपम पुण्यशाली लोगों के मनोरथरूपी वृक्ष विना प्रयास के ही फलने लगते हैं ।

सुवर्णवातायनतुङ्गभूमिषु
स्थिताः प्रमोदं ददुरस्य नन्दनाः ।
कृतास्पदाः स्वीयविमानशङ्कया
प्रविश्य विद्याधरबालका इव ॥१०॥

अन्वयः

सुवर्णवातायनतुङ्गभूमिषु स्थिताः अस्य नन्दनाः स्वीयविमानशङ्कया प्रविश्य कृतास्पदाः विद्याधरबालकाः इव प्रमोदं ददुः ।

व्याख्या

सुवर्णवातायनानां स्वर्णनिर्मितगवाक्षाणां "वातायनं गवाक्षोऽथ" इत्यमरः । तुङ्गभूमिषूच्चस्थलेषु स्थिताः आसीना अस्य विक्रमाङ्कदेवस्य नन्दनाः पुत्राः

स्वीयविमानशङ्कया इदं मदीयमेव विमानमिति शङ्कां ज्ञानं चोन्नतप्रासादेषु कृत्वा प्रविश्य कृतं विहितमास्पदं स्थानं यैस्ते प्रासादगृहेषु प्रविष्टाः विद्याधराणां देवयोनिविशेषाणां 'विद्याधराप्सरोयक्षरक्षो गन्धर्वकिन्नराः । पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः' इत्यमरः । बालका इवाऽतिसौन्दर्यात् प्रमोदं जनानां स्वपित्रोश्च प्रमोदं ददुः आनन्दयन्ति स्म ।

भाषा

सुवर्णनिर्मित खिड़कियो से युक्त प्रासाद की ऊँची इमारतों में बैठे हुए राजा विक्रमाङ्कदेव के पुत्र, उस प्रासाद को अपना विमान समझ कर उसमें प्रवेश कर बैठे हुए विद्याधरो के सुन्दर बालको के समान दर्शको को आनन्द देते थे ।

अहं सदा प्राणसमं महीभुजा-
मयं तु मां वेत्ति नृपस्तृणोपमम् ।
इतीव कर्णेषु सुवर्णमर्थिनां
स्वखेदमाख्यातुमभूत्कृतास्पदम् ॥११॥

अन्वयः

सुवर्णम्, अहं महीभुजां सदा प्राणसमम्, अयं तु नृपः मां तृणोपमं वेत्ति इति स्वखेदम् आख्यातुम् इव अर्थिनां कर्णेषु कृतास्पदम् अभूत् ।

व्याख्या

सुवर्णं कनकमहं महीभुजां सकलभूपानां कृते सदा सर्वस्मिन्काले प्राणैस्समं तुल्यं प्रियम् । परन्त्वयं नृपः विक्रमाङ्कदेवो मा (सुवर्णं) तृणोपमं तृणसमानमूल्यं वेत्ति जानाति, इतीदृशं स्वखेदमवहेलनात्मकमनोव्याधिमाख्यातुं कथयितुमिवार्थिनां याचकानां "मार्गणो याचकार्थिनौ" इत्यमरः । कर्णेषु भूषणत्वेन कृतास्पदमवस्थितमभूत् । अत्र फलोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

भाषा

सोने ने, अन्य राजा लोग तो मुझे (सोने को) प्राण के समान प्यारा समझते हैं किन्तु यह राजा विक्रमाङ्कदेव मुझे (सोने को) तृण के समान समझता है, ऐसा विचार कर मानों अपने दुःख को सुनाने के लिये याचकों के

कानों में स्थान ग्रहण कर लिया। अर्थात् याचकलोग उसके शासनकाल में कानों में सोने के कुण्डल पहनने लगे थे।

नरेन्द्रचामीकरचारुभूषण-
प्रभावलीसङ्गमपिङ्गलत्विषाम् ।
इतस्ततः प्लोषभियेव दुर्गतिर्मुमोच
सङ्गं ज्वलतामिवार्थिनाम् ॥१२॥

अन्वयः

दुर्गतिः नरेन्द्रचामीकरचारुभूषणप्रभावलीसङ्गमपिङ्गलत्विषाम् (अतएव) इतः ततः ज्वलताम् इव अर्थिनां सङ्गम् प्लोषभिया इव मुमोच।

व्याख्या

दुर्गतिर्दारिद्र्यं नरेन्द्रस्य राज्ञश्चामीकरं विक्रमाङ्कदेवदत्तं 'सुवर्णं "चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने" इत्यमरः। तस्य चारुभूषणानि रमणीयालङ्कारास्तेषां प्रभा कान्तयस्तासामावली राजिः तस्याःसङ्गमेन सम्बन्धेन पिङ्गला पिङ्गलवर्णा त्विट् शोभा येषान्ते तेषामतएवेतस्ततो धृता भूषणस्थाने ज्वलतामिव प्रतीयमानानामिवार्थिनां याचकानां सङ्गं सम्बन्धं प्लोषभिया दाहभयात् "प्लुष्टप्लुष्टोविला दग्धे" इत्यमरः। इव मुमोच तत्याज। विक्रमस्य सुवर्णदानवशात्सर्वे याचकसमूहा धनिनो बभूवुरिति भावः।

भाषा

दरिद्रता ने, राजा विक्रमाङ्कदेव द्वारा दिए गए सोने के सुन्दर आभूषणों की कान्ति श्रेणी के सम्बन्ध से पीली कान्ति वाले, इधर उधर जहाँ शरीर पर आभूषण धारण किए थे वहाँ जलती आग के ऐसे दीख पड़ने वाले याचकों का साथ मानो जल जाने के भय से छोड़ दिया। अर्थात् सब याचक धनी हो गए। दुर्गति याचको से दूर भाग खड़ी हुई।

शिरस्थदेवालयपातभीतितः
प्रगल्भते खण्डयितुं न मामयम् ।
इति ध्रुवं काञ्चनभूधरोऽभव-
न्महीभुजि त्यागिनि तत्र निर्भयः ॥१३॥

अन्वय

तत्र महीभुजि त्यागिनि (सति) काञ्चनभूधरः अयं शिरस्थदेवालयपातभीतितः मां खण्डयितुं न प्रगल्भते इति (हेतोः) ध्रुवं निर्भयः अभूत्।

व्याख्या

तत्र तस्मिन् महीभुजि राज्ञि विक्रमाङ्कदेवे त्यागिनि धनदानकर्मणि प्रवृत्ते सति काञ्चनभूधरः सुमेरुः "मेरुः सुमेरुर्हेमाद्रिः रत्नसानुः सुरालयः" इत्यमरः। अयं विक्रमाङ्कदेवः शिरस्थदेवालयपातभीतितः मदीयशिरोभागस्थसर्वदेवनिवासस्थानस्य स्वर्गस्य पातभीत्या पतनभयात मां (सुमेरुं) खण्डयितुं भेत्तुं सुवर्णदानार्थं खण्डशो विधातुं न प्रगल्भते नोत्सहते इति हेतोः ध्रुवं निश्चयेन निर्भय भयरहितोऽभूत्।

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव के सुवर्णदान करने में प्रवृत्त रहने पर सुमेरु पर्वत, यह सोंच कर ही कि मेरे शिखर पर देवों का आलय होने से अर्थात् स्वर्ग होने से उसके गिर पड़ने के भय से विक्रमाङ्कदेव मुझे नहीं काटेगा, अवश्य ही निर्भय रहा।

इहागतः खण्डनमेव लप्स्यते
पलायनार्थं कनकाद्रिरुच्यताम्।
इतीव देशान्तरगामिनामभू-
न्नरेन्द्रहेम श्रुतिलग्नमर्थिनाम्॥१४॥

अन्वयः

नरेन्द्रहेम इह आगतः (मेरुः) खण्डनम् एव लप्स्यते (इति) कनकाद्रिः पलायनार्थम् उच्यताम् इति इव देशान्तरगामिनाम् अर्थिनां श्रुतिलग्नम् अभूत्।

व्याख्या

नरेन्द्रदत्तं हेम सुवर्णम् इह विक्रमाङ्कदेवसमीपे आगतस्सन् मेरुः खण्डनं भेदनमेव लप्स्यते प्राप्स्यते (इति हेतोः) कनकाद्रिः सुवर्णाद्रिः सुमेरुः पलायनार्थं

दूरदेशगमनार्थमुध्यतां वक्तव्यः इति कथनार्थमिव देशान्तरगामिनामर्थिनां याचकानां श्रुतिलग्नं कर्णयोर्लग्नमभूत् । सर्वे देशदेशान्तरागता याचकाः सुवर्ण-कर्णभूषणयुक्ता जाता इति भावः ।

भाषा

राजा विक्रमाङ्कदेव द्वारा दान मे दिया हुआ सोना, यदि सुमेरु पर्वत यहाँ आया तो उसके टुकड़े-टुकडे हो जाएँगे इसलिये उसे भाग जाने को कहो ऐसा प्रचार करने के लिये मानों देशान्तर में जाने वाले याचको से कानाफ़सी करने लगा अर्थात् देशान्तर से आए हुए याचक भी सुवर्णदान से कर्णभूषणो से युक्त कर दिए गए ।

कृतो निवासः कमलाविलासिनः
क्षमाभुजा तेन नितान्तमुन्नतः ।
विभाति धर्मस्य समुद्गतो भुजः
कलिच्छिदे क्ष्मावलयोदरादिव ॥१५॥

अन्वयः

तेन क्ष्मामुजा नितान्तम् उन्नतः कृतः कमलाविलासिनः निवासः कलिच्छिदे क्ष्मावलयोदरात् समुद्गतः धर्मस्य भुजः इव विभाति ।

व्याख्या

तेन क्षमाभुजा विक्रमाङ्कदेवेन नितान्तमत्यधिकमुन्नत उच्चः कृतः विरचितः कमलया लक्ष्म्या "लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला" इत्यमरः । सह विलसतीति तस्य कमलाविलासिनः विष्णोः निवासः मन्दिरं कलिच्छिदे कलियुगध्वसाय क्ष्मावलयं भूमण्डलं तस्योदरान्मध्यात् समुद्गतः निस्सृतः धर्मस्य भुज इव बाहुरिव विभाति शोभते ।

भाषा

उस राजा विक्रमाङ्कदेव द्वारा बनाया हुआ बहुत ऊँचा विष्णु भगवान् का मंदिर मानों कलियुग का नाश करने के लिये भूमण्डल के मध्य से निकली धर्म की भुजा हो ऐसा शोभित होता था ।

नभोङ्गणव्यापिनमुष्णदिधिते-
गुंणद्वयं यं परिहृत्य गच्छतः ।
न लङ्घनं शार्ङ्गभृतः कृतं भवेत्
तुरङ्गमाला च न भङ्गमश्नुते ॥१६॥

अन्वयः

नभोङ्गणव्यापिनं यं परिहृत्य गच्छतः उष्णदीधितेः गुणद्वयम्—शार्ङ्गभृतः लङ्घनं कृतं न भवेत्, तुरङ्गमाला च भङ्गं न अश्नुते ।

व्याख्या

नभोङ्गणमाकाशतलं व्याप्नोतीति नभोङ्गणव्यापी तं यं विष्णुमन्दिरं विक्रमाङ्कदेवनिर्मितं परिहृत्य परित्यज गच्छतः उष्णदीधितेस्सूर्यस्य गुणयोर्द्वयम्भवति महत्वद्वयं जायते । एकं तु शार्ङ्गभृतः विष्णोः "पीताम्बरोऽच्युतः शार्ङ्गी" इत्यमरः । लङ्घनमतिक्रमणं कृतं न भवेदन्यच्च तुरङ्गमालाऽश्वपंक्तिः "तुरङ्गाश्वतुरङ्गमाः" इत्यमरः । अपि भङ्गमत्युच्चमन्दिरसंघट्टनादङ्गभङ्गादिकं च नाश्नुते न प्राप्नोति ।

भाषा

आकाश रूपी आंगन तक पहुँचे हुए अर्थात् बहुत ऊँचे उस विक्रमाङ्कदेव द्वारा बनाए हुए मन्दिर को बचा कर चलने वाले सूर्य को दो लाभ थे। एक तो विष्णु भगवान् का लाघना नहीं होता था दूसरे उसके घोड़ो की श्रेणी मन्दिर से टकराकर अङ्ग-भङ्ग को नहीं प्राप्त होती थी ।

अयं स कण्ठीरवतामुपागमद्
विपाटनार्थं दनुजेन्द्रवक्षसः ।
इतीव भीतः कमलापतेः स्थितिं
न यत्र धत्ते कलिकालकुञ्जरः ॥१७॥

अन्वयः

यत्र कलिकालकुञ्जरः, दनुजेन्द्रवक्षसः विपाटनार्थं सः अयं कण्ठीरवताम् उपागमत् इति कमलापतेः भीतः इव स्थितिं न धत्ते ।

व्याख्या

यत्र राज्ये कलिकालः चतुर्थयुग एव कुञ्जरो हस्ती "कुञ्जरो वारणः करी" इत्यमरः। दनुजानां राक्षसानां "दनुजेन्द्रारिदानवाः" इत्यमरः। इन्द्रो हिरण्यकशिपु. तस्य वक्षसः हृदयस्य विपाटनार्थं विदारणार्थं सोऽयं कमलापतिर्विष्णुः कंठीरवतां सिंहत्वं नृसिंहावतारत्वमुपागमत् प्राप्तवानिति हेतोः कमलापतेः लक्ष्मीपतेर्विष्णो विक्रमाङ्कदेवाच्च भीतः सन्निव स्थितिं निवासं न धत्ते न करोति। गजस्तु सिंहाद्बिभेत्येवेति भावः। अत्र रूपकोत्प्रेक्षयोः सङ्करः।

भाषा

कलियुग रूपी हाथी, दैत्यों के राजा हिरण्यकशिपुके कलेजे को फाड़ डालने के लिये यह प्रसिद्ध विष्णु सिंह बनकर अर्थात् नृसिंह अवतार लेकर इस पृथ्वी पर आया था, ऐसा विचार कर मानो लक्ष्मीपति विष्णु या लक्ष्मी के स्वामी विक्रमाङ्कदेव से डर कर विक्रमाङ्कदेव के राज्य में वास नहीं करता है।

अवैमि नारायणनाभिपङ्कजं
न लभ्यते यत्र मधुव्रतोत्करैः।
दिवानिशं येन विनिस्सरन्ति ते
निभेन कालागुरुधूमसम्पदाम् ॥१८॥

अन्वयः

यत्र मधुव्रतोत्करैः नारायणनाभिपङ्कजं न लभ्यते, येन ते कालागुरुधूमसम्पदां निभेन दिवानिशं विनिःसरन्ति (इति) अवैमि।

व्याख्या

यत्र विष्णुमन्दिरे मधुव्रतानां भ्रमराणामुत्कराः समूहास्तैः नारायणस्य विष्णोः नाभिपङ्कजं नाभेः कमलं न लभ्यते न प्राप्यते। येन कारणेन ते भ्रमराः कालागुरु. कृष्णागुरुस्तस्य धूमसम्पदां धूमनिचयानां निभेन व्याजेन दिवानिशं रात्रिदिवं विनिस्सरन्ति तस्मात्स्थानाद्बहिः प्रसरन्ति इत्यवैमि जाने।

भाषा

विष्णुमन्दिर में भौरों के समूह विष्णुभगवान् के नाभि के कमल को नहीं प्राप्त करते हैं इस कारण से वे भौंरे कस्तूरी और अगर के धूंएँ के समूह के

मिष से रात दिन मन्दिर मे से निकलते रहते है ऐसा मैं समझता हूँ। अर्थात् विष्णुमन्दिर में चौबिसों घण्टे धूप जला करता था।

यदीयशृङ्गेषु विभाति मौक्तिक-
प्रभाभरैः काञ्चनकुम्भमण्डली ।
तृषा विनिक्षिप्य मुखं तुरंङ्गमैः
कृता खरांशोरिव फेनसङ्गिनी ॥१६॥

अन्वयः

यदीयशृङ्गेषु काञ्चनकुम्भमण्डली मौक्तिकप्रभाभरैः खरांशोः तुरङ्गमैः तृषा मुखं विनिक्षिप्य फेनसङ्गिनी कृता इव।

व्याख्या

यस्य देवमन्दिरस्येमानि यदीयानि यत्सम्बन्धीनि शृङ्गाणि शिखराणि "कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गं" इत्यमरः। तेषु मूर्धसु काञ्चनकुम्भानां स्वर्णघटानां मण्डली समूहो मौक्तिकानां मुक्तानां प्रभाभराः कान्तिसमूहास्तैः खरांशोस्सूर्यस्य तुरङ्गमैरश्वैः तृषा जलपिपासया मुखं वदनं विनिक्षिप्य प्रवेश्य फेनसङ्गिन्यश्व-मुखनिर्गतफेनसङ्गता कृतेव रचितेव।

भाषा

जिस देवमन्दिर के शिखरो पर का सोने के घडों का समूह, भरे हुए मोतियो की कान्ति के आधिक्य के कारण मानो सूर्य के घोडो ने प्यास से उस घडो के समूह मे मुह डाल कर उसे अपने मुख में परिश्रम से आए हुए फेन से युक्त कर दिया हो ऐसा प्रतीत होता था।

पुरन्ध्रिनृत्येषु विनिर्यदंशुभिः
प्रसर्पदानन्दजलैरिवेक्षणैः ।
श्रियं सजीवा इव यत्र सन्ततं
वहन्ति रत्नोत्करशालभञ्जिकाः ॥२०॥

अन्वयः

यत्र रत्नोत्करशालभञ्जिकाः पुरन्ध्रिनृत्येषु विनिर्यदंशुभिः प्रसर्पदानन्दजलैः इव ईक्षणैः सजीवाः इव श्रियं सन्ततं वहन्ति इव।

व्याख्या

यत्र मन्दिरे रत्नोत्कराणां रत्नसमूहानां शालभञ्जिकाः पुत्तलिकाः मणिविनिर्मिताः पुत्तलिकाः, पुरन्ध्रीणां स्त्रीणां नृत्येषु विनिर्यन्तोंऽशवः किरणा येभ्यस्ते तैः प्रसर्पत् संव्याप्नुवदानन्दजलं येषु तानि तैरीक्षणैः नेत्रैः सजीवा इव सचेतना इव श्रियं शोभां सन्ततं निरन्तरं वहन्ति धारयन्तीव । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

भाषा

जिस मन्दिर मे रत्नों से बनाई पुतलियाँ, स्त्रियो के नाचो में, आँखों से निकलने वाली चमक से, मानो आए हुए आनन्दाश्रुओ से युक्त आखो के कारण जीती जागती होने के समान सतत शोभा को रखती थी अर्थात् शोभित होती थी।

वितानरत्नप्रतिबिम्बडम्बरै-
वहन्ति यत्प्राङ्गणसीम्नि लासिकाः ।
अवाप्तविद्याधरराजसुन्दरी-
पदा इव व्योम्नि विहर्तुमुद्यताः ॥२१॥

अन्वयः

यत्प्राङ्गणसीम्नि लासिकाः वितानरत्नप्रतिबिम्बडम्बरैः अवाप्तविद्याधरराजसुन्दरीपदाः व्योम्नि विहर्तुम् उद्यताः इव वहन्ति ।

व्याख्या

यस्य मन्दिरस्य प्राङ्गणसीम्नि अङ्गणमध्ये लासिकाः नर्तक्यः "नर्तकीलासिके समे" इत्यमरः । वितानेषूल्लोचेषु "अस्त्री वितानमुल्लोचः" इत्यमरः । प्रत्युप्तानि तेषां प्रतिबिम्बानि तेषां डम्बरैः विलासैरवाप्तानि सम्प्राप्तानि विद्याधरराजस्य सुन्दर्यो रमण्यस्तासां पदानि स्थानानि याभिस्ताः व्योम्न्याकाशे विहर्तुमुद्यता इव सयत्ना इव वहन्ति भवन्तीत्यर्थः ।

भाषा

जिस राजा विक्रमाङ्कदेव के मन्दिर के आँगन मे नाँचने वाली नर्तकियाँ, चंदवे में जड़े रत्नों में प्रतिबिम्बित होने के मिष से मानो विद्याधरों के राजा की सुन्दरियों का स्थान प्राप्त करने वाली होकर आकाश में बिहार करने के लिये प्रयत्नशील हैं ।

अकारयत्कारणमानुषः पुर-
स्तडागमेतस्य स रुद्धदिङ्मुखम् ।
उपैति येनानुपमश्रिया तुला-
मसौ गतश्रीः कथमम्भसां निधिः ॥२२॥

अन्वयः

सः कारणमानुषः एतस्य पुरः रुद्धदिङ्मुखं तडागम् अकारयत् । अनुपमश्रिया येन गतश्रीः अम्भसां निधिः कथं तुलाम् उपैति ।

व्याख्या

कारणमानुषः हेतुविशेषेण गृहीतमनुजावतारः स विक्रमाङ्कदेवः एतस्य निवासस्य पुरोऽग्रे रुद्धानि समाच्छादितानि दिङ्मुखानि दिगन्तराणि यस्य स तं तडागं सरोवरमकारयद् अनुपमाऽवर्णनीया श्रीः शोभा यस्य तेन अनुपमश्रियाऽनुपमशोभेन येन तडागेन गतश्रीः गता श्रीः कमला शोभा वा यस्य सोऽम्भसां निधिस्समुद्रः कथं तुलां साम्यमुपैति प्राप्नोति नैव प्राप्तुमर्हतीति काकुः ।

भाषा

कारणविशेष से मानव रूप धारण करने वाले राजा विक्रमाङ्कदेव ने उस मन्दिर के आगे दिशाओं तक फैलने वाला अर्थात् बहुत बड़ा एक तालाब बनवाया था। अवर्णनीय शोभा वाले उस तालाब से लक्ष्मीरहित या शोभा-रहित समुद्र कैसे बराबरी कर सकता है।

नभःस्रवन्त्या इव शेषवारिभिः
परिच्युतैरच्युतपादपद्मतः ।
प्रविश्य देवालयगर्भमागतै-
र्विपाण्डुभिर्यः सलिलैर्विशोभते ॥२३॥

अन्वयः

यः अच्युतपादपद्मतः परिच्युतैः देवालयगर्भं प्रविश्य आगतैः नभःस्रवन्त्याः शेषवारिभिः इव विपाण्डुभिः सलिलैः विशोभते ।

व्याख्या

यः तडागः अच्युतस्य विष्णोः पादपद्मतः चरणकमलतः परिच्युतैर्निर्गतैः देवालयस्य देवमन्दिरस्य स्वर्गस्य गर्भमभ्यन्तरभागं प्रविश्याऽऽगतैर्नभःस्रवन्त्याः आकाशनद्या गङ्गायाः शेषवारिभिरवशिष्टजलैरिव विपाण्डुभिः शुभ्रैस्सलिलैः विशोभते विद्योतते ।

भाषा

जो तालाव, विष्णु भगवान् के चरणकमल से निकले हुए तथा स्वर्ग में प्रविष्ट होकर बाहर पड़े हुए आकाशगङ्गा के शेष जलो के समान श्वेतवर्ण जलो से शोभित है । अर्थात् उस तालाव का पानी आकाशगङ्गा के पानी के समान सफेद और निर्मल था ।

प्रदानलोभादिह भर्तुरस्य चेत्
कदाचिदागच्छति कुम्भसम्भवः ।
छिनद्मि तद्दर्पमितीव यस्तट-
त्रुटद्विटङ्कोर्मिरवेण गर्जति ॥२४॥

अन्वयः

अस्य भर्तुः प्रदानलोभात् कदाचित् इह कुम्भसम्भवः आगच्छति चेत् (तदा) तद्दर्पं छिनद्मि इति (हेतोः) इव यः तटत्रुटद्विटङ्कोर्मिरवेण गर्जति ।

व्याख्या

अस्य भर्तुः विक्रमाङ्कदेवस्य प्रदानस्य लोभात्तस्माद्दानप्राप्तीच्छया कदाचिद् कदापीह कुम्भसम्भवः आचान्तसमुद्रः अगस्त्यः आगच्छति चेत् दानग्रहणार्थमायाति चेत् तर्हि तस्य दर्पं मदं छिनद्मि विनाशयामीति (हेतोः) इव यः तडागः तटेषु त्रुटतामाघट्टितानां विटङ्कोर्मीणामुन्नततरङ्गाणां रवेण शब्देन गर्जति गर्जितं करोति ।

भाषा

इस तालाव के मालिक राजा विक्रमाङ्कदेव से दान प्राप्त करने की अभिलाषा से यदि कदाचित् समुद्र को तीन आचमन में पीजाने वाले अगस्त्यमुनि

आ जाँय तो मै उनके घमण्ड को चूर कर दूंगा मानो इस हेतु से तटों से टकराने वाली ऊँची-ऊँची लहरों के शब्दो से गरज रहा है ।

किमादृतक्षारपयोधिसङ्गमा
विभर्षि भागीरथि दुर्भगाव्रतम् ।
इतीव यः कर्षति हर्षगद्गद-
स्तरङ्गहस्तैर्नभसः सुरापगाम् ।।२५।।

अन्वयः

यः, हे भागीरथि आदृतक्षारपयोधिसङ्गमा दुर्भगाव्रतं किं विभर्षि इति (हेतोः) इव हर्षगद्गदः (सन्) तरङ्गहस्तैः नभसः सुरापगां कर्षति ।

व्याख्या

यः तडागः हे भागीरथि गङ्गे ! आदृतः प्रेम्णा स्वीकृतः क्षारपयोधेः लवणसमुद्रस्य सङ्गमो यया सा दुर्भगाव्रतमभाग्यसूचकसंकल्पं किं कथं विभर्षि धारयसीति (हेतोः) इव हर्षेण प्रमोदेन गद्गदः व्याप्तः सन् तरङ्गा एव हस्तास्तैः नभसः आकाशस्य सुराणां देवानामापगां नदीं गङ्गां कर्षति हठात् स्वसमीपं प्रापयति । तस्य तडागस्य तरङ्गा अत्युन्नता आसन्निति भावः ।

भाषा

जो तालाव. हे गङ्गे ! खारे समुद्र का साथ स्वीकार करने वाली तू दुर्भाग्यवती के व्रत का क्यो पालन करती है मानो ऐसा कहकर हर्ष से गद्गद होकर तरङ्ग रूपी हाथो से आकाश मे बहनेवाली स्वर्गङ्गा को बलपूर्वक अपनी ओर खीचता है । अर्थात् इस तालाब की लहरे आकाश तक ऊची उठती थी ।

अवाप्तबन्धेन लघुत्वमङ्घिना
वितर्क्य पित्रा सुरराजकुञ्जरः ।
प्रसूतमात्मानमनिन्दितात्मनो
ब्रवीति यस्माद्ध्रुवमभ्रमोः पुरः ।।२६।।

अन्वयः

सुरराजकुञ्जरः अभ्रमोः पुरः अवाप्तबन्धेन अङ्घिना पित्रा लघुत्वं वितर्क्य अनिन्दितात्मनः यस्मात् प्रसूतम् आत्मानं ब्रवीति (इति) ध्रुवम् ।

व्याख्या

सुरराजकुञ्जरः ऐरावतः अभ्रमोः स्वकान्तायाः "ऐरावतोऽभ्रमातंगैरावणाऽभ्रमुवल्लभाः" इत्यमरः। पुरोऽग्रे अवाप्तः प्राप्तः रामेण कृतो बन्धो बन्धनं येन स तेनाब्धिना समुद्रेण पित्रा जनकेन लघुत्वं स्वस्य हीनत्वं वितर्क्य ज्ञात्वाऽनिन्दितात्मनः श्लाघ्यमहिम्नः यस्मात् सरोवरात् प्रसूतमुत्पन्नमात्मानं स्वं (ऐरावतं) ब्रवीति कथयति इति ध्रुवं निश्चयेन ब्रवीतीत्यर्थः।

भाषा

इन्द्र का हाथी ऐरावत अपनी स्त्री अभ्रमू के सामने श्रीरामचन्द्र के द्वारा बाँधा गया समुद्र मेरा पिता है ऐसा कहने में अपनी हेठी समझ इस तालाब से मेरी उत्पत्ति है, ऐसा ही अवश्य कहता है।

निपीय यत्पाथसि नूनमम्बुदै-
रवापिते शुक्तिषु मौक्तिकश्रियम्।
पुराणमुक्तामणिभिर्न लप्स्यते
कुचस्थलारोहणमेणचक्षुषाम् ॥२७॥

अन्वयः

अम्बुदैः निपीय यत्पाथसि शुक्तिषु मौक्तिकश्रियम् अवापिते (सति) पुराणमुक्तामणिभिः एणचक्षुषां कुचस्थलारोहणं नूनं न लप्स्यते।

व्याख्या

अम्बुदैर्मेघैः निपीय सम्पूर्णतडागजलं निश्शेषेण पीत्वाऽवशिष्टे यत्पाथसि यस्य तडागस्य पाथसि जले "कबन्धमुदकं पाथः" इत्यमरः। शुक्तिषु मौक्तिकानां मुक्तानां श्रियं शोभामवापिते प्रापिते सति पुराणमुक्तामणिभिरतिप्राचीनत्वेनाचमत्कृतैः कान्तिरहितैः प्राचीनमुक्तामणिभिरेणचक्षुषां मृगाक्षीणां कुचस्थलेषु स्तनप्रदेशेष्वारोहणं भूषणकारित्वं नूनं निश्चयेन न लप्स्यते। अतिचमत्कृतनवीनालङ्कार सद्भावे पुराणालङ्कारस्य महत्वं न दीयते कान्ताजनैरिति युक्तमेवेति भावः।

भाषा

मेघों के द्वारा इस तालाब का सब जल पी लेने पर जो अवशिष्ट जल था उसकी सीपों में मोती बन जाने पर पुराने मोती, मृगनयनिओं के कुचस्थलों

पर पड़ने वाले आभूषणों में निश्चयपूर्वक स्थान नहीं पाते थे। अर्थात् इस तालाब में मोती भी होते थे और कामिनियाँ पुराने मोतियों को छोडकर इसी के मोती के आभूषण पहनती थीं।

अपास्य पाथोधिमसंख्यनिम्नगा-
मुखार्पणोच्छिष्टमरोचकादिव ।
तपात्यये जहुरुपान्तशैलजाः
कुमारतां यस्य सगर्वमापगाः ॥२८॥

अन्वयः

उपान्तशैलजाः आपगाः तपात्यये असंख्यनिम्नगामुखार्पणोच्छिष्टं पाथोधिम् अरोचकात् इव अपास्य यस्य कुमारतां सगर्वं जहुः।

व्याख्या

उपान्तशैले समिपवर्तिपर्वते जाताः आपगाः नद्यः "स्रवन्ती निम्नगापगा" इत्यमरः। तपात्यये ग्रीष्मान्ते वर्षासमये असंख्याः अगणिताः निम्नगाः नद्यः तासां मुखानि अग्रभागास्तेषामर्पणेन समुद्रस्योपरि सम्मेलनेन चुम्बनेनेति भावः। उच्छिष्टं पाथोधिं समुद्रमरोचकादिव वैरस्यादिवाऽपास्य त्यक्त्वा यस्य तडागस्य कुमारतां कुत्सितः मारः कामो यस्य स कुमारस्तस्य भावः कुमारता तामीषत्काम-सम्बन्धं सगर्वं साभिमानं जहुरपहरन्ति स्म, कामं वर्धयामासुरिति भाव.। अत्र समासोक्तिरलङ्कारः।

भाषा

समीपवर्ती पर्वत से निकलनेवाली नदियाँ वर्षा ऋतु में अनेक नदियो के अग्रभाग का समर्पण करने से अपवित्र या अनेक नदियो को अपने मुख का चुम्बन देने से जूठे समुद्र को मानो घृणा से त्याग कर इस तालाब की कौमारावस्था का घमण्ड के साथ अपहरण करने लगी। अर्थात् इसमें आकर मिलने लगी और सस्त्रीक होने से कुमारता हट गई।

निरन्तरं ब्रह्मपुरीभिरावृतं
चकार तत्रैव पुरं स पार्थिवः।
विरिञ्चिलोकात्सुरलोकतश्च यद्
विभूष्य भागाविव कौतूकात्कृतम् ॥२९॥

अन्वयः

सः पार्थिवः तत्र एव ब्रह्मपुरीभिः निरन्तरम् आवृतं पुरं चकार यत् विरिञ्चिलोकात् सुरलोकतः च भागौ विभूष्य कौतुकात् कृतम् इव।

व्याख्या

सः पार्थिवो विक्रमाङ्कदेवः तत्रैव तस्मिन्स्थले ब्रह्मपुरीभिः ब्राह्मणानां निवासभूमिभिः निरन्तरमावृतं वेष्टितं पुरं विक्रमपुरनामधेयं स्वनगरं चकार। यत् नगरं विरिञ्चिलोकात् ब्रह्मलोकात् सुरलोकतः स्वर्गलोकतः च भागौ द्वावंशौ विभूष्यऽलङ्कृत्य कौतुकात्कौतूहलात् कृतमिव रचितमिव। ब्रह्मलोके ब्राह्मणवसतिः स्वर्गं चानुपमं सौन्दर्यम्। ब्रह्मलोकस्वर्गयोः भागौ गृहीत्वा रचितमिवेतिभावः।

भाषा

उस राजा विक्रमाङ्कदेव ने वहीं पर ब्राह्मणों के निवासस्थानों से सतत घिरा हुआ एक नगर बसाया जो कि मानों ब्रह्मलोक के और स्वर्ग लोक के विभिन्न दो भागो से विभूषित कर बनाया था। अर्थात् जो ब्राह्मणों के निवास स्थानो से विभूषित होने से ब्रह्मलोक का एक भाग और स्वर्ग सदृश अनुपम सौन्दर्य से विभूषित होने से स्वर्ग का एक भाग था।

क्षपासु यत्रैकमपास्य चुम्बति
द्वितीयवातायनमङ्गनामुखे ।
विशङ्कितः सौधविटङ्कलङ्घनात्
प्रविश्य मध्यं व्रजतीव चन्द्रमाः ॥३०॥

अन्वयः

क्षपासु अङ्गनामुखे एकम् अपास्य द्वितीयवातायनं चुम्बतिन्न्य (सति) चन्द्रमाः सौधविटङ्कलङ्घनात् विशङ्कितः (सन्) मध्यं प्रविश्य व्रजति इव।

व्याख्या

यत्र नगरे क्षपासु रात्रिष्वङ्गनायाः मुखे वदने एकं गवाक्षमपास्य त्यक्त्वा द्वितीयवातायनं द्वितीयगवाक्षं "वातायनं गवाक्षोऽथ" इत्यमरः। चुम्बति सङ्गच्छति सति चन्द्रमाः सौधविटङ्कानां प्रासादशिखराणां "सौधोऽस्त्री राजसदनम्" इत्यमरः।

लङ्घनादतिक्रमणाद्विशङ्कितः भीतस्सन् मध्यं प्रविश्य (सौधमध्यभागं) प्रविश्य व्रजति गच्छतीव । सौधमध्यभागे प्रथमगवाक्षात् द्वितीये गवाक्षे कामिनी-मुखचन्द्रगमनात् चन्द्रमसः सौधमध्यभागं प्रविश्य गमनमुत्प्रेक्षितमिति भावः ।

भाषा

उस नगर मे रात्रियो में कामिनी का मुख महल की एक खिड़की में से हट कर दूसरी खिड़की में चमकने से ऐसा मालुम होता था मानों महल के उच्चतम भाग को लाघने के भय से चन्द्रमा महल के बीच में प्रविष्ट होकर जा रहा है। अर्थात् कामिनीमुखचन्द्र एक खिड़की से हटकर दूसरी खिडकी मे दीख पड़ने से मानो चन्द्रमा ही महल के मध्य में प्रविष्ट होकर जा रहा है ऐसा मालुम होता था ।

यदीयसोपानपथाधिरोहणे
नितम्बिनिनां विनिपातभीतितः ।
मयूखदण्डैस्तपनीयनिर्मिताः
करावलम्बं ददतीव भित्तयः ॥३१॥

अन्वयः

तपनीयनिर्मिताः भित्तयः यदीयसोपानपथाधिरोहणे नितम्बिनीनां विनिपातभीतितः मयूखदण्डैः करावलम्बं ददति इव ।

व्याख्या

तपनीयं सुवर्णं "तपनीयं शातकुम्भं" इत्यमरः । तेन निर्मिताः रचिताः भित्तयः गृहभित्तयः यदीयः यस्य पुरस्य अयमिति यदीय. सोपानस्तस्य पन्था मार्गस्तस्मिन्नधिरोहणे उपरि गमने नितम्बिनीनां बृहन्नितम्बवतीनां कामिनीनां विनिपातभीतितोऽधःसम्पतनभयात् मयूखाः किरणाः "किरणोस्रमयूखांशुः" इत्यमरः । स्वर्णसम्बन्धिनः एव दण्डाः दण्डायमानाः तैः करावलम्बं हस्त-धारणं ददतीव ।

भाषा

सोने की बनी इस महल की भीतें, इसकी सीढियों से ऊपर चढ़ने में, बड़े बड़े नितम्बवाली कामिनिओं को गिर पड़ने के डर से, अपने किरण रूपी डडों से मानो उन्हें हाथ का सहारा दे रही हैं ।

यदग्रवातायनशृङ्गसद्मना-
मतीव तुङ्गत्वमवाप दूषणम् ।
यदत्र चित्रस्थितकुञ्जरक्रुधा
प्रधावनं शक्रगजस्य शङ्क्यते ॥३२॥

अन्वयः

यदग्रवातायनशृङ्गसद्मनां तुङ्गत्वम् अतीव दूषणम् अवाप यत् अत्र चित्रस्थितकुञ्जरक्रुधा शक्रगजस्य प्रधावनं शङ्क्यते ।

व्याख्या

यस्य पुरस्याग्रे उपरिभागे वातायनानि गवाक्षाः "वातायनं गवाक्षोऽथ" इत्यमरः । शृङ्गसद्मानि चन्द्रशालाः (शिरोगृहाणि) "चन्द्रशाला शिरोगृहम्" इत्यमरः । तेषां तुङ्गत्वमुच्चत्वमतीव दूषणं सदोषत्वमवाप प्राप्तम् । यद्य-स्मात्कारणादत्रोच्चस्थानेषु चित्रेष्वालेख्येषु "आलेख्याश्चर्ययोश्चित्रम्" इत्यमरः । स्थिता उल्लिखिताः कुञ्जराः हस्तिनः क्रुधा गजविषयककोपेन शक्रगजस्यै-रावतस्य प्रधावनं समाक्रमणं शङ्क्यते । चित्रलिखितकुञ्जरान् दृष्ट्वा तान् यथार्थमेव हस्तिन इति विज्ञायैरावताक्रमणस्य भीतिरासीदिति भावः ।

भाषा

इस महल के ऊपर के हिस्से मे विद्यमान खिड़कियो और बगलों का ऊँचा होना दोषावह हो गया । क्योकि वहाँ चित्रों में बनाए हुए हाथियों को देखकर (और उन्हे सच्चे हाथी समझ कर) क्रोध से इन्द्र के हाथी ऐरावत के दौड़ पड़ने की आशङ्का या सम्भावना होती थी ।

स्थितासु यत्रोपरि भूमिकुट्टिम-
स्थलीषु तुङ्गासु निरन्तरासु च ।
त्यजन्ति मार्गे तुरगाः कियत्यपि
ध्रुवं निरालम्बगतिश्रमं रवेः ॥३३॥

अन्वयः

यत्र तुङ्गासु निरन्तरासु उपरिस्थितासु भूमिकुट्टिमस्थलीषु रवेः तुरगाः कियति अपि मार्गे निरालम्बगतिश्रमं ध्रुवं त्यजन्ति ।

व्याख्या

यत्र पुरे तुङ्गासूञ्नतासु निरन्तरास्वविरलासु उपरि-भूमौ स्थितासु विद्यमानासु कुट्टिमस्थलीषु निबद्धभूमिषु "कुट्टिमोऽस्त्री निबद्धा भूः" इत्यमरः। रवेः सूर्यस्य तुरगाः अश्वाः कियत्यपि मार्गेऽध्वनि निरालम्बा निराश्रया गतिर्गमनं तस्य श्रमं श्रान्ति ध्रुवं त्यजन्ति परिहरन्ति। तत्र ते विश्रामं गृह्णन्ति स्मेति भावः।

भाषा

जिस नगर की ऊँची, लम्बी, ऊपर की पक्की अटालियो पर सूर्य के घोडे थोडी दूर तक अपने आलम्ब रहित गमन के श्रम को अवश्य ही छोड देते है। अर्थात् वे घोडे थोड़ी दूर तक उस ऊँची लम्बी पक्की अटालियो पर चलकर विश्राम लेते थे।

निशासु यत्र प्रतिबिम्बवर्त्मना
समागतश्चारुदृशां निशाकरः।
विलासदोलायितकुण्डलाहतः
कपोललावण्यजले निमज्जति ॥३४॥

अन्वयः

यत्र निशासु प्रतिबिम्बवर्त्मना समागतः निशाकरः चारुदृशां विलासदोलायितकुण्डलाहतः कपोललावण्यजले निमज्जति।

व्याख्या

यत्र हर्म्ये निशासु रात्रिषु प्रतिबिम्बवर्त्मना प्रतिच्छायछद्मना समागतः निशाकरश्चन्द्रः चारुदृशां रम्यनयनानां स्त्रीणां विलासेन विभ्रमेण दोलायितैरितस्ततस्सञ्चालितैः कुण्डलैराहतः सन्ताडितस्सन् कपोलस्य गण्डस्य लावण्यमेव जलं तस्मिन् निमज्जति अन्तस्तले प्रयाति समानकान्तिकत्वाल्लुप्यतीति भावः।

भाषा

जिस नगर मे रात्रि के समय मे परछाही के रूप मे आया हुआ चन्द्रमा सुन्दर आँखवाली स्त्रियो के मस्ती से हिलाए गए हुए कुण्डलों से ताड़ित होकर मानो उनके गालो के लावण्यजल में लुप्त हो जाता है। अर्थात् उनके दर्पण के ऐसे चमकने वाले गालों पर चन्द्र का प्रतिबिम्ब पड़ने पर उसकी गालो के सदृश ही कान्ति होने से वह उसमे लुप्त हो जाता है। अत्र सामान्यालङ्कार.।

पिता हरिः श्रीर्जननी तयोरिदं
पुरंममैवेति विचिन्तनादिव ।
अजस्रमन्यायसहस्रकारिणः स्मरस्य
यत्रास्ति न कश्चिदङ्कुशः ॥३५॥

अन्वयः

यत्र हरिः पिता श्रीः जननी तयोः इदं पुरं मम एव इति विचिन्तनात् इव अजस्रम् अन्यायसहस्रकारिणः स्मरस्य कश्चित् अङ्कुशः न अस्ति ।

व्याख्या

यत्र पुरे हरिः कृष्णः पिता मम (कामस्य) जनकः, श्रीर्लक्ष्मीः जननी माता मदीया, तयोः विष्णुलक्ष्म्योः इदं पुरं मम एव मदीयमेवेति विचिन्तनाद्विचारणात् इवाऽजस्रं निरन्तरमन्यायानामनुचितव्यापाराणां सहस्रं करोतीत्यन्यायसहस्रकारी तस्य स्मरस्य कामदेवस्य कश्चिदङ्कुशः प्रतिबन्धको नास्ति । तत्र कामस्य पूर्णं स्वातन्त्र्यमिति भावः ।

भाषा

विष्णु मेरे पिता है और लक्ष्मी मेरी माता है और लक्ष्मीनारायण का यह नगर मेरा ही है मानो ऐसा विचार करने से लगातार हजारों अन्यायकार्य करनेवाले कामदेव को जिस नगर मे कोई रुकावट नही थी ।

ददौ स दानानि महान्ति षोडश
प्रतापशाली प्रतिपर्व पार्थिवः ।
तदन्तिकाद्दानजलैः सकर्दमा-
न्निपातभीत्येव कलिः पलायितः ॥३६॥

अन्वयः

सः प्रतापशाली पार्थिवः प्रतिपर्व महान्ति षोडश दानानि ददौ (अतएव) दानजलैः सकर्दमात् तदन्तिकात् निपातभीत्या इव कलिः पलायितः ।

व्याख्या

प्रतापशाली प्रतापवान् सः पार्थिवः विक्रमाङ्कदेवः प्रतिपर्व पर्वणि पर्वणि विषुवदादिपर्वसु "चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्या च पूर्णिमा । पर्वाण्येतानि

राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च ।" इति महाभारते । महान्ति विशालानि षोडश दानानि तुलापुरुषादिषोडशदानानि, तद्यथा—"आद्यं तु सर्वदानानां तुलापुरुष-संज्ञितम् । हिरण्यगर्भदानञ्च ब्रह्माण्डं तदनन्तरम् ॥ कल्पपादपदानञ्च गोसहस्रञ्च पञ्चमम् । हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च ॥ हिरण्याश्वरथस्तद्वत् हेमहस्तिरथस्तथा । पञ्चलाङ्गलकं तद्वत् धरादानं तथैव च ॥ द्वादशं विश्वचक्रञ्च ततः कल्पलतात्मकम् । सप्तसागरदानञ्च रत्नधेनुस्तथैव च ॥ महाभूतघटस्तद्वद् षोडशः परिकीर्तितः ।" इति भगवन्तभास्करदानमयूखे । ददौ समर्पितवान् (अतएव) दानजलैः सकर्दमात् पङ्कयुक्तात् तस्य विक्रमाङ्कदेव-स्याऽन्तिकात् समीपात् निपातभीत्या इव पतनभयादिव कलिश्चतुर्थयुगं पलायितः अपसृतवान् । तस्योपरि कलेः कोऽपि प्रभावो न दृश्यते स्मेति भावः ।

भाषा

प्रतापशाली राजा विक्रमाङ्कदेव विषुवद् आदि प्रत्येक पर्व पर तुलादानादि सोलह दान दिया करता था । अतएव सकल्पो के जल से उसके समीप की जगह गीली हो जाने से कलियुग मानो गीली जमीन पर फिसल कर गिर पड़ने के डर से उसके समीप से भाग गया था । अर्थात् उसके ऊपर कलियुग का कोई प्रभाव न पडा था ।

अधत्त तुङ्गेषु सुवर्णराशिषु
प्रदानशीलस्तृणबुद्धिमेव सः ।
बभूव लोभास्पदमस्य भूपते-
र्यशः परं चन्दनपिण्डपाण्डुरम् ॥३७॥

अन्वयः

प्रदानशीलः सः तुङ्गेषु सुवर्णराशिषु तृणबुद्धिम् एव अधत्त । चन्दनपिण्डपाण्डुरं यशः अस्य भूपतेः परं लोभास्पदं बभूव ॥३७॥

व्याख्या

प्रदानं शीलं यस्य स प्रदानशीलः महादानी सः विक्रमाङ्कदेवः तुङ्गेषून्नतेषु सुवर्णराशिषु कनकपुञ्जेषु तृणबुद्धिं तृणसमानतुच्छत्वज्ञानमेवाऽधत्त कृतवान् । चन्दनपिण्डवत्पाण्डुरं शुभ्रं यशः अस्य भूपतेः विक्रमाङ्कदेवस्य परं केवलं लोभास्पदं लोभस्थानं बभूव । अत्र व्याजस्तुतिरलङ्कारः ।

भाषा

महादानी वह विक्रमाङ्कदेव ऊंची २ सुवर्ण की राशियों को तृण के समान समझ कर उनमें जरा भी लोभ नहीं रखता था। सफेद चन्दन के गोले के समान श्वेत यश में ही केवल वह लोभ रखता था।

सुवर्णदानप्रवणेऽत्र शङ्कितः
सुवर्णशैलः शिखरैः समुन्नतैः ।
समस्पृशत्पारदपिण्डशङ्कया
विपाण्डुरत्वार्थमिवेन्दुमण्डलम् ॥३८॥

अन्वय

सुवर्णदानप्रवणे अत्र शङ्कितः सुवर्णशैलः समुन्नतैः शिखरैः इन्दुमण्डलं पारदपिण्डशङ्कया विपाण्डुरत्वार्थम् इव समस्पृशत्।

व्याख्या

सुवर्णस्य कनकस्य दाने प्रवणस्तत्परस्तस्मिन्नत्र विक्रमाङ्कदेवे शङ्कितः मद्गतसुवर्णस्याऽपि दानं विक्रमाङ्कदेवेन कृतं स्यादिति भयभीतः सुमेरुः समुन्नतैः तुङ्गैः शिखरैः शृङ्गैः "कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम्" इत्यमरः। इन्दुमण्डलं चन्द्रमण्डलं पारदः रसः तस्य पिण्डं घनीभूतस्वरूपं तस्य शङ्कया विचारेण विपाण्डुरत्वस्य शुक्लवर्णत्वस्याऽर्थं कृते इव समस्पृशत् स्पृष्टवान्। पारदस्पृष्टं सुवर्णं रजतवद्धवलं भवतीति प्रसिद्धम्। सुमेरुं रजतवद्धवलं दृष्ट्वा रजतज्ञानेन तस्य दानं न करिष्यतीति भावः।

भाषा

सुवर्ण के दान देने मे तत्पर विक्रमाङ्कदेव के सम्बन्ध में, कहीं मेरे सुवर्ण को भी यह दान न कर दे, ऐसी शङ्का से सुमेरु, अपनी ऊँची २ चोटियो से मानो सफेदी प्राप्त करने के लिये चन्द्रमण्डल को पारद का गोला समझ उसका स्पर्श करने लगा। अर्थात् पारा लग जाने से सोना सफेद पड़ जाता है। इसलिये सुमेरु अपने को सफेद करने के ध्येय से, जिसमें विक्रमाङ्कदेव को यह न मालूम हो कि वहाँ सोना है, चन्द्र को पारद का गोला समझ उसका स्पर्श करने लगा।

रिपुं विजित्य द्विजकल्पशाखिना
कृतेऽमुना हेमतुलाधिरोहणे ।
गिरेरगस्त्यागमशङ्कया चिराद्
बभूव तस्योन्नमने मनोरथः ॥३९॥

अन्वयः

द्विजकल्पशाखिना अमुना रिपुं विजित्य हेमतुलाधिरोहणे कृते (सति) अगस्त्यागमशङ्कया तस्य गिरेः उन्नमने चिरात् मनोरथः बभूव ।

व्याख्या

द्विजानां ब्राह्मणानां कल्पशाखी कल्पद्रुमस्तेनाऽमुना विक्रमाङ्कदेवेन रिपुं शत्रुं विजित्य पराजित्य हेम्ना सुवर्णेन सह तुला साम्यं तस्यां तुलायामधिरोहणे आरोहे कृते सति स्वर्णतुलापुरुषदानग्रहणार्थमगस्त्यस्य "अगस्त्यः कुम्भसम्भवः" इत्यमरः । मुनेरागमशङ्कया प्राप्त्याशाया तस्य गिरेः विन्ध्याचलस्योन्नमने उन्नतौ चिराद्बहुकालानन्तरं मनोरथः इच्छाऽभूत् । उन्नतेरिच्छायास्सफलताया आशा जाता विन्ध्यस्येति भावः । अत्र पौराणिकी कथा संयोज्या ।

भाषा

ब्राह्मणो के लिये कल्पवृक्षस्वरूप राजा विक्रमाङ्कदेव ने शत्रुओं को जीतकर स्वर्णतुला पुरुष का दान करने पर उस दान को लेने के लिये अपने गुरु अगस्त्यमुनि के आने की आशा से विन्ध्यपर्वत ने चिरकाल के अनन्तर उठ खड़े होने की इच्छा की। अर्थात् चिरकाल से, सूर्य की किरणों को रोकने से, गुरु अगस्त्य की आज्ञा से विन्ध्यपर्वत गुरु जी के पुन आकर खड़े होने की आज्ञा देने की प्रतीक्षा में पड़ा हुआ है। वे अगस्त्य मुनि इस दान को लेने आने तो उसके उठ खड़े होने की इच्छा पूर्ण होती। इस पौराणिकी कथा का इसमे सन्दर्भ है।

प्रयच्छतः स्वच्छमतीव काञ्चनं
विशङ्कय यस्मात्कनकक्षमाधरः ।
अदर्शयत्कालिकयेव सङ्गतिं
स्वहेम्नि सङ्क्रान्तिनिभान्नभःश्रियः ॥४०॥

अन्वयः

कनकक्षमाधरः अतीव स्वच्छं काञ्चनं प्रयच्छतः यस्मात् विशङ्कय स्वहेम्नि नभःश्रियः सङ्क्रान्तिनिभात् कालिकया इव सङ्गतिम् अदर्शयत् ।

व्याख्या

कनकस्य सुवर्णस्य क्षमाधरः पर्वतः सुमेरुः अतीवाऽत्यन्तं स्वच्छं निर्मलं

देदीप्यमानं काञ्चनं सुवर्णं "महारजतकाञ्चने" इत्यमरः। प्रयच्छतः ददतो यस्माद्विक्रमाङ्कदेवात् विशङ्कय शङ्कां विधाय कस्मिन्नपि दिने मदीयसुवर्णं भित्वा राज्ञा कदाचिद्दत्तं स्यादित्याशङ्कय स्वहेम्नि स्वकीयसुवर्णे नभस आकाशस्य श्रियो लक्ष्म्याः सङ्क्रान्तिनिभात् सङ्क्रमणव्याजात् प्रतिबिम्बव्याजात् कालिकया श्यामिकया कृष्णरेखया सङ्गति सम्मेलनमदर्शयत्।

भाषा

एकदम शुद्ध सोना दान देने वाले राजा विक्रमाङ्कदेव से यह सन्देह कर कि यह कहीं मेरे शुद्ध सोने को भी काटकर दान न कर दे सोने का पर्वत सुमेरू अपने सोने मे आकाश की नीलिमा की परछाही पड़ने से मानों अपने सोने में कालिमा की झलक से सम्बन्ध प्रकट करने लगा। अर्थात् सुमेरू के सोने को कालिमायुक्त देख उसे शुद्ध न समझ राजा विक्रमाङ्कदेव उसके सोने का दान न करेगा।

प्रदानलीलारसिकः प्रतापवान्
विधाय रिक्तानि कुलानि भूभुजाम्।
अपूरयत्सोऽर्थिगृहाणि हेमभि-
र्यशोभिराशावदनानि चोज्ज्वलैः ॥४१॥

अन्वयः

प्रतापवान् प्रदानलीलारसिकः सः भूभुजां कुलानि रिक्तानि विधाय अर्थिगृहाणि हेमभिः (अपूरयत्) आशावदनानि उज्ज्वलैः यशोभिः च अपूरयत्।

व्याख्या

प्रतापवान् महाप्रभावशाली प्रदानलीलायां याचकेभ्यो दाने रसिकः प्रेम्णासक्तः स विक्रमाङ्कदेवः भूभुजां कुलानि रिपुभूतानां राज्ञां कुलानि रिक्तानि धनशून्यानि विधाय राजभ्यो धनमाहृत्यार्थिगृहाणि याचकसदनानि हेमभिस्सुवर्णैरपूरयत् पूरितवान्, आशावदनानि दिङ्मुखान्युज्ज्वलैः धवलैः यशोभिः कीर्तिभिरपूरयत् परिपूर्णानि चकार।

भाषा

महाप्रभावशाली, दान देने के प्रेमी उस राजा विक्रमाङ्कदेव ने शत्रुराजाओं

के कुलो को धनरहित कर याचकों के घरों को सोने से और दिशाओं को अपने श्वेतवर्ण यशों से भर दिया।

कृतस्थितिर्मूर्धनि चक्रवर्तिनां
स विश्वचक्रर्द्धिविधानतत्परः।
उदारशीलः प्रतिकूलतामगाद्
दरिद्रनिर्माणपरस्य वेधसः ॥४२॥

अन्वयः

उदारशीलः चक्रवर्तिनां मूर्धनि कृतस्थितिः विश्वचक्रर्द्धिविधानतत्परः दरिद्रनिर्माणपरस्य वेधसः प्रतिकूलताम् अगात्।

व्याख्या

उदारं दानकर्तृशीलं स्वभावो यस्य स उदारशीलः चक्रवर्तिनां सार्वभौमानां मूर्धनि शिरसि कृता स्थितिर्येन स विश्वचक्रस्य विश्वमण्डलस्य ऋद्धेरुन्नतेर्विधाने तत्परः परायणः दरिद्राणां निर्माणे धनरहितानां रचने परः आसक्तस्तस्य वेधसः ब्रह्मणः प्रतिकूलतां विपरीतकारित्वमगात्। पूर्वनिर्धारिते दरिद्रीकरणरूपे स्वकार्ये विक्रमाङ्कदेवस्य दानकर्मणा विरोधं विलोक्य रुष्टः सन् ब्रह्मा तद्विपरीतोऽभूत् तस्य च दुर्भाग्योदयः समजनीति भावः।

भाषा

औदार्ययुक्त, चक्रवर्ती राजाओ में सर्वश्रेष्ठ विश्वमण्डल की समृद्धि को पूर्ण कर देने मे तत्पर उस राजा विक्रमाङ्कदेव ने दरिद्र बनाने में प्रवीण ब्रह्मा की प्रतिकूलता प्राप्त की। अर्थात् विक्रमाङ्कदेव को अपने दरिद्र बनाने के कार्य के विरुद्ध कार्य करते देख कर ब्रह्मा जी रुष्ट होकर उसके विपरीत हो गए और उसके दुर्भाग्य का प्रादुर्भाव हुआ।

विपक्षदुर्भिक्षकदर्थितश्रियं
सशौर्यकण्डूलभुजः क्षितेः पतिः।
निशम्य चोलं बलगर्वितं पुन-
र्जगामकाञ्चीं समनीकतृष्णया ॥४३॥

अन्वय

चिरं विपक्षदुर्भिक्षकदर्थितः शौर्यकण्डूलभुजः क्षितेः पतिः चोलं बलगर्वितं निशम्य समनीकतृष्णया पुनः काञ्चीं जगाम ।

व्याख्या

चिरं बहुकालपर्यन्तं विपक्षाणां शत्रूणां दुर्भिक्षमभावस्तेन कदर्थितः दुःखितः शौर्येण वीरोचितपराक्रमेण कण्डूलौ कण्डूसमन्वितौ भुजौ बाहू यस्य सः क्षितेः पतिः पृथिवीपतिर्विक्रमाङ्कदेवः चोलं चोलदेशाधिपं बलेन गर्वितं दर्पयुक्तं निशम्य श्रुत्वा समनीकस्य युद्धस्य "अस्त्रियां समरानीकरणाः कलहविग्रहौ" इत्यमरः । तृष्णया इच्छया युद्धं कर्तुं पुनः काञ्चीं चोलदेशराजधानीं जगाम गतवान् ।

भाषा

चिरकाल तक कोई शत्रु न मिलने से दु:खित, वीरो के लिये उचित पराक्रम से जिसकी दोनो भुजाओ मे खजवहट होने लगी थी ऐसा वह राजा विक्रमाङ्कदेव, चोल राजा बहुत बलशाली है ऐसा सुनकर युद्ध की इच्छा से फिर से काञ्ची नगरी की ओर चल पडा ।

श्रियः समुत्थापनवार्धिमन्थनं
कलिप्रियस्येक्षणपारणं मुनेः ।
क्रयापणं निर्जरपण्ययोषितां
क्रमेण तौ तत्र रणं वितेनतुः ॥४४॥

अन्वयः

तत्र तौ श्रियः समुत्थापनवार्धिमन्थनं कलिप्रियस्य मुनेः ईक्षणपारणं निर्जरपण्ययोषितां क्रयापणं रणं क्रमेण वितेनतुः ।

व्याख्या

तत्र युद्धस्थले तौ विक्रमाङ्कदेवचोलाधिपौ द्वौ नृपौ श्रियः लक्ष्म्याः समुत्थापनाय वार्धेः समुद्रस्य मन्थनरूपं यद्वा मन्थदण्डरूपं कलिप्रियस्य मुनेः कलहप्रियस्य नारदस्येक्षणयोर्नेत्रयोः पारणं सन्तोषदायकं तृप्तिजनकं निर्जराणां देवानां "अमरा निर्जरा देवाः" इत्यमरः । पण्ययोषितोऽप्सरसस्तासां क्रयस्य वीरवरणस्याऽऽपणं स्थानं "आपणस्तु निषद्यायाम्" इत्यमरः । रणं युद्धं क्रमेण क्रमशः शनैः २ वितेनतुः चक्रतुः । अत्र रूपकालङ्कारः ।

भाषा

उस युद्धभूमि में राजा विक्रमाङ्कदेव और चोलराज, ये दोनों लक्ष्मी को समुद्र को मथकर बाहर निकालने के लिये समुद्र का मन्थन दण्डरूप, कलह के प्रेमी नारदमुनि की आँखो को सन्तोषप्रदरूप, देवताओं की गणिका अप्सराओं का वीरो को चुनने का बाजार स्वरूप युद्ध को धीरे-धीरे करने लगे।

महाभटानां करवालयष्टयः
समुच्छलद्वीररसोर्मिनिर्मलाः ।
विनिर्गताः कोशबिलोदरात्ततः
कृतान्तपाशोरगसंनिभा बभुः ।।४५।।

अन्वयः

ततः समुच्छलद्वीररसोर्मिनिर्मलाः महाभटानां करवालयष्टयः कोशबिलोदरात् विनिर्गताः कृतान्तपाशोरगसंनिभाः बभुः ।

व्याख्या

ततस्तदनन्तरं समुच्छलन्त ऊर्ध्वं गच्छन्तः वीररसस्योर्मयस्तरङ्गाः "भङ्गस्तरङ्गऊर्मिर्वा" इत्यमरः। तद्वन्निर्मला धवलाः महाभटानां करवालयष्टयः खड्गलता. कोशः खड्गपिधानं "कोषोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधाने" इत्यमरः। एव बिलं रन्ध्रं तस्योदरात् मध्यात् विनिर्गताः विनिस्सृताः कृतान्तस्य यमराजस्य "कृतान्तो यमुनाभ्राता शमनो यमराड्यमः" इत्यमरः। पाशोरगाणां पाशसर्पाणां संनिभास्तुल्याः बभुः प्रकाशिताः आसन् ।

भाषा

इसके अनन्तर ऊपर को उठने वाली वीर रस की लहरो के समान निर्मल महायोद्धाओ की तलवारे, म्यान रूपी बिल से निकलीं यमराज के पाश के सर्पों के समान दीख पड़ती थी।

परस्परं मत्सरतः प्रधाविताः
प्रभूतसौभाग्यवशाज्जयश्रियः ।
किमप्यखिद्यन्त बलद्वये भटाः
पुरोगतैः शीघ्रतया शरैरपि ।।४६।।

अन्वयः

बलद्वये जयश्रियः प्रभूतसौभाग्यवशात् परस्परं मत्सरतः प्रधाविताः भटाः शीघ्रतया पुरोगतैः शरैः अपि किम् अपि अखिद्यन्त ।

व्याख्या

बलद्वये सैन्ययुगे जयश्रियः विजयलक्ष्म्याः प्रभूतसौभाग्यवशात् प्रचुरमाहात्म्यवशात्परस्परं मिथः मत्सरतोऽन्योन्यासहिष्णुत्वात् प्रधाविताः भटाः योधाः शीघ्रतया द्रुततया पुरोगतैरग्रे गतैः शरैर्बाणैरपि किमप्यखिद्यन्त दुःखिता जाताः । बाणाः मदपेक्षया कथं शीघ्रतया गताः । तेषां द्रुतगमनं तेभ्यो न रोचते । बाणापेक्षया ते भटा एव शीघ्रतरं गन्तुमीहन्ते स्मेति भावः ।

भाषा

दोनो सेनाओ में विजयलक्ष्मी के अत्यधिक महात्म्य के कारण अर्थात् विजयलक्ष्मी प्राप्त करने की उत्कृष्ट इच्छासे परस्पर एक दूसरे के प्रति द्वेष भाव से दौड पड़े हुए योद्धा लोग, शीघ्रता से उनके आगे निकलजाने वाले बाणो को भी देखकर दुःखी होते थे । अर्थात् वे स्वयं जल्दी से आगे बढ़ना चाहते थे किन्तु बाणो को अपने आगे जाने वाले देख उन्हे दुःख होता था ।

हृदि प्रविष्टं दशनं निजासिना
निकृत्य कश्चित्करिणं न्यवारयत् ।
चकार रन्ध्रे कृतकीलकार्पणः
प्रतिक्रियां जीवविनिर्गमस्य च ॥४७॥

अन्वयः

कश्चित् हृदि प्रविष्टं दशनं निजासिना निकृत्य करिणं न्यवारयत् । रन्ध्रे कृतकीलकार्पणः जीवविनिर्गमस्य प्रतिक्रियां चकार ।

व्याख्या

कश्चिद्भटः हृदि हृदये प्रविष्टं हृदयं विभिद्याऽन्तः गतं दशनं गजदन्तं निजासिना निजखड्गेन निकृत्य छित्त्वा करिणं हस्तिनं न्यवारयत् दूरीचकार । रन्ध्रे छिद्रे युक्तावसरे कृतं कीलकस्यार्पणं वेधो येन स भटः जीवस्यासोः विनिर्गमो विनिस्सरणं तस्य प्रतिक्रियां निरोधोपायं चकार । कोऽपि कीलककीलितो गन्तुं न शक्नोतीति सिद्धम् ।

भाषा

किसी योधा ने हृदय को फाडकर भीतर घुसे हुए हाथी के दाँत को अपनी तलवार से काटकर हाथी को दूर कर दिया। मौके से प्राण निकल जाने के मार्गरूप घाव को बाण से कीलित कर किसी योद्धा ने अपने प्राणों को निकल जाने से रोकने का उपाय किया।

अतिष्ठदंसे सुभटस्य चञ्चलं शिरः
क्षुरप्रेण यदर्धखण्डितम्।
तदेष वामेन विधृत्य पाणिना
प्रधावितः कं न चकार बंदिनम् ॥४८॥

अन्वयः

यत् क्षुरप्रेण अर्धखण्डितं चञ्चलं शिरः सुभटस्य अंसे अतिष्ठत् तत् वामेन पाणिना विधृत्य प्रधावितः एषः कं बन्दिनं न चकार।

व्याख्या

यत् क्षुरप्रेण बाणविशेषेणाऽर्धखण्डितमर्धभागः खण्डितो भिन्नो भग्नो वा यस्य तत् चञ्चलं शिरस्सुभटस्यांसे स्कन्धे "स्कन्धो भुजशिरोंऽसोऽस्त्री" इत्यमरः। अतिष्ठदवलम्बितमासीत् तच्छिरः वामेन सव्येन पाणिना हस्तेन विधृत्याऽऽलम्ब्य प्रधावितः एषः कश्चित्सुभटः कं वशंकं बन्दिनं स्वशौर्यस्य स्तुतिकारकं "बन्दिनस्तुतिपाठका" इत्यमरः। न चकार। सर्वेऽपि तं स्तोतुमुपचक्रिर इति भावः।

भाषा

विशिष्ट बाण से आधा कटा हुआ और हिलता हुआ जो सिर उस वीर के कन्धे पर था उसे बाएँ हाथ से पकडकर दौड पडे हुए उस वीरने किसको अपना स्तुति पाठक नही बनाया अर्थात् सब उसकी स्तुति करने लगे।

सकङ्कटः कश्चिदुरस्तटत्रुट-
त्पृषत्कनिष्ठ्यूतहुताशनो भटः।
विवेद नो धूमलताभिशङ्कया
मुखे कृपाणं रिपुणा निवेशितम् ॥४९॥

अन्वयः

सकङ्कटः उरस्तटत्रुटत्पृषत्कनिष्ठ्यूतहुताशनः कश्चित् भटः रिपुणा मुखे निवेशितं कृपाणं धूमलताभिशङ्कया नो विवेद ।

व्याख्या

कङ्कटेन वारबाणेन "उरच्छद कङ्कटको जगरः" इत्यमरः । सहेति सकङ्कटस्सकवचः उरस्तटे वक्षःस्थले त्रुटन्तः संघट्टिताः पृषत्का बाणाः "पृषत्क-बाणविशिखाः" इत्यमर. । तैर्निष्ठ्यूतो निर्गतो हुताशनो वह्निर्यस्य सः कश्चित् भटः योधः रिपुणा शत्रुणा मुखे निवेशितं हठात्प्रवेशितं कृपाणं खड्गं धूमलताया अभिशङ्कया विचारेण नो विवेद न ज्ञातवान् ।

भाषा

कवच पहिने हुआ, हृदय पर बाणो के टकराने से उत्पन्न अग्नि वाला कोई वीर, शत्रु ने मुख मे घुसाए हुई काले रग की तलवार को उस अग्नि के धूएँ की लकीर की शङ्का से जान ही नही सका।

रदाङ्कुरप्रोतमरातिदन्तिना
मुखं दधानः पुलकोत्कराञ्चितम् ।
पिबन्निवालक्ष्यत कोऽपि लीलया
मृणालदण्डेन यशःसुधारसम् ।।५०।।

अन्वयः

अरातिदन्तिना रदाङ्कुरप्रोतं पुलकोत्कराञ्चितं मुखं दधानः कः अपि लीलया मृणालदण्डेन यशःसुधारसं पिबन् इव अलक्ष्यत ।

व्याख्या

अरातेः शत्रोर्दन्ती हस्ती "दन्ती दन्तावलो हस्ती" इत्यमरः । तेनाऽराति-दन्तिना शत्रुगजेन रदाङ्कुरे दन्तावयवे प्रोतमनुस्यूतं पुलकोत्करेण रोमाञ्चस-मूहेनाऽञ्चितं युक्तं रोमाञ्चतरङ्गितं मुखं दधानः कोऽपि भटः लीलया विलासेन मृणालदण्डेन बिसदण्डेन यश एव कीर्तिरेव सुधाऽमृतं तस्य रसं पिबन्निवाऽलक्ष्यत दृष्टः लोकैरिति शेषः ।

भाषा

शत्रु के हाथी ने अपने दांत के अग्रभाग में परोए हुए अर्थात् दांत घुसाए हुए और रोमाञ्च के आधिक्य से शोभित मुख को धारण करने वाला कोई वीर मानों विलासपूर्वक मृणालदण्ड से कीर्ति रूपी अमृत के रस का पान करता हुआ दिखाई पड़ता था ।

विपक्षशस्त्रक्षपणैः पुनः पुनः
क्षताखिलग्रन्थि निजास्थिपञ्जरम् ।
चकार चण्डद्युतिमण्डलोदरे
सुखप्रवेशार्थमिवापरो भटः ॥५१॥

अन्वयः

अपरः भटः चण्डद्युतिमण्डलोदरे सुखप्रवेशार्थम् इव निजास्थिपञ्जरं विपक्षशस्त्रक्षपणैः पुनः पुनः क्षताखिलग्रन्थि चकार ।

व्याख्या

अपरोऽन्यः भटः चण्डद्युतेस्सूर्यस्य मण्डलं तस्योदरे मध्ये सुखेनाऽनायासेन प्रवेशकरणार्थमिव निजं स्वकीयमस्थिपञ्जरं कीकससमूहं विपक्षाणां शत्रूणां शस्त्रक्षपणैः शस्त्रप्रहारैः पुनः पुनः क्षताः विनाशिताः अखिलग्रन्थयः सकलसन्धयो यस्य तत् क्षताखिलग्रन्थि चकार । रणेऽभिमुखो हत सूर्यमण्डलं भित्वा प्रविशतीति प्रसिद्धम् ।

भाषा

अन्य किसी वीरने, सूर्यमण्डल में सुखपूर्वक प्रवेश प्राप्त करने के ध्येय से अपने अस्थिपिञ्जरावशिष्ट शरीर को शत्रु के बार-बार शस्त्रप्रहारों से विनाशित समग्र सन्धियों वाला बनाया । युद्ध में सन्मुख मरने वाला वीर मरते ही तुरन्त सूर्यमण्डल को भेदकर चला जाता है ऐसा प्रसिद्ध है ।

पदे पदे शोणितपङ्कपातिनी
दिनेश्वरस्य प्रतिबिम्बमालिका ।
अवापदापानकुतूहलागत–
क्षपाचरस्त्रीचषकोपमेयताम् ॥५२॥

अन्वयः

पदे पदे शोणितपङ्कपातिनी दिनेश्वरस्य प्रतिबिम्बमालिका आपानकुतूहलागतक्षपाचरस्त्रीचषकोपमेयताम् अवापत् ।

व्याख्या

पदे-पदे प्रतिपदं क्षणे क्षण इत्यर्थः । शोणितस्य रुधिरस्य पङ्के कर्दमे "पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ" इत्यमरः । पातिनी प्रतिबिम्बिता दिनेश्वरस्य सूर्यस्य प्रतिबिम्बमालिका प्रतिबिम्बपंक्तिरापानस्य रुधिरपानस्य कुतूहलेनाऽऽगतानां क्षपाकरस्त्रीणां निशाचरीणां चषकाणां पानपात्राणां "चषकोऽस्त्री पानपात्रं" इत्यमरः । उपमेयतां सादृश्यमवापत् प्राप्तवती ।

भाषा

क्षण-क्षण में खून के कीचड़ में पड़ने वाले सूर्य के प्रतिबिम्बसमूह रक्तपान करने के उत्साह से आई हुई राक्षसियों के पानपात्रों की समता प्राप्त करते थे । अर्थात् गोल २ सूर्य प्रतिबिम्ब गोल २ पानपात्रों के ऐसे दीख पड़ते थे ।

लघु प्रहर्तुं प्रतिपक्षमक्षमः
प्रविष्टनाराचचयातिभारतः ।
भटेन केनापि सरोषमीक्षितः
प्रभूतवैलक्ष्यवता निजो भुजः ॥५३॥

अन्वयः

प्रभूतवैलक्ष्यवता केन अपि भटेन प्रविष्टनाराचचयातिभारतः प्रतिपक्षं लघु प्रहर्तुम् अक्षमः निजः भुजः सरोषम् ईक्षितः ।

व्याख्या

प्रभूतं बहुलं वैलक्ष्यं लज्जाऽस्त्यस्मिन् सः प्रभूतवैलक्ष्यवान् तेन नितान्तं लज्जितेन केनापि भटेन प्रविष्टानां भुजे प्रोतानां नाराचानां बाणविशेषाणां चयस्समूहस्तस्याऽतिभारतः बृहद्भारात् प्रतिपक्षं शत्रुं लघु द्रुतं "लघु क्षिप्रमरं द्रुतम्" इत्यमरः । प्रहर्तुमक्षमः अशक्तः निजः स्वीयः भुजः बाहू रोषेण सहितं सरोषं यथा स्यात्तथा ईक्षितः दृष्टः । एतेन तस्य युद्धोत्साहो ध्वन्यते ।

भाषा

अत्यधिक लज्जित किसी वीर ने, घुसे हुए बाणो के समूह के अधिक बोझ से विपक्षी वीर पर शीघ्रता से प्रहार करने में असमर्थ अपनी भुजा को क्रोधभरी दृष्टि से देखा।

भटेन नीतः श्रुतिहस्तखण्डना-
न्महाकरी निग्रहणोचितं विधिम्।
ममज्ज लज्जामिव धारयन्भृशं
कृशानुवर्णे रुधिरापगाभरे ॥५४॥

अन्वयः

भटेन श्रुतिहस्तखण्डनात् निग्रहणोचितं विधिं नीतः महाकरी कृशानुवर्णे रुधिरापगाभरे लज्जां भृशं धारयन् इव ममज्ज।

व्याख्या

भटेन योधेन श्रुत्योः कर्णयोर्हस्तस्य शुण्डादण्डस्य च खण्डनात् कर्तनात् निग्रहणस्य निरोधस्य "निग्रहस्तु निरोधःस्यात्" इत्यमरः। उचितमुपयुक्तं विधिं उपायं स्थानं वा नीतः प्रापितः करी हस्ती कृशानुवर्णे वह्निवर्णे "कृशानुः पावकोऽनल" इत्यमरः। रुधिरापगाभरे शोणितनदीप्रवाहे लज्जां त्रपां भृशमत्यर्थं धारयन्निव ममज्ज प्रविश्याऽधस्तलं पस्पर्श। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

भाषा

किसी वीर द्वारा दोनो कान और सूड के काट दिये जाने पर बेबस भया हुवा महागज अग्नि के ऐसी लाल खून की नदी के प्रवाह मे मानो अधिक लज्जा से डूब गया।

रदद्वयेन स्फुटितेन पाटनात्
परिस्फुटद्दन्तचतुष्टयद्युतिः।
अमर्त्यभावं भटपेटके भज-
त्यमर्त्यदन्तित्वमवाप कुञ्जरः ॥५५॥

अन्वयः

पाटनात् स्फुटितेन रदद्वयेन परिस्फुटद्दन्तचतुष्टयद्युतिः कुञ्जरः भटपेटके अमर्त्यभावं भजति (सति) अमर्त्यदन्तित्वम् अवाप।

व्याख्या

पाटनात् स्फुटितेन शस्त्रप्रहारात् मध्यभागाद्विदीर्णेन रदद्वयेन दन्तद्वयेन परिस्फुटन्ती प्रकटीभवन्ती दन्तचतुष्टयस्य द्युतिरिव द्युतिः कान्तिर्यस्य सः कुञ्जरः हस्ती भटानां पेटकस्समूह. "पिटकः पेटकः पेटा मञ्जूषा" इत्यमरः। तस्मिन् भटपेटकेऽमर्त्यभावं देवत्वं भजति गच्छति सत्यमर्त्यदन्तित्वमैरावतत्वमवाप प्राप्तवान्।

भाषा

शस्त्रप्रहार से दोनो दाँतों के बीच में से फट जाने के कारण चार दातों की शोभा को प्रकट करने वाला हाथी, भट समूह के अमर्त्यभाव अर्थात् देवत्व प्राप्त कर लेने से, अमर्त्य हस्तित्व अर्थात् देवो का हाथी ऐरावत के सादृश्य को प्राप्त हुआ।

विषाणिनां तीक्ष्णखुरप्रखण्डिताः
सुदूरमुड्डीय रदाङ्कुराश्च्युताः।
सुरप्रसूनावलिशङ्किभिर्भटै-
र्न वञ्चितास्तान्मुकुटेष्वताडयन् ॥५६॥

अन्वयः

विषाणिनां तीक्ष्णखुरप्रखण्डिताः मुदूरम् उड्डीय च्युताः सुरप्रसूनावलिशङ्किभिः भटैः न वञ्चिताः रदाङ्कुराः तान् मुकुटेषु अताडयन्।

व्याख्या

विषाणिनां दन्तिनां तीक्ष्णाः तीव्राः खुरप्राः बाणविशेषास्तैः खण्डिताः भिन्नाः सुदूरं दूरदेशमुड्डीयोत्प्लुत्य च्युता पतिताः सुरप्रसूनावलिः देवप्रक्षिप्त-पुष्पवृष्टिः तच्छङ्किभिः भटैर्न वञ्चिताः न परिहृताः रदाङ्कुराः करिदन्तावयवाः तान् भटान् मुकुटेषु शेखरेष्वताडयन् ताडयाञ्चक्रुः।

भाषा

विशिष्ट बाणो से काटे हुए, कुछ दूर तक आकाश में उछल कर नीचे गिरने वाले, वीरों से, देवताओ की पुष्प वृष्टि है ऐसा समझे जाने से न बचाए गए हुए, हाथियो के दाँतों के अवयव, वीरो के मुकुटो पर आ गिरते और आघात पहुँचाते थे।

अथ पतिं वरणार्थमागतानामप्सरसामुक्तीर्वर्णयति —

निवेशनीयौ न शिरीषकोमलौ
भुजौ त्वया संवरणस्रजः पदे ।
महार्घपुष्पे समयेऽत्र मेनके
द्युमालिकास्ते कलयन्ति लुब्धताम् ॥९७॥

अन्वयः

हे मेनके, त्वया संवरणस्रजः पदे शिरीषकोमलौ भुजौ न निवेशनीयौ अत्रमहार्घपुष्पे समये ते द्युमालिकाः लुब्धतां कलयन्ति ।

व्याख्या

हे मेनके त्वया भवत्या सम्वरणस्रजः पतिस्वीकारचिह्नभूतमालायाः पदे स्थाने "पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रि" इत्यमरः । शिरीषकोमलौ शिरीषपुष्पसुकुमारौ भुजौ बाहू न निवेशनीयौ न प्रापणीयौ, अत्र महार्घपुष्पे समयेऽस्मिन्नलभ्यकुसुमप्राप्तिकाले ते द्युमालिकाः स्वर्गोद्यानपालिकाः लुब्धतां पतिवरणाय समुत्सुकत्वं कलयन्ति प्रकटयन्ति ।

भाषा

अरे मेनका ! तू अपने सीरीस के फूल के ऐसे कोमल और नाजुक हाथो को स्वयवर की माला को पकडने के काम मे मत लगा । कठिनता से फूलो के प्राप्त होने के इस काल में स्वर्ग के बागो की मालिनें तेरे पति के चुनने के उत्साह को प्रकट कर देंगी । अर्थात् इस पुष्पाभाव के काल मे फूलो को तोड़ने का उन्हे पता लगकर वे तेरे भेद को प्रकट कर देंगी ।

न भर्तृदुर्भिक्षमिहास्ति मेनके
किमन्यया स्वीकृतमेव वाञ्छसि ।
विलोपयिष्यन्ति तव प्रगल्भतां
स्वयं परीक्षाविषये सुराङ्गनाः ॥९८॥

अन्वयः

हे मेनके, इह भर्तृदुर्भिक्षं न अस्ति । किम् अन्यया स्वीकृतम् एव वाञ्छसि सुराङ्गनाः परीक्षाविषये स्वयं तव प्रगल्भतां विलोपयिष्यन्ति ।

व्याख्या

हे मेनके, इहास्मिन्युद्धसमये भर्तृर्भिक्षं पतिन्यूनत्वं नास्ति, किं कथमन्यया कामिन्या स्वीकृतं वृतं पतिमेव त्वमपि वाञ्छसीच्छसि, सुराङ्गनाः देवाङ्गनाः परीक्षाविषये पतिश्रेष्ठत्वनिरीक्षणविषये स्वयमेव तव भवत्याः मेनकायाः प्रगल्भतां चातुर्यं धृष्टतां विलोपयिष्यन्ति दूरीकरिष्यन्ति। चातुर्यास्त्वदपेक्षया गुणवन्तं पतिं ग्रहीष्यन्ति तथा च तव किमपि चातुर्यं न चलिष्यति।

भाषा

अरे मेनका! इस युद्ध के समय मे पति प्राप्त होने का अभाव नही है। क्यो दूसरी स्त्री से चुने गये पति को ही तू चाहती है। देवों की स्त्रियाँ योग्य पति चुनने के सम्बन्ध में स्वयं तेरी चतुरता को नीचा दिखा देंगी। अर्थात् तू जिसे गुणवान् समझ कर चुनेगी उससे अधिक गुणवान् को ढूँढ लेगी और तेरी कोई चतुराई उनके आगे न चल सकेगी।

अमी विमानेष्वधिरोपितास्त्वया
मुधैव मूर्च्छामुकुलीकृतेक्षणाः।
अवाप्य संज्ञां कृतफालमुत्सुकाः
पतन्ति पश्य प्रधनाङ्गणे पुनः ॥५६॥

अन्वयः

त्वया मूर्छामुकुलीकृतेक्षणाः अमी मुधा एव विमानेषु अधिरोपिताः। संज्ञाम् अवाप्य उत्सुकाः (अमी) पुनः प्रधनाङ्गणे कृतफालं पतन्ति पश्य।

व्याख्या

त्वया भवत्या मूर्छया गतचेतनया मुकुलीकृते निमीलिते ईक्षणे नेत्रे यैस्ते अमी वीराः मुधैव वृथैव विमानेषु व्योमयानेष्वधिरोपिताः स्थापिताः। संज्ञां चेतनां "संज्ञा स्याच्चेतना नाम" इत्यमरः। अवाप्य प्राप्योत्सुकाः उत्कण्ठायुक्ताः पुनः युद्धकरणार्थं प्रधनस्य युद्धस्य "युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं" इत्यमरः। अङ्गणे युद्धभूमौ कृतफालं कृतोत्पतनं यथा स्यात्तथा पतन्ति गमिष्यन्तीति भावः। पश्यावलोकय।

भाषा

तूँने व्यर्थ ही मूर्छा से बन्द आँखो वाले इन वीरों को विमान पर चढा लिया है। ये उत्साही वीर होश मे आते ही फिर से उछलकर युद्धभूमि में कूद पड़ेंगे। याद रख।

विभिन्नमर्यादममुष्य चेष्टितं
भटस्य पश्य प्रथमातिथेरपि ।
विमानवातायनतो यदन्यया
विलोकितस्तां प्रति सत्वरोऽभवत् ॥६०॥

अन्वयः

प्रथमातिथेः अपि अमुष्य भटस्य विभिन्नमर्यादं चेष्टितं पश्य यत् अन्यया विमानवातायनतः विलोकितः तां प्रति सत्वरः अभवत्।

व्याख्या

प्रथमातिथेः सद्यः समागतस्याऽप्यमुष्य भटस्य विभिन्ना विश्रोटिता मर्यादा सीमा येन तत् विभिन्नमर्यादमन्यायपूर्णं चेष्टित व्यापारं पश्य। यद्यस्मात्कारणात् अन्यया कयाचित् कामिन्या विमानस्थवातायनं गवाक्षः "वातायनं गवाक्षोऽथ" इत्यमरः। तस्मात् विमानवातायनतः विलोकितः दृष्टस्सन् ताम्प्रति कामिनीं प्रति सत्वरः शीघ्रगतिरभवत् कामपूर्णोऽभवदित्यर्थः।

भाषा

इस पहिले पहिल आए हुए वीर का निर्मयाद और अनुचित व्यवहार देख। क्योकि विमान की खिरकी में से किसी अन्य सुन्दरी से देखा जाने पर वह उसके पास जाने के लिये उतावला हो गया अर्थात् उसके सुरूप को देखकर वह उस पर कामासक्त हो उठा और जो उसे लाई उसका कोई विचार न किया।

कयात्र माला प्रथमं समर्पिता
न वेद्मि वादे युवयोस्तदन्तरम् ।
तदेष सौभाग्यनिधिर्भटाग्रणीः
करोतु वाचा स्वयमेव निश्चयम् ॥६१॥

अन्वयः

युवयोः वादे कया अत्र माला प्रथमं समर्पिता तदन्तरं न वेद्मि तत् एषः सौभाग्यनिधिः भटाग्रणीः वाचा स्वयम् एव निश्चयं करोतु ।

व्याख्या

कापि कथयत्यन्याम्प्रति—युवयोः वादे विवादे सञ्जायमाने सति कया कामिन्याऽत्राऽस्मिन्वीरे माला सम्वरणस्रक् प्रथमं पूर्वं समर्पिता परिधापिता तदन्तरं मालार्पणपूर्वपश्चाद्भावं न वेद्मि तत्तस्मात्कारणादेषः सौभाग्यस्य प्रशस्त-भाग्यस्य निधिः स्थानभूतो भटाग्रणीः वीरश्रेष्ठः वाचा स्ववचनेन स्वयमेव आत्मनैव निश्चयं करोत्ववधारयतु ।

भाषा

कोई स्त्री कहती है कि तुम दोनो कामिनिओ के झगड़े में किसने पहिले स्वयवर माला पहिनाई इसका आगापीछा मै नही जानती। इसलिये यह भाग्यवान् योद्धाओ में श्रेष्ठ वीर ही किसने पहिले माला पहिनाई इस बात को स्वय अपनी वाणी से कहकर निश्चित करे ।

विलोभ्य सौभाग्यमदाद्भटोऽनया
सलीलमन्तर्हितया प्रतारितः ।
अयं स्मरान्धस्तरसा पराङ्मुखीं
भ्रमात्पिशाचीमुपसृत्य मुञ्चति ॥६२॥

अन्वयः

अनया सौभाग्यमदात् सलीलं विलोभ्य अन्तर्हितया प्रतारितः स्मरान्धः अयं भटः तरसा पराङ्मुखीं पिशाचीं भ्रमात् उपसृत्य मुञ्चति ।

व्याख्या

अनया कयाचिद्देवाङ्गनया सौभाग्यस्य सौन्दर्यविशेषस्य मदो गर्वस्तस्मात्सौभाग्यमदात् लीलया विलासेन सहितं सलीलं यथा स्यात्तथा विलोभ्य मोहयित्वाऽन्तर्हितया प्रच्छन्नया तया प्रतारितः वञ्चितः स्मरान्धः कामार्तोऽयं भटः तरसा वेगेन पराङ्मुखीं विमुखीं पिशाचीं प्रेताङ्गनां भ्रमात् भ्रमबुद्धया उपसृत्य समीपे गत्वा ततः पिशाचीं ज्ञात्वा मुञ्चति त्यजति ।

भाषा

किसी देवाङ्गना से अपने सौन्दर्य के मद से सहज ही में मोहित कर और बाद में अन्तर्धान होकर ठगा गया हुआ कामान्ध यह वीर, शीघ्रता से कुरूप पिशाची की ओर भ्रम से जाकर और पिशाची जानकर उसे छोड़ देता है।

न नारदादस्ति परो विशारदः
परोपकारप्रवणासु वृत्तिषु ।
क्षणात्समुत्पाद्य महारणानि यः
करोति नः कामुकदुर्गतिच्छिदम् ॥६३॥

अन्वयः

परोपकारप्रवणासु वृत्तिषु विशारदः नारदात् परः न अस्ति यः क्षणात् महारणानि समुत्पाद्य नः कामुकदुर्गतिच्छिदं करोति ।

व्याख्या

परोपकारे प्रवणासून्मुखीष्वासक्तासु वृत्तिषु मनोव्यापारेषु तदनुकूलशारीरिकव्यापारेषु च विशारदः विचक्षणः नारदात् परः नारदमुनेरन्यो नास्ति यः क्षणादल्पकालानन्तरमेव महारणानि घोरसङ्ग्रामान् समुत्पाद्य जनयित्वा नोऽस्माकमप्सरसां कामुकानां कान्तानां दुर्गतिं दारिद्र्यमभावं तस्य छिदं विनाशं प्रियपतिबाहुल्यमित्यर्थः। करोति सम्पादयति ।

भाषा

परोपकार करने में मानसिक और शारीरिक प्रवृत्ति रखने वाला, नारद-मुनि से अतिरिक्त दूसरा कोई नही है, जो क्षणभर में घोर सग्रामो को उभाड़ कर हम अप्सराओं के लिये कामुको के अभाव को नष्ट कर देते है। अर्थात् सग्राम में वीरो के मरने से अप्सराओ को कामुको की प्राप्ति विशेषता से होती है।

सहर्षमित्यप्सरसामजायत
प्रजागरं पञ्चशरस्य तन्वती ।
प्रवीरकण्ठग्रहरान्तकौतुक-
प्रधावितानां श्रवणामृतं कथा ॥६४॥

अन्वयः

पञ्चशरस्य प्रजागरं तन्वती सहर्षं प्रवीरकण्ठग्रहरान्तकौतुकप्रधावितानाम् अप्सरसाम् इति कथा श्रवणामृतम् अजायत ।

व्याख्या

पञ्चशरस्य कामस्य "कामः पञ्चशरः स्मरः" इत्यमरः । प्रजागरं प्रकृष्टप्रभावं तन्वती विस्तारयन्ती सहर्षं हर्षेण सहितं यथा स्यात्तथा प्रवीराणां प्रकृष्टभटानां कण्ठग्रहे आलिङ्गने रान्तेन समुत्पन्नेन कौतुकेनोत्कण्ठया प्रधावितानामप्सरसां देवाङ्गनानामिति पूर्वोक्ता कथाऽन्योन्यालापः श्रवणामृतं कर्णयोरमृतमिव पीयूषमिव अजायत । माधुर्ययुक्ता सरसा च जातेत्यर्थः ।

भाषा

हर्ष के साथ उत्तम वीरों का आलिङ्गन करने में समुत्पन्न उत्कण्ठा वाली अतएव शीघ्रता से दौड़ पड़ी हुई अप्सराओं की कामदेव के विशिष्ट प्रभाव को फैलाने वाली पूर्वोक्त बातें, सुनने मे अमृत के समान सरस और माधुर्ययुक्त मालुम होती थी ।

अत्रान्तरे नरपतिर्जयकुञ्जरस्य
ज्यानादनिष्ठुरमधिष्ठितपृष्ठपीठः ।
शिक्षाशरव्यवदरातिचमूभटानां
नाराचपंक्तिभिरपूरयदाननानि ॥६५॥

अन्वयः

अत्रान्तरे जयकुञ्जरस्य अधिष्ठितपृष्ठपीठः नरपतिः ज्यानादनिष्ठुरं (यथा स्यात्तथा) नाराचपंक्तिभिः अरातिचमूभटानाम् आननानि शिक्षाशरव्यवत् अपूरयत् ।

व्याख्या

अत्रान्तरेऽस्मिन्समये युद्धकाले जय एव हस्ति तस्य जयसंज्ञकहस्तिनो वा अधिष्ठितमध्यासितं पृष्ठमेव पीठमासनमथवा पृष्ठस्योपरि सुसज्जितं पीठमासनं "मुष्टिः पीठाद्यमासनम्" इत्यमरः । स्वर्णसिंहासनं येन सः नरपतिः विक्रमाङ्कदेवः ज्यायाः मौर्व्याः "मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः" इत्यमरः । नादेन निष्ठुरं कठोरं यथा स्यात्तथा नाराचाः बाणविशेषास्तेषां पंक्तिभिः श्रेणीभिररातेश्शत्रोः

चमूभटानां सेनास्थितयोधानामाननानि मुखानि शिक्षायाः अभ्यासस्य कृते शरव्यवत् विद्धलक्ष्यवदपूरयत् व्याप्तानि चकार। अतः परं वसन्ततिलकाच्छन्दः। तल्लक्षणं—उक्ता वसंततिलका तभजाः जगौ गः" इति।

भाषा

इसी बीच मे जय रूपी हाथी या जय नामक हाथी के पीठ रूपी आसन पर या पीठ पर के आसन पर अर्थात् सोने के सिंहासन पर बैठे हुए राजा विक्रमाङ्कदेव ने प्रत्यञ्चा के कठोर शब्द के साथ छोडे हुए विशिष्ट बाणों की पक्तियो से, अभ्यास करने के लिये बनाए हुए निशानो के समान, शत्रु सेना के योद्धाओ के मुखो को भर दिया।

आरोहकान्करिषु वाजिषु चाश्ववारान्
प्रोतान्पदातिनिवहांश्च विधाय भूमौ।
नामाङ्कितैरिषुभिरेष चुलुक्यवीर-
श्चोलस्य कीलितमशेषबलं व्यधत्त ॥६६॥

अन्वयः

एषः चुलुक्यवीरः नामाङ्कितैः इषुभिः आरोहकान् करिषु अश्ववारान् वाजिषु पदातिनिवहान् च भूमौ प्रोतान् विधाय चोलस्य अशेषबलं कीलितं व्यधत्त।

व्याख्या

एषः चुलुक्यवीरः चुलुक्यस्य चुलुक्यवंशस्य वीरः विक्रमाङ्कदेवः नामाङ्कितैः स्वनामचिह्नितैरिषुभिर्बाणैरथवाऽत्यन्ततीक्ष्णैर्बाणैरारोहकान् हस्तिपकान् हस्तिपृष्ठस्थितान् योधान् वा करिषु गजेष्वश्ववारानश्वारोहिणः वाजिष्वश्वेषु पदातिनिवहान् पादचारिसैनिकसमूहान् "पदातिपत्तिपदगपादातिकः" इत्यमरः। च भूमौ पृथिव्या प्रोताननुस्यूतान् विधाय कृत्वा चोलस्य चोलदेशाधिपस्याऽशेषबल सम्पूर्णसैन्यं कीलितं लोहशङ्कुना बद्धं व्यधत्त कृतवान्।

भाषा

इस चुलुक्यवश के वीर विक्रमाङ्कदेव ने अपना नाम खुदे हुए बाणों से या तीखे २ विशिष्ट बाणो से पीलवानो को या हाथीसवारो को हाथी पर, घोडसवारो को घोडो पर और पैदल सिपाहियों को पृथ्वी पर जड़ कर चोल राजा के सम्पूर्ण सैन्य को जड़ दिया अर्थात् विचेष्ट कर दिया।

ब्रूमः किमन्यदयमुत्सहते स्म यत्र
द्वय्येव तत्र गतिराविरभून्नृपाणाम् ।
कारागृहे पतनमाशु पलायनं वा
चोलोऽपि शीघ्रमपसारमतश्चकार ॥६७॥

अन्वयः

अन्यत् किम् ब्रूमः, अयं यत्र उत्सहते स्म तत्र नृपाणां द्वयी एव गतिः आविरभूत् । कारागृहे पतनम् आशु पलायनं वा । अतः चोलः अपि शीघ्रम् अपसारं चकार ।

व्याख्या

अन्यद्वस्तु कि ब्रूमः । अयं विक्रमाङ्कदेवो यत्र स्थले उत्सहते स्म रणोत्साहं कृतवान्, तत्र स्थले नृपाणां राज्ञां द्वय्येव गतिः प्रकारद्वयमेवाविरभूत् प्रकटीबभूव, नत्वस्य पराजयः । प्रथमा गतिः —कारागृहे बन्धनालये पतनं प्रवेशः द्वितीया गतिः—आशु शीघ्रं पलायनमपसरणं वाऽतः चोलोऽपि चोलदेशाधिपोऽपि शीघ्रं द्रुतमपसारं दूरगमनं पलायनं वा चकार ।

भाषा

अन्य बाते क्या कहे । यह विक्रमाङ्कदेव जिस स्थान पर जमकर अपना पराक्रम दिखा था वहाँ विपक्षी राजाओ के लिये दो ही गतियाँ थी । या तो वे पकडे जाकर कैदखाने मे बन्द कर दिये जाँय या शीघ्रता से रणभूमी से भाग जाँय । इसलिये चोल राजा भी शीघ्रता से वहाँ से भाग खडा हुआ ।

अथ शिथिलितचापश्चोललक्ष्मीं गृहीत्वा
कृतविविधविनोदस्तत्र काञ्चीनगर्याम् ।
निजनगरमगच्छत्प्रोच्छलत्सान्द्रसेना—
भरभरितदिगन्तः कुन्तलक्ष्माभुजङ्गः ॥६८॥

अन्वयः

अथ कुन्तलक्ष्माभुजङ्गः चोललक्ष्मीं गृहीत्वा शिथिलितचापः तत्र काञ्चीनगर्याम् कृतविविधविनोदः प्रोच्छलत्सान्द्रसेनाभरभरितदिगन्तः निजनगरम् अगच्छत् ।

व्याख्या

अथाऽनन्तरं कुन्तलक्ष्मायाः कुन्तलदेशस्य भुजङ्गोऽधिपो विक्रमाङ्कदेवः चोल-राजस्य लक्ष्मीं राज्यलक्ष्मीं गृहीत्वा शिथिलितः सरलितः चापः धनुर्यस्य सः तत्र काञ्चीनगर्यां चोलदेशराजधान्यां कृता विविधाः नानाप्रकाराः विनोदाः मनो-विहरणानि येन सः प्रोच्छलन्त्यः समुन्नमन्त्यः सान्द्रसेनाः निबिडसेनास्तासां भरेण समूहेन भरिताः व्याप्ताः दिगन्ताः येन सः एवं भूतः निजनगरं कल्याणपुरम-गच्छत्। अत्र मालिनीच्छन्दः। तल्लक्षणं यथा—"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः." ।

भाषा

कुन्तलदेश का राजा विक्रमाङ्कदेव, चोलराजा की राज्यलक्ष्मी को लेकर, धनुष को ढीलाकर उस काञ्चीनगरी में अनेक प्रकार के सैल सपाटे कर, विजय से उत्साहित घनी पलटनों के समूह से दिगन्तर को पूरित करते हुए अपनी नगरी कल्याणपुरी में प्रविष्ट हुआ ।

इति श्री त्रिभुवनमल्लदेव—विद्यापति—काश्मीरकभट्ट श्री बिल्हणविरचते विक्रमाङ्कदेवचरिते महाकाव्ये सप्तदश. सर्ग ।

नेत्राब्जाभ्रयुगाङ्कविक्रमशरत्कालेऽत्र दामोदरात्
भारद्वाजबुधोत्तमात्समुदितः श्रीविश्वनाथः सुधीः ।
चक्रे रामकुबेरपण्डितवरात्सम्प्राप्तसाहाय्यकः
सर्गे सप्तदशे रमाकरुणया टीकाद्वयं निर्मलम् ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्ति. ।

॥ श्रीः ॥

महाकविश्रीबिल्हणविरचितं

विक्रमाङ्कदेवचरितम्

अष्टादशः सर्गः

काश्मीरेषु प्रवरपुरमित्यस्ति मुख्यं पुराणां
यातं गौरीपरिणयविधौ साक्षितामिन्दुमौलेः ।
यस्यायान्ति प्रकृतिकुटिलास्ते वितस्तातरङ्गाः
स्वेच्छाधावत्कलियुगगजाधोरणत्वेऽङ्कुशत्वम् ॥१॥

अन्वयः

काश्मीरेषु इन्दुमौलेः गौरीपरिणयविधौ साक्षितां यातं पुराणां मुख्यं प्रवरपुरम् इति अस्ति । यस्य प्रकृतिकुटिलाः ते वितस्तातरङ्गाः स्वेच्छाधावत्कलियुगगजाधोरणत्वे अङ्कुशत्वम् आयान्ति ।

व्याख्या

काश्मीरेषु काश्मीरदेशेष्विन्दुश्चन्द्रः मौलौ शिरसि यस्य स तस्येन्दुमौलेः शङ्करस्य गौर्या पार्वत्या सह परिणयो विवाहः "परिणयोद्वाहः" इत्यमरः । तस्य विधौ विधाने करणे इत्यर्थः । साक्षितां तत्रैव प्रवरपुरे शिवपार्वत्योः परिणयो जात इत्यस्य प्रमाणकर्तृत्वं द्रष्टृत्वं वा यातं संप्राप्तं पुराणां नगराणां मुख्यं प्रधानं प्रवरपुरमिति काश्मीरनृपतिप्रवरसेननिर्मितकाश्मीरराजधान्यस्ति । यस्य पुरस्य प्रकृत्या स्वभावेन कुटिला वक्रास्ते वितस्तानदीतरङ्गाः स्वेच्छया निजेच्छानुसारं स्वतन्त्रमित्यर्थः । धावत्कलियुगमेव गजः हस्ती तस्याधोरणः हस्तिपकः "आधोरणा हस्तिपकाः" इत्यमरः । तस्य भावस्तस्मिन् आधोरणकर्तृककलियुगगज-कर्मकनियमनकारित्वेऽङ्कुशत्वं सृणिभावं "अङ्कुशोऽस्त्री सृणिः स्त्रियाम्"

इत्यमरः। आयान्ति प्राप्नुवन्ति। वितस्तातरङ्गाणां पावनत्वेन कलियुगस्य तत्र प्रवरपुरे गमननिवारणमनायाससुलभमिति भाव.। अस्मिन् सर्गे मन्दाक्रान्ताच्छन्दः। तल्लक्षणम्—मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसहयैर्म्भौ न तौ ताद् गुरुश्चेत्। अत्र उदात्तः, रूपकञ्चाऽलङ्कारः।

भाषा

काश्मीर देश में, महादेव का पार्वती के साथ विवाह होने का साक्षिभूत, नगरों मे मुख्य प्रवरपुर नाम का नगर है। जिस नगर के पास में बहने वाली वितस्ता नदी की प्रकृत्या टेढ़ी-मेढ़ी बहने वाली लहरें, अपनी इच्छा से जिधर चाहे उधर दौड़ पड़ने वाले कलियुग रूपी हाथी के पीलवान के कार्य को करती हुई *अङ्कुशता को प्राप्त होती है। अर्थात् वितस्ता की लहरों के पवित्र होने से कलियुग का प्रवरपुर में प्रवेश रोकना अत्यन्त सरल है।*

उद्यानेभ्यः सकलभुवनाश्चर्यमाधुर्यधुर्यं
पीत्वा द्राक्षारसमिव करैर्जातसन्तापशान्तिः।
ज्येष्ठाषाढेष्वपि कमलिनीकामुको यत्र धत्ते
रत्नश्रेणीकिरणकलिकाकोमलामंशुमालाम् ॥२॥

अन्वयः

यत्र कमलिनीकामुकः करैः उद्यानेभ्यः सकलभुवनाश्चर्यमाधुर्यधुर्यं द्राक्षारसं पीत्वा इव जातसन्तापशान्तिः (सन्) ज्येष्ठाषाढेषु अपि रत्नश्रेणीकिरणकलिकाकोमलाम् अंशुमालां धत्ते।

व्याख्या

यत्र प्रवरपुरे कमलिन्याः पद्मिन्याः कामुकः प्रियः सूर्यः करैः किरणैरुद्यानेभ्य आरामेभ्यः "पुमानाक्रीड उद्यानं" इत्यमरः। सकलभुवनस्याऽखिललोकस्याऽऽश्चर्यमाश्चर्यकारि माधुर्यं मधुरता तस्य धुर्यः धुरं वहतीति धुर्यस्तं सन्धारकं द्राक्षारसं पीत्वा इव जाता सन्तापस्य ग्रीष्मस्य शान्तिर्यस्य सः ज्येष्ठमासे आषाढमासे चापि रत्नानां श्रेणी तस्य किरणा एव कलिका पुष्पकोरकः "कलिका कोरकः पुमान्" इत्यमरः। इव कोमलां तामंशुमालां अंशूनां किरणानां माला तां धत्ते धारयति। सूर्यकर्तृकद्राक्षारसकर्मकपानक्रियायास्सन्तापशान्तौ हेतुत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षालङ्कारः। "सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्" इति मम्मटः।

भाषा

जिस प्रवरपुर में कमलिनी कामुक सूर्य अपनी किरणों से मानों वाटिकाओं में से समग्र भुवनो में आश्चर्यकारी मधुरता को धारण करनेवाले अंगूर रस का पान कर ग्रीष्म की गर्मी की शान्ति प्राप्त कर ज्येष्ठ और आषाढ के महीनो में भी रत्नसमूह के किरण रूपी कलियो के समान कोमल किरण समूहों को धारण करता था। अर्थात् जिस प्रकार रत्नसमूहो के किरणों में गर्मी नही रहती ऐसी कोमल किरणों को वहाँ सूर्य धारण करता था।

कृत्वा शैलं करतलतुलारूढमर्धेन्दुमौले-
हीस्यज्योत्स्नां दशसु विसृजन्दिक्षु दर्पाद्दशास्यः।
यस्मादुच्चैः स्फुरितमहसां ब्राह्मणानां निवासा-
च्छापत्रस्तस्त्वरितमगमद्दूरतः पुष्पकेण ॥३॥

अन्वयः

अर्धेन्दुमौलेः शैलं करतलतुलारूढं कृत्वा दशसु दिक्षु हास्यज्योत्स्नां विसृजन् दशास्यः शापत्रस्तः (सन्) पुष्पकेण उच्चैः स्फुरितमहसां ब्राह्मणानां निवासात् यस्मात् दूरतः त्वरितम् अगमत्।

व्याख्या

अर्धेन्दुश्चन्द्रः मौलौ शिरसि यस्य स तस्यार्धेन्दुमौलेः शैलं कैलासं करतलमेव हस्ततलमेव तुला तस्यामारूढं कृत्वा करतले समारोप्य दशसु दिक्षु हास्यस्याट्टहासस्य गर्वप्रकाशकस्य, ज्योत्स्नां प्रकाश विसृजन् विस्तारयन् दश आस्यानि मुखानि यस्य स दशास्यो रावणः शापत्रस्तो ब्राह्मणानां शापात् त्रस्तो भयभीतस्सन् पुष्पकेण विमानेनोच्चैः स्फुरितं चमत्कृतं महः तेजः येषान्ते तेषां ब्राह्मणानां विप्राणां निवासान्निवासाधारभूतात् यस्मात् प्रवरपुरात् दूरतः दूरस्थानं त्वरितं शीघ्रमेवाऽगमत्। कैलासवत्प्रवरपुरं करतलतुलारूढ न कृतम् तेजस्विद्विजशापादिति भावः। रावणकर्तृकदूरगमने ब्राह्मणशापभयस्य हेतुतया कल्पना द्वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः।

भाषा

अर्धचन्द्र को अपने ललाट पर धारण करने वाले शंकर भगवान् के कैलास पर्वत को अपने हाथ रूपी तराजू पर रख कर अर्थात् उठा कर और दसो

दिशाओं में गर्वप्रकाशक अपने अट्टाट्टहास के किरणों को फैलाता हुआ दस मुख वाला रावण शाप के डर से पीड़ित हो पुष्पक विमान से, बहुत अधिक मात्रा में जिनका तेज प्रसृत है ऐसे ब्राह्मणों के निवास स्थान प्रवरपुर से, दूर रह कर ही शीघ्रता से भाग गया। अर्थात् तेजस्वी ब्राह्मणों के शाप के भय से रावण ने कैलास पर्वत के समान प्रवरपुर को अपने हाथों से नहीं उठाया।

उत्तुङ्गानां मणिगृहभुवां यत्र वातायनेषु
व्याख्याभिख्याप्रणयिनि जगद्दुर्लभे सूरिचक्रे।
देवाः प्रोद्यद्विपुलपुलकाः किं न वर्षन्ति पुष्पै-
र्नाशङ्कन्ते यदि सुरगुरोस्तत्र वैलक्ष्यदीक्षाम् ॥४॥

अन्वयः

यत्र उत्तुङ्गानां मणिगृहभुवां वातायनेषु व्याख्याभिख्याप्रणयिनि जगद्दुर्लभे सूरिचक्रे प्रोद्यद्विपुलपुलकाः देवाः पुष्पैः किं न वर्षन्ति यदि तत्र सुरगुरोः वैलक्ष्यदीक्षां न आशङ्कन्ते।

व्याख्या

यत्र प्रवरपुरे उत्तुङ्गानामुन्नतानां मणिनिर्मितानां गृहाणां भवनानां भुवो भूमयस्तासां वातायनेषु गवाक्षेषु "वातायनं गवाक्षोऽथ" इत्यमरः। व्याख्या शास्त्रव्याख्यानं तस्याभिख्या शोभा "अभिख्या नामशोभयोः" इत्यमरः। तस्यां प्रणयि स्नेहयुक्तं तस्मिञ्जगति सम्पूर्णलोके दुर्लभं दुष्प्रापं सूरीणां विदुषां चक्रं समूहस्तस्मिन् प्रोद्यन् हर्षेण विलसन् विपुलः विशालः पुलकः रोमाञ्चः येषु ते प्रोद्यद्विपुलपुलका देवाः पुष्पैः कुसुमैः किं न वर्षन्ति वर्षणं न कुर्वन्ति, नूनमेव पुष्पवर्षां कुर्युः, यदि तत्र तस्मिन्पुष्पवृष्टिविषये सुरगुरोः बृहस्पतेः वैलक्ष्यदीक्षां लज्जागमं नाशङ्कन्ते सन्देहं न कुर्वन्ति।

भाषा

उस प्रवरपुर में ऊँचे-ऊँचे मणियों से बने घरो की खिडकियो में शास्त्र व्याख्यान की शोभा से प्रेम करने वाले, जगत् भर में न प्राप्त हो सकनेवाले विद्वद्मण्डल पर, हर्ष से अधिक रोमाञ्चित भये हुए देवता लोग क्या फूलों की वृष्टि न करते यदि वे अपने गुरु बृहस्पति को इससे लज्जा होगी ऐसी शङ्का न करते। अर्थात् वहाँ के विद्वान् लोग बृहस्पति से भी अधिक प्रतिभाशाली थे।

धत्ते यस्याः स्फटिकशुचिभिः कान्तिभिः क्षालयन्त्याः
स्थित्या गौरीगुरुरपि गिरिर्नूनमुच्चैः शिरांसि ।
गङ्गास्पर्धोद्धुरमधुमतीसैकतोत्तंसहंसी
विद्यारक्षाधिकृतमकरोत्सा स्वयं शारदा यत् ॥५॥

अन्वयः

गौरीगुरुः गिरिः अपि स्फटिकशुचिभिः कान्तिभिः क्षालयन्त्याः यस्याः स्थित्या नूनं शिरांसि उच्चैः धत्ते सा गङ्गास्पर्धोद्धुरमधुमती-सैकतोत्तंसहंसी शारदा स्वयं यत् विद्यारक्षाधिकृतम् अकरोत् ।

व्याख्या

गौर्याः पार्वत्याः गुरुः पिता गिरिः कैलासोऽपि (पण्डितोऽपि) स्फटिकमणीनां शुचिभिरुज्ज्वलाभिः तत्सदृशकान्तिभि· क्षालयन्त्याः यस्याः सरस्वत्याः स्थित्या तत्र निवासेन नूनं निश्चयेन शिरांस्युच्चैरुन्नतानि धत्ते धारयति । सा गङ्गायाः स्पर्धायां समानत्वाग्रहे उद्धुरा संनद्धा या मधुमती नदी तस्याः सैकतस्य तट-प्रदेशस्योत्तंसरूपा भूषणस्वरूपा हंसी शारदा सरस्वती स्वयं यत्पुरं प्रवरपुरं विद्याया रक्षयाधिकृतं स्वाधिकारे संनिवेशितमकरोत् ।

भाषा

कैलास पर्वत, स्फटिकमणियों की उज्वलकान्ति के समान कान्ति से उज्वल बनाने वाली जिस सरस्वती के वहाँ रहने से अपने मस्तक को अभिमान से ऊँचे उठाए हुए है, उस गङ्गा नदी की स्पर्धा करने में अर्थात् समानता धारण करने में संनद्ध मधमती नाम की नदी के तटप्रदेश का आभूषण रूप हंसी रूपी सरस्वती ने स्वयं जिस प्रवरपुर को विद्या की रक्षा से अपने अधिकार में कर लिया था ।

ब्रूमः सारस्वतकुलभुवः किं निधेः कौतुकानां
तस्यानेकाद्भुतगुणकथाकीर्णकर्णामृतस्य ।
यत्र स्त्रीणामपि किमपरं जन्मभाषावदेव
प्रत्यावासं विलसति वचः संस्कृतं प्राकृतं च ॥६॥

अन्वयः

सारस्वतकुलभुवः कौतुकानां निधेः अनेकाद्भुतगुणकथाकीर्णकर्णामृतस्य तस्य किं ब्रूमः यत्र अपरं किम् स्त्रीणाम् अपि वचः जन्मभाषावत् एव संस्कृतं प्राकृतं च प्रत्यावासं विलसति।

व्याख्या

सरस्वत्या इयमिति सारस्वती कुलभूरादिधाम तस्याः सारस्वतकुलभुवः सरस्वत्या आदिधाम्नः कौतुकानामाश्चर्याणां निधेराकरस्याऽनेकेऽद्भुताः गुणास्तेषां कथास्ताभिराकीर्णं पूरितं कर्णौष्वमृतं येन एवम्भूतस्य तस्य प्रवरपुरस्य विषये किं ब्रूमः। यत्र प्रवरपुरे अपरं किं किमपरं वक्तव्यं स्त्रीणामपि किं पुन पुंसां वचः जन्मभाषावत् एव मातृभाषेव संस्कृतं प्राकृतं च प्रत्यावासं गृहे गृहे विलसति स्फुरति।

भाषा

सरस्वती के आदिधाम, आश्चर्यों की निधि और अनेक अद्भुत गुणो के कथानकों के द्वारा जिसने कानो को अमृत से भर दिया है ऐसे उस प्रवरपुर के सम्बन्ध मे क्या (विशेष) कहा जाय। जहाँ, और तो क्या, स्त्रियो की भी बोली मातृभाषा के समान ही सस्कृत और प्राकृत मे प्रत्येक घर में सुनाई पड़ती है।

मन्ये मन्थाचलविदलितान्निर्गता दुग्धसिन्धो-
र्भृत्वा यस्मिन्नमृतलहरी सत्कवीनां वचांसि।
प्रेमाकूतं कुवलयदृशां शीकरैः पूरयन्ती
द्राक्षाखण्डेष्वमृतकिरणापाण्डुषु स्थैर्यमाप ॥७॥

अन्वयः

यस्मिन् मन्थाचलविदलितात् दुग्धसिन्धोः निर्गता अमृतलहरी सत्कवीनां वचांसि भृत्वा कुवलयदृशां प्रेमाकूतं शीकरैः पूरयन्ती अमृतकिरणापाण्डुषु द्राक्षाखण्डेषु स्थैर्यम् आप।

व्याख्या

यस्मिन्प्रवरपुरे मन्थाचलो मन्दरस्तेन विदलिताद्विलोडितात् दुग्धसिन्धोः क्षीरसागरान्निर्गता निस्सृताऽमृतलहरी पीयूषतरङ्गसन्ततिः सत्कवीनां सुकवीनां वचांसि वचनानि भृत्वा पूरयित्वा कुवलयदृशामिन्दीवरनयनानां प्रेमाकूतं प्रेम-

भावनां शीकरैरमृतकणैः पूरयन्ती व्याप्नुवानाऽमृतकिरणश्चन्द्रः तद्वदापाण्डुषु आसमन्तात् शुभ्रेषु द्राक्षाखण्डेषु मृद्वीकासमूहेषु "मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा स्वाद्वी मधुरसेति च" इत्यमरः। स्थैर्यं स्थिरतामाप। अत्राऽमृतस्याऽनेकत्राऽवस्थानवर्णनात्पर्यायालङ्कार.।

भाषा

जिस प्रवरपुर मे मन्दरपर्वत से मथे गये दुग्धसमुद्र से निकली अमृत की लहरे सत्कवियो की उक्तियों को भरकर, कमलनयनी कामिनियो की प्रेम भावनाओ को अमृतकणों से पूरित कर, चन्द्र के समान श्वेत अगूरो के समूहो में स्थिरता को प्राप्त हुई।

दुर्लक्ष्यत्वं कलियुगदृशां प्रापिते ब्रह्मधाम्ना
क्षिप्त्वा विद्याविभवमखिलं यत्र विश्वासधाम्नि।
स्थाने तत्र त्रिनयनगुरोर्निर्जने नूनमद्रेः
सा वाग्देवी भजति शमिताशेषतापा तपांसि ॥८॥

अन्वयः

शमिताशेषतापा सा वाग्देवी ब्रह्मधाम्ना कलियुगदृशां दुर्लक्ष्यत्वं प्रापिते विश्वासधाम्नि यत्र अखिलं विद्याविभवं क्षिप्त्वा तत्र त्रिनयनगुरोः अद्रेः निर्जने स्थाने तपांसि नूनं भजति।

व्याख्या

शमितः शान्ति प्राप्त अशेषः तापः सम्पूर्णसन्तापः यस्यास्सा, सा वाग्देवी सरस्वती ब्रह्मधाम्ना ब्राह्मणानां तेजसा कलियुगदृशां तुर्ययुगकृतावलोकनानां दुर्लक्ष्यत्वमदृश्यत्व प्रापिते विश्वासधाम्नि विश्वासपात्रे यत्र प्रवरपुरेऽखिलं समस्तं विद्याविभवं विद्याधनसम्पत्तिं क्षिप्त्वा निधाय तत्र तस्मिन् त्रिनयनगुरोः शिवश्वशुरस्याऽद्रेः पर्वतस्य, हिमालयस्य निर्जने स्थाने तपांसि नूनं भजति करोति।

भाषा

जिसका सम्पूर्ण सन्ताप शान्त हो गया है ऐसी सरस्वती, ब्राह्मणो के प्रताप से जहा कलियुग के दृष्टिकोणो का एक दम अभाव है ऐसे विश्वसनीय प्रवरपुर में सम्पूर्ण विद्या-वैभव को छोडकर उस हिमालय पर्वत के निर्जन स्थान मे अवश्य ही तपश्चर्या करती है।

तीरद्वन्द्वप्रणयिभवनव्रातवातायनस्थ-
स्वैरक्रीडोच्छलितमिथुनच्छिन्नहारावकीर्णा ।
यस्योत्सङ्गे कुलसरिदसौ नीलकण्ठप्रसूता
धत्ते तारातिलकितनभःसङ्गिगङ्गानुकारम् ॥९॥

अन्वयः

यस्य उत्सङ्गे तीरद्वन्द्वप्रणयिभवनव्रातवातायनस्थस्वैरक्रीडोच्छलित-मिथुनच्छिन्नहारावकीर्णा नीलकण्ठप्रसूता असौ कुलसरित् तारातिल-कितनभःसङ्गिगङ्गानुकारं धत्ते ।

व्याख्या

यस्य पुरस्योत्सङ्गेऽङ्के समीप इत्यर्थः । "उत्सङ्गचिह्नयोरङ्कः" इत्यमरः । तीरयोस्तटयोः "कुलं रोधश्च तीरं च प्रतीरं च तटं त्रिषु" इत्यमरः । द्वन्द्वं तस्य प्रणयिनस्तेषां तटद्वयस्थितानां भवनव्रातानां प्रासादसमूहानां वातायनेषु गवाक्षेषु "वातायनं गवाक्षोऽथ" इत्यमरः । तिष्ठन्तीति तादृशानि यानि स्वैरक्रीडोच्छलितानि स्वच्छन्दकेलिसमुत्सुकानि मिथुनानि कामिद्वन्द्वानि तैश्छिन्नैर्हारैरवकीर्णा व्याप्ता, नीलकण्ठप्रसूता महादेवात्समुत्पन्नाऽसौ प्रसिद्धा कुलसरित् वितस्ता ताराभिर्नक्षत्रैस्तिलकितं शोभितं नभ आकाशं तस्य सङ्गो तत्र विद्यमानायाः स्वर्गङ्गाया अनुकारमनुकृतिं धत्ते धारयति ।

भाषा

जिस प्रवरपुर के समीप में दोनो तटो पर विद्यमान मकानो की खिड़कियों में खड़े स्वच्छन्द विहार करनेवाले जोड़ों (स्त्री-पुरुषो) के टूटे हुए हारो से गिरे मोतियो से अवकीर्ण, महादेव से उत्पन्न यह वितस्ता नदी, ताराओ से सुशोभित आकाश मे रहनेवाली स्वर्गङ्गा का अनुकरण करती है ।

स्नानक्रीडाव्यसनसमये कुङ्कुमं कामिनीनां
यत्रोत्तार्य स्तनपरिसराद्गृह्णती कान्तमङ्के ।
ईर्ष्यामर्षादिव निरवधेर्वीचिहस्तैर्वितस्ता
कर्षत्यासां प्रतिकलमलिश्यामलान्केशपाशान् ॥१०॥

अन्वयः

यत्र वितस्ता कामिनीनां स्नानक्रीडाव्यसनसमये स्तनपरिसरात् कुङ्कुमम् उत्तार्य कान्तम् अङ्के गृह्णती निरवधेः ईर्ष्यामर्षात् इव वीचिहस्तैः आसाम् अलिश्यामलान् केशपाशान् प्रतिकलं कर्षति ।

व्याख्या

यत्र कश्मीरेषु प्रवरपुरे वितस्ता नदी अद्यत्वे 'झेलम' इति नाम्ना प्रसिद्धा, कामिनीनां स्त्रीणां स्नानक्रीडैव व्यसनं विहारस्तस्य समये स्तनपरिसरात् कुचप्रदेशात् कुङ्कुमं काश्मीरजं केसरमुत्सार्य प्रक्षाल्य कान्तं मनोज्ञं केसरं पक्षे वल्लभमन्यत्र रतमङ्के मध्ये उत्सङ्गे च गृह्णती निरवधेः निर्मर्यादात् ईर्ष्यामर्षादीर्ष्याजन्यकोपादिव वीचयस्तरङ्गाः "भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा स्त्रियां वीचिरथोर्मिषु" इत्यमरः । एव हस्तास्तैरासां स्त्रीणामलिवत् भ्रमरवत् "द्विरेफपुष्पलिट् भृङ्गषट्पदभ्रमरालयः" इत्यमरः । श्यामलान् कृष्णवर्णान् केशपाशान् प्रतिकलं प्रतिक्षणं कर्षति बलात् गृह्णाति । अत्र समासोक्तिरलङ्कारः ।

भाषा

जिस प्रवरपुर मे वितस्ता (झेलम) नदी, कामिनियो के स्नानक्रीड़ाविहार के समय मे स्तन पर पोते हुए केसर को धोकर पति को, पक्ष मे केसर को, अपनी गोद मे लेकर मानो अवधिरहित ईर्ष्याजनित क्रोध से लहर रूपी हाथो से इन कामिनियो के भौरो के ऐसे काले केशपाशों को प्रतिक्षण खीचती है ।

यस्मिन्कापि स्फुरति ललिता श्रीः कटाक्षच्छटासु
श्रीमद्भट्टारकमठपुरोपान्तसीमन्तिनीनाम् ।
या निश्शङ्कं श्रुतिकुवलयस्यापलापप्रवृत्ता
भग्ना किञ्चित्परिमलमिलद्भृङ्गकोलाहलेन ॥११॥

अन्वयः

यस्मिन् श्रीमद्भट्टारकमठपुरोपान्तसीमन्तिनीनां कटाक्षच्छटासु का अपि ललिता श्रीः स्फुरति । या श्रुतिकुवलयस्य निश्शङ्कम् अपलापप्रवृत्ता परिमलमिलद्भृङ्गकोलाहलेन किञ्चित् भग्ना ।

व्याख्या

यस्मिन् पुरे श्रीमतः शोभावतः भट्टारकमठस्य मठविशेषस्य पुरस्य मन्दिरस्योपान्ते प्रान्तदेशे वर्तमानानां सीमन्तिनीनां कामिनीनां कटाक्षच्छटासु काऽपि

विचित्रा ललिता मनोज्ञा श्रीः स्फुरति प्रकाशिता भवति। या श्रीः श्रुतिकुवलयस्य कर्णोत्पलस्य निश्शङ्कमपलापे निह्नवे "अपलापस्तु निन्हवः" इत्यमरः। प्रवृत्ता परिमलः सुगन्धस्तस्मिन् मिलन्तः समागतास्तौरभलोभेन, ये भृङ्गाः भ्रमरास्तेषां कोलाहलेन शब्देन किञ्चित् भग्नाऽल्पीभूता।

भाषा

जिस प्रवरपुर मे सुशोभित भट्टारकमठ के मन्दिर के समीप में विद्यमान कामिनिओं की तिरछी नजरो में कोई अवर्णनीय शोभा प्रकट होती है। जो शोभा कान पर के कमलों के शङ्कारहित अपलाप मे प्रवृत्त, सुगन्ध के कारण आनेवाले भौरों की झंकार से कुछ कम हो जाती है।

यस्मिन्सह्याः कथमशिथिलप्रेङ्खितभ्रूलतानां
किञ्चिल्लीलामसृणमुकुलाः कामिनीदृष्टयस्ताः।
यासां त्रासाकुलितहरिणप्रेयसीभङ्गुराणा-
मुत्सङ्गस्थः किमपि भजते चापलं पुष्पचापः ॥१२॥

अन्वयः

यस्मिन अशिथिलप्रेङ्खितभ्रूलतानां ताः किंचिल्लीलामसृणमुकुलाः कामिनीदृष्टयः कथं सह्याः त्रासाकुलितहरिणप्रेयसीभङ्गुराणां यासाम् उत्सङ्गस्थः पुष्पचापः किम् अपि चापलं भजते।

व्याख्या

यस्मिन्प्रवरपुरेऽशिथिलं गाढं यथा स्यात्तथा प्रेङ्खिताश्चञ्चलीकृताः भ्रुव एव लतास्तासां ताः किञ्चिल्लीलाया अपूर्वलीलाया मसृणकुड्मलस्वरूपाः कामिनीदृष्टयो जनैः कथं सह्याः सोढुं योग्याः। त्रासेन भयेनाऽऽकुलिता विह्वला हरिणप्रेयस्यो मृग्यः इव भङ्गुरास्तासां मृगीदृष्टिसदृशचाञ्चल्ययुक्तानां यासां दृष्टीनामुत्सङ्गस्थः मध्ये विद्यमानः पुष्पचापः कामः किमप्यनिर्वचनीयं चापलं चाञ्चल्यं भजते आश्रयति।

भाषा

जिस प्रवरपुर में घनी व चञ्चल भौं रूपी लताओं की वे अपूर्व लीला की कोमल कलियों के स्वरूप कामिनिओ की नजरें मनुष्यों द्वारा कैसे सहन की जा सकती हैं। भय से व्याकुल हरिणियों की दृष्टि के समान चञ्चल जिन नजरों

में विद्यमान कामदेव एक अवर्णनीय चपलता को धारण करता है। अर्थात् जिन कामिनिओ की तिरछी नजरो से घायल हो पुरुष कामासक्त हो जाते है।

यस्य भ्राम्यद्भ्रमरपटलश्यामकेलिद्रुमाणा-
मारामाणामविरलतया कोऽप्यसौ संनिवेशः।
यस्मिन्रामाः कुसुमधनुषं दृग्भिरुन्मार्गभर्ग-
क्रोधज्वालाकिसलयचये सुप्तमुत्थापयन्ति ॥१३॥

अन्वयः

यस्य भ्राम्यद्भ्रमरपटलश्यामकेलिद्रुमाणाम् आरामाणाम् अविरलतया कः अपि असौ संनिवेशः। यस्मिन रामाः दृग्भिः उन्मार्गभर्गक्रोधज्वालाकिसलयचये सुप्तं कुसुमधनुषं उत्थापयन्ति।

व्याख्या

यस्य प्रवरपुरस्य भ्राम्यन्तो भ्रमरा भृङ्गास्तेषां पटलानि समूहास्तैः श्यामाः कृष्णवर्णाः केलिद्रुमाः विलासवृक्षा येषु ते तेषामारामाणामुद्यानानामविरलतया बहुत्वेन कोऽपि विचित्रोऽसौ सन्निवेशः रचनाविशेषस्थानम्। यस्मिन् सन्निवेशे रामाः अङ्गनाः दृग्भिः[1] नेत्रैः स्वदृष्टिपातैरुन्मार्गस्य मर्यादाविहीनस्य भर्गस्य रुद्रस्य "हरः स्मरहरो भर्गस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः" इत्यमरः। क्रोधज्वालेव किसलयचये पल्लवसमूहे सुप्तं शयानं कुसुमधनुषं काममुत्थापयन्ति प्रोद्बोधयन्ति।

भाषा

जिस प्रवरपुर का, भ्रमण करने वाले भौंरो के समूहों से काले रग के दिखाई पड़ने वाले विलास वृक्षो से युक्त बागो की अधिकता से एक विलक्षण ही रचनावैशिष्ट्य दृष्टिगोचर होता हैं। जिसमें कामिनियाँ अपनी दृष्टिओं से मर्यादारहित शंकर की क्रोधज्वाला रूपी नूतन पत्तो पर सोए हुए कामदेव को जगाती हैं।

अङ्गाल्लङ्गापतितरलिताद्याः शिला विप्रकीर्णाः
प्राप्त्यै तासां स्फटिकशिखरी चेद्धि पर्युत्सुकोऽपि।

---

[1] दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव या।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुमो वामलोचनाः ॥ इति।

आस्ते गौरीपतिवृषखुरक्षोदचिह्नान्यपश्यन्
यद्गेहानां कलहविमुखः स्फाटिकेष्वङ्गणेषु ॥१४॥

अन्वयः

लङ्कापतितरलिताद् अङ्कात् याः शिलाः विप्रकीर्णाः तासां प्राप्त्यै स्फटिकशिखरी पर्युत्सुकः अपि यद्गेहानां स्फाटिकेषु अङ्गणेषु गौरीपति-वृषखुरक्षोदचिह्नानि अपश्यन् कलहविमुखः आस्ते ।

व्याख्या

लङ्कायाः पतिः स्वामी रावणस्तेन तरलितं समुत्थापनेन चञ्चलीकृतं तस्मादङ्कात् स्फटिकशिखरिण उत्सङ्गात् याः शिलाः स्फटिकोपलखण्डानि विप्रकीर्णा इतस्ततः विक्षिप्तास्तासां स्फटिकशिलानां प्राप्त्यै पुनर्ग्रहणाय स्फटिकशिखरी पर्युत्सुकः उत्कण्ठितः इच्छुकोऽपि यद्गेहानां यस्य पुरस्य गेहानां गृहाणां स्फाटिकेषु स्फटिकमणिनिर्मितेष्वङ्गणेष्वजिरेषु "अङ्गणं चत्वराजिरे" इत्यमरः । गौर्याः पतिः शिवस्तस्य वृषः वृषभस्तस्य खुरक्षोदः खुरन्यासस्तस्य चिह्नान्यपश्यन्ननवलोकयन् शिववृषभखुरन्यासचिह्नदर्शनाभावादेता एव मदीयाः स्फटिकशिला इति निश्चयाभावात्कलहविमुखः पुरस्थगृहे विन्यस्तस्फटिकशिलाग्रहणार्थं कलह-रहितः आस्ते ।

भाषा

रावण द्वारा उठाए गए कैलास पर्वत के हिलने से छटक कर उस पर्वत में से गिरी हुई स्फटिकशिलाओ को पुन प्राप्त कर लेने के लिये, कैलास पर्वत, उत्सुक होने पर भी उस प्रवरपुर के घरो के स्फटिक से बने आगनो में महादेव के वाहन रूप नन्दी वृष के खुरो से खुदे हुए चिह्नो से रहित स्फटिकशिलाओ को देखकर कलह करने में प्रवृत्त न हुआ ।

यक्षग्रस्ता धनपतिपुरी निष्कलङ्का न लङ्का
सातङ्केव त्रिदशनगरी मेरुपृष्ठेऽधिरूढा ।
इत्यप्राप्यप्रतिभटतया नूनमुच्चैः सगर्वं
यत्प्रद्युम्नक्षितिधरनिभादुत्तमाङ्गं बिभर्ति ॥१५॥

अन्वयः

यत् धनपतिपुरी यक्षग्रस्ता लङ्का निष्कलङ्का न त्रिदशनगरी

सातङ्का इव मेरुपृष्ठे अधिरूढा इति अप्राप्यप्रतिभटतया प्रद्युम्नक्षितिधरनिभात् उच्चैः उत्तमाङ्गं नूनं सगर्वं बिभर्ति।

व्याख्या

यत् पुरं प्रवरपुराख्यं धनपतेः कुबेरस्य पुर्यलकानगरी यक्षग्रस्ता यक्षैः ग्रस्ता गृहीता लङ्कापुरी न निष्कलङ्का राक्षसनिवासात् कलङ्करहिता न, त्रिदशानां देवानां "अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः" इत्यमरः। नगर्यमरालयः स्वर्गपुर्यमरावती सातङ्का भीतेव मेरुपर्वतपृष्ठेऽधिरूढाऽधिष्ठिता इति हेतोरप्राप्यप्रतिभटतया प्रतिपक्षप्राप्तेरभावात् प्रद्युम्नक्षितिधरनिभात्सारिकापर्वतव्याजादुच्चैरुन्नतमुत्तमाङ्गं शिरः "उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षं मूर्धा ना मस्तकोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। नूनं निश्चयेन सगर्वं यथा स्यात्तथा बिभर्ति धारयति।

भाषा

जो प्रवरपुर, कुबेर की नगरी अलकापुरी, यक्षो के द्वारा गृहीत होने से लका के, राक्षसो का निवास स्थान होने के कारण, कलङ्करहित न होने से, अमरावती देवनगरी के भयभीत होकर मेरुपर्वत पर जा बैठने से, किसी भी मुकाबला करने वाले के न होने से, सारिका पर्वत के मिष से अपने सिर को गर्व के साथ ऊपर उठाए हुए है। अर्थात् प्रवरपुर की शोभा को अलकापुरी, लङ्कापुरी और देवपुरी अमरावती भी नही प्राप्त कर सकती है।

काव्यं येभ्यः प्रकृतिसुभगं निर्गतं कुङ्कुमं च
च्छायोत्कर्षाद्भवति जगतां वल्लभं दुर्लभं च।
यस्मिन्नन्तःस्थितवति जगत्सारभूते प्रयाताः
काश्मीरास्ते नियतमुरगाधीशरक्षास्पदत्वम् ॥१६॥

अन्वयः

येभ्यः निर्गतं प्रकृतिसुभगं काव्यं कुङ्कुमं च छायोत्कर्षात् जगतां वल्लभं दुर्लभं च भवति। ते काश्मीराः जगत्सारभूते यस्मिन् अन्तःस्थितवति (सति) उरगाधीशरक्षास्पदत्वं नियतं प्रयाताः।

व्याख्या

येभ्यः काश्मीरेभ्यः निर्गतं समुत्पन्नं प्रकृत्या स्वभावेनैव सुभगं मनोहरं काव्यं कविकर्म कुङ्कुमं केसरं च छायायाः शोभायाः उत्कर्षादाधिक्याज्जगतां वल्लभं

प्रियं दुर्लभं दुःखेन लभ्यं च भवति। ते काश्मीराः जगतां सारभूते यस्मिन्पुरेऽन्तः स्थितवति मध्ये वर्तमाने सत्युरगाधीशस्तक्षकस्तस्य रक्षाया तक्षककर्तृकरक्षणस्याऽऽस्पदत्वं तत्कर्मत्वं नियतं निश्चयेन प्रयाताः प्राप्ताः। अस्मिन्नेवसर्गे सप्तति संख्याकःश्लोकोऽवलोकनीयः।

भाषा

जिन काश्मीरियो द्वारा बनाए हुए स्वभाव से ही मनोहर काव्य और उनके द्वारा उत्पन्न किए गए हुए स्वभाव से ही मनोहर केसर अत्यधिक सुन्दर होने से सर्वजगत् को प्रिय हैं और अन्यत्र सर्वत्र दुर्लभ हैं। ससार में सारभूत प्रवरपुर के काश्मीर मे रहने से काश्मीर सदा के लिये तक्षक की रक्षा का पात्र बन गया।

लीलाव-गत्सरसमसृणभ्रूविलासानि यासां
कन्दर्पस्त्री यदि युगशतैः शिक्षते वीक्षितानि।
रामाः श्यामारमणरुचयस्ताः कियत्यो न यस्मिन्
हर्षोत्तालाः सरणिषु रणत्काञ्चयः सञ्चरन्ति ॥१७॥

अन्वयः

यस्मिन् कन्दर्पस्त्री यासां लीलावल्गत्सरसमसृणभ्रूविलासानि वीक्षितानि यदि युगशतैः शिक्षते। ताः श्यामारमणरुचयः कियत्यः रामाः हर्षोत्तालाः सरणिषु रणत्काञ्चयः न सञ्चरन्ति।

व्याख्या

यस्मिन्पुरे कन्दर्पस्य कामस्य "कन्दर्पो दर्पकोऽनङ्गः कामः पञ्चशरः स्मरः" इत्यमरः। स्त्री रतिः यासां रामाणा लीलया विलासेन वल्गन्त उल्लसन्तस्सरसा मसृणाः कोमला भ्रूविलासाः येषु तानि वीक्षितानि दर्शनप्रकारान् यदि युगशतैः शिक्षते, यदि रतिः शिक्षते तदा युगशतैरेवेति भावः। ताः श्यामारमणश्चन्द्रस्तद्वद्रुचिः कान्तिर्यासान्ताः कियत्यो रामाः हर्षोत्तालाः आनन्दोन्मत्तास्सत्यः सरणिषु राजमार्गेषु रणत्काञ्चयः क्वणन्मेखलाः न सञ्चरन्ति न विचरन्ति सर्वा एव भ्रमन्तीत्यर्थः।

भाषा

जिस प्रवरपुर मे कामदेव की स्त्री रति, जिन कामिनिओ के विलास से

भरे सरस और कोमल भ्रूविलासो से युक्त देखने के विभिन्न प्रकारों को अगर सैकड़ों युगों में सीखती है अर्थात् यदि सीखती है तो सैकड़ों युगों में ही सीख सकती है। वे चन्द्रमा की कान्ति के समान कान्ति रखनेवाली कितनी नारियाँ आनन्द से उन्मत्त होकर राजमार्गों में करधनी के घुंघुरुओं को बजाती हुई नही चलती है अर्थात् चलती हैं।

देवोद्यानेष्वपि तिलकतां पुण्ययोगादवाप्तै-
विस्मर्यन्ते न खलु निखिलाश्चर्यसारा यदीयाः।
श्रीखण्डाम्भःस्नपितमुरलप्रेयसीगण्डपाण्डु-
द्राक्षाखण्डस्तबकितलतामण्डपास्ते वनान्ताः ॥१८॥

अन्वयः

देवोद्यानेषु अपि पुण्ययोगात् तिलकताम् अवाप्तैः (नरैः) यदीयाः निखिलाश्चर्यसाराः श्रीखण्डाम्भःस्नपितमुरलप्रेयसीगण्डपाण्डुद्राक्षाखण्डस्तबकितलतामण्डपाः ते वनान्ताः न खलु विस्मर्यन्ते।

व्याख्या

देवोद्यानेष्वपि नन्दनवनेष्वपि पुण्ययोगात् तिलकतां भूषणत्वमवाप्तैः प्राप्तैर्नरैः यदीयाः प्रवरपुरसम्बन्धिनः निखिलाश्चर्याणां सकलाद्भुतवस्तूनां सारभूताः श्रीखण्डाम्भसा चन्दनजलेन स्नपिताः मुरलदेशाङ्गनास्तासां गण्डवत्कपोलवत्पाण्डुवर्णाः द्राक्षाखण्डाः मृद्वीकासमूहाः "मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा स्वाद्वी मधुरसेति च" इत्यमरः। तैः स्तबकिताः सगुच्छाः लतामण्डपा येषु ते, ते रमणीया वनान्ता वनप्रदेशा न खलु विस्मर्यन्ते विस्मृतिपथं न समायान्ति। अतिमनोहरत्वात्स्वर्गेऽपि तेषां दौर्लभ्यम्।

भाषा

नन्दनवन में भी पुण्यप्रताप से श्रेष्ठत्व को प्राप्त भये हुए यहाँ के मनुष्यों को उस प्रवरपुर के सम्पूर्ण आश्चर्यकारी वस्तुओं के सारभूत चन्दन के जल से स्नान की हुई मुरलदेश की अङ्गनाओं के गालों के समान शुभ्र अगूरों के गुच्छों से युक्त लतामण्डप वाले वे रमणीय वनप्रदेश विस्मृत नही होते। अर्थात् प्रवरपुर के वनप्रदेश नन्दनवन के वन प्रदेशों से अधिक रमणीय थे।

अस्त्यन्योन्यग्रथितलहरीदोर्लताबन्धबन्धु-
र्मध्ये यस्य क्षपितकलुषः सङ्गमः पुण्यनद्योः ।
यस्योत्सङ्गे हलधरकृतास्ते जयन्त्यग्रहारा
ये धर्मस्य क्षतकलिभयाः शैलदुर्गीभवन्ति ॥१९॥

अन्वयः

यस्य मध्ये अन्योन्यग्रथितलहरीदोर्लताबन्धबन्धुः क्षपितकलुषः पुण्यनद्योः संगमः अस्ति । यस्य उत्सङ्गे ते हलधरकृताः अग्रहाराः जयन्ति ये क्षतकलिभयाः धर्मस्य शैलदुर्गीभवन्ति ।

व्याख्या

यस्य प्रवरपुरस्य मध्येऽन्योन्यं परस्परं ग्रथिताभिस्संयुक्ताभिर्लहरीभिस्तरङ्गैः दोर्लताबन्धस्य भुजाश्लेषस्य बन्धुस्सदृशः क्षपित विगतं कलुषं पापं "कलुषं वृजिनैनोऽघमंहो दुरितदुष्कृतम्" इत्यमरः । यत्र सः पुण्यनद्योः वितस्तासिंधुनद्योस्सङ्गमोऽस्ति । यस्य सङ्गमस्य मध्ये ते हलधरेणानन्तनृपामात्येन कृताः विरचिताः अग्रहाराः ब्राह्मणनिवासभूमयः जयन्ति येऽग्रहाराः क्षतं विनाशितं कलिभयं यैस्ते धर्मस्य शैलाः पर्वताः एव दुर्गाः दुर्गमस्थानानि भवन्ति । तत्र कलेः प्रवेशो नास्ति । ऋषितुल्याः ब्राह्मणास्तत्र विराजन्त इति भावः ।

भाषा

जिस प्रवरपुर के मध्य मे, एक दूसरे की संयुक्त लहरो से भुजाश्लेष की समानता रखने वाला, सब पापो को दूर करनेवाला, पवित्र वितस्ता और सिन्धु नदियो का सगम है। उस सगम के बीच मे राजा अनन्त के मन्त्री हलधर के बसाए हुए ब्राह्मणों के अग्रहार अर्थात् निवासस्थान शोभित हैं जो कलियुग के अधर्म जनित भय से रहित धर्म के पर्वतीय किले है।

यस्मिन्किञ्चिन्न तदुपवनं यत्र नो केलिवापी
नैषा वापी न विषमधनुष्कार्मणं यत्र रामाः ।
नासौ रामा मनसिजकथाघातभग्ना युवानः
कामं यस्या न निबिडतरप्रेमबन्धे पतन्ति ॥२०॥

अन्वयः

यस्मिन् तत् किञ्चित् उपवनं न यत्र केलिवापी नो। एषा वापी

न यत्र विषमधनुष्कार्मणं रामाः न। असौ रामा न यस्याः मनसिज-कथाघातभग्नाः युवानः निबिडतरप्रेमबन्धे कामं न पतन्ति।

व्याख्या

यस्मिन्प्रवरपुरे तत् किञ्चिदुपवनमारामो न यत्र केलिवापी नो। एवा वापी नाऽस्ति यत्र विषमधनुषः कामस्य कार्मणं वशीकरणसाधनं "वशक्रिया संवननं मूलकर्म तु कार्मणम्" इत्यमरः। रामाः न सन्ति। असौ रामा नास्ति यस्याः मनसिजस्य कामस्य "शम्बरारिर्मनसिजः कुसुमेषुरनन्यजः" इत्यमरः। कथाघातेन तत्प्रहारेण भग्ना युवानः निबिडतरप्रेमबन्धेऽतिघनप्रेमपाशे कामम-त्यन्तं न पतन्ति। अत्र एकावलीनामाऽलङ्कारः।

भाषा

जिस प्रवरपुर में ऐसा कोई उपवन अर्थात् बाग न था जिसमें क्रीड़ासर न हो। ऐसा कोई क्रीडासर न था जहाँ कामदेव के वशीकरण का साधन सुन्दरियाँ न हों। ऐसी कोई सुन्दरी न थी जिसकी काम की कथा से प्रभावित युवकगण दृढतर प्रेम के बन्धन में अधिकता से न फँस जाते हों।

यद्भूषायां विहितवपुषस्तस्य विश्वैकबन्धोः
स्फूर्तिः कीर्तेः पदमनुपमा सापि विद्यामठस्य।
यस्मिन्नङ्गीकृतकलकला मेखलाः कामिनीनां
पृष्ठे लग्नं कुसुमधनुषस्त्यक्षमप्याक्षिपन्ति ॥२१॥

अन्वयः

यद्भूषायां विहितवपुषः विश्वैकबन्धोः तस्य विद्यामठस्य सा अनुपमा स्फूर्तिः अपि कीर्तेः पदं (अस्ति)। यस्मिन् अङ्गीकृतकलकलाः कामिनीनां मेखलाः कुसुमधनुषः पृष्ठे लग्नं त्यक्तं अपि आक्षिपन्ति।

व्याख्या

यद्भूषायां यस्य पुरस्याऽलङ्करणाय विहितं कृतं वपुः शरीरं "गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः" इत्यमरः। स्वरूपं यस्य स तस्य विश्वस्य भुवन-स्यैकबन्धुरेकसहायको विद्याप्रचारद्वारा, तस्य विश्वैकबन्धोस्तस्य विद्यामठस्या-ध्ययनशालायाः सा प्रसिद्धाऽनुपमाऽतुला स्फूर्तिरौज्ज्वल्यं गौरवं वा कीर्तेः पदं

स्थानमस्ति। यस्मिन्मठेऽङ्गीकृतः स्वीकृतो धारितः कलकलः शब्दः याभिस्ताः कामिनीनां स्त्रीणां मेखलाः रशना. "स्त्रीकट्यां मेखला काञ्ची सप्तकी रशना तथा" इत्यमरः। कुसुमधनुषः कामस्य पृष्ठे पृष्ठभागे लग्नं त्र्यक्षमपि त्रीण्यक्षीणि यस्य स तं रुद्रमप्याक्षिपन्ति प्रहरन्ति। काव्यप्रकाशे—"दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः। विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुमो वामलोचनाः"।

भाषा

जिस प्रवरपुर का अलङ्कार स्वरूप, शरीरधारी, जगत् का विद्या प्रचार से कल्याण करने वाला विद्यामठ अर्थात् पाठशाला प्रसिद्ध व अनुपम गौरव से कीर्ति का स्थान है। जिस विद्यामठ में कलकल शब्द करने वाली कामिनिओं की करधनिया कामदेव के पीछे पड़े हुए शङ्कर भगवान् को डराती थी। अर्थात् शकर द्वारा कामदेव के भस्म कर दिये जाने पर भी वे कामदेव को वहाँ उज्जीवित कर लेती थी।

वैतस्तानां स खलु पयसां सङ्गमो यत्र चर्या-
मर्यादायाः कृतयुगभुवः पात्रभूतोऽद्भुतश्रीः।
दोलालीलातरलगतिषु प्रेङ्खिता यत्तरङ्गै-
रुत्सङ्गेषु त्रिदशसुदृशां देहभाजः पतन्ति ॥२२॥

अन्वयः

यत्र कृतयुगभुवः चर्यामर्यादायाः पात्रभूतः अद्भुतश्रीः सः खलु वैतस्तानां पयसां सङ्गमः, यत्तरङ्गैः दोलालीलातरलगतिषु प्रेङ्खिताः देहभाजः त्रिदशसुदृशाम् उत्सङ्गेषु पतन्ति।

व्याख्या

यत्र प्रवरपुरे कृतयुगे भवतीति कृतयुगभूस्तस्याः चर्यामर्यादायाः आचारविधेः पात्रभूतः स्थानभूतोऽद्भुतश्रीरद्भुतप्रभावः सः खलु प्रसिद्धो वैतस्तानां वितस्तासम्बन्धिनां पयसां जलानां सङ्गमः। यस्य सङ्गमस्य तरङ्गैरूर्मिभिः दोलालीलावत्तरलगतिषु प्रेङ्खिताः ऊर्ध्वमुत्क्षिप्ताः देहभाजः देहधारिणः त्रिदशानां "अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः" इत्यमरः। सुदृशामङ्गनानामप्सरसामुत्सङ्गेष्वङ्केषु पतन्ति गच्छन्ति। अत्र मृताः स्वर्गं प्राप्नुवन्तीति भावः।

भाषा

जिस प्रवरपुर में सत्ययुग की आचारविधियों का स्थान, अद्भुत शोभा रखनेवाला वितस्ता नदी के जलों का सङ्गम है। जिस सङ्गम की लहरों से झूला झूलने के समान तेज गति से ऊपर की ओर उठाए गये देहधारी मनुष्यगण अप्सराओं की गोद में पहुँच जाते हैं। अर्थात् स्वर्ग में पहुँच जाते हैं।

तत्पर्यन्तस्थितगुणनिकामण्डपं यत्र धत्ते
धाम व्योमाङ्गणतिलकतां क्षेमगौरीश्वरस्य।
रामा रामानुकरणविधौ यत्र नाट्यप्रयोगे
योगस्थानामपि सपुलकं गात्रमासूत्रयन्ति ॥२३॥

अन्वयः

यत्र पर्यन्तस्थितगुणनिकामण्डपं क्षेमगौरीश्वरस्य तत् धाम व्योमाङ्गणतिलकतां धत्ते। यत्र रामाः नाट्यप्रयोगे रामानुकरणविधौ योगस्थानाम् अपि गात्रं सपुलकम् आसूत्रयन्ति।

व्याख्या

यत्र प्रवरपुरे पर्यन्ते प्रान्तभागे स्थितो गुणनिकाया नृत्यस्य मण्डपो यत्र तत् क्षेमगौरीश्वरस्य तत् प्रसिद्धं धाम गृहं काश्मीरनृपतिक्षेमगुप्तनिर्मापितं शिवमन्दिरं व्योमाङ्गणस्याऽऽकाशस्य तिलकतां भूषणत्वं धत्ते। यत्र शिवमन्दिरे (क्षेमेसरदेउ इति काश्मीरभाषायां प्रसिद्धे) रामाः अङ्गना नाट्यप्रयोगे नाटकाभिनयक्रियायां रामानुकरणविधौ रमणीयाभिनयव्यापारे रामचन्द्राभिनयव्यापारे वा योगस्थानामपि योगिनां सिद्धानामपि गात्रं वपुः "गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः" इत्यमरः। सपुलकं सरोमाञ्चमासूत्रयन्ति जनयन्ति।

भाषा

जिस प्रवरपुर मे प्रान्त भाग में विद्यमान नांच के मण्डप वाला काश्मीर के राजा क्षेमगुप्त द्वारा बनवाया क्षेमगौरीश्वर महादेव का प्रसिद्ध मन्दिर आकाश रूपी आंगन के भूषणता को प्राप्त होता है अर्थात् वह मन्दिर बहुत ऊँचा है। जिसके नाच के मण्डप में सुन्दरियां नाट्यप्रयोग में रमणीय अभिनय कर या रामचन्द्र का अभिनय कर योगियों के शरीर को भी रोमाञ्चित बना देती है। अर्थात् जिस अभिनय को देखकर योगियों की समाधि छूट जाती है।

सङ्ग्रामोर्वीपरिवृढमठप्रान्तसीमन्तितोऽसौ
यस्मिन्नक्ष्णोर्वितरति सुधां चन्द्रसीमाप्रदेशः ।
यत्रानन्तक्षितिपतिकृतास्ते वितस्तोपकण्ठे
याताः कान्त्या हरधवलया हारतामग्रहाराः ॥२४॥

अन्वयः

यस्मिन् सङ्ग्रामोर्वीपरिवृढमठप्रान्तसीमन्तितः असौ चन्द्रसीमाप्रदेशः अक्ष्णोः सुधां वितरति । यत्र वितस्तोपकण्ठे अनन्तक्षितिपतिकृताः ते अग्रहाराः हरधवलया कान्त्या हारतां याताः ।

व्याख्या

यस्मिन्पुरे सङ्ग्रामनामोर्वीपरिवृढः पृथिव्या अधिपः "अधिभूर्नायको नेता प्रभुः परिवृढोऽधिपः" इत्यमरः । काश्मीरनृपतिः सङ्ग्रामराजस्तस्य मठप्रान्तभाग एव सीमन्तः सीमाप्रदेशस्सञ्जातोऽस्येति सङ्ग्रामोर्वीपरिवृढमठप्रान्तसीमन्तितोऽसौ चन्द्रसीमाप्रदेशः प्रदेशविशेषोऽक्ष्णोर्नयनयोः सुधाममृत "पीयूषममृतं सुधा" इत्यमरः । वितरति प्रक्षिपति । सुखं जनयतीत्यर्थः । यत्र वितस्तोपकण्ठे वितस्तानदीतटप्रान्तेऽनन्तेन क्षितिपतिना राज्ञा कृता. निर्मितास्तेऽग्रहाराः ब्राह्मणानां निवासाः हर इव शिव इव धवलया शुभ्रया कान्त्या हारतां भूषणत्वं याताः प्राप्ताः ।

भाषा

जिस प्रवरपुर मे, सङ्ग्राम नामक काश्मीर के राजा द्वारा बनवाए गए मठो के प्रदेशो से सीमित, चन्द्रसीमा प्रदेश आँखो में अमृत सिंचन करते हैं अर्थात् देखने में बड़े मनोहर मालुम होते हैं । जहाँ वितस्ता नदी के तट प्रान्त मे काश्मीर के राजा अनन्त द्वारा बनवाए गये ब्राह्मणो के अग्रहार महादेव की ऐसी शुभ्र कान्ति से वहाँ के भुषणरूप दीख पड़ते हैं । अर्थात् वे मोतीस्वरूप अग्रहार, गोलाई में होने से हार के ऐसे दीख पड़ते थे ।

गर्जद्धातायनविततयः शास्त्रगोष्ठीवरिष्ठैस्ताः काष्ठीलद्विजवसतयो यत्र नेत्रोत्सवाय ।
यासु त्रासं विदधति कलेर्दर्शनादेव विप्राः
सायं प्रातः प्रहुतहुतभुग्धूमधूम्रैः शिरोभिः ॥२५॥

अन्वयः

यत्र शास्त्रगोष्ठीवरिष्ठैः गर्जद्वातायनविततयः ताः काष्ठीलद्विजवसतयः नेत्रोत्सवाय यासु विप्राः सायं प्रातः प्रहुतहुतभुग्धूमधूम्रैः शिरोभिः दर्शनात् एव कलेः त्रासं विदधति ।

व्याख्या

यत्र यस्मिन्पुरे शास्त्राणां गोष्ठी व्याख्यानादि तत्र वरिष्ठैः निपुणैः विद्वद्भिः गर्जन्त्यो मुखराः वातायनानां विततयः विस्तारा यासु ताः काष्ठीलद्विजानां काष्ठील इति नामधेयब्राह्मणानां वसतयः निवासभूमयस्ताः प्रसिद्धगुणाः नेत्रोत्सवाय जननयनानन्दं वितरन्ति । यासु द्विजनिवासभूमिषु विप्राः ब्राह्मणाः सायं प्रातः प्रहुतः हुतभुगग्निस्तस्य धूमास्तैः धूम्रवर्णैशिरोभिः दर्शनादेवाऽस्मदर्शनेनैव कलेः त्रासं विदधति कलियुगं भाययन्तीति भावः ।

भाषा

जिस प्रवरपुर मे शास्त्रो के रहस्यो को बताने मे श्रेष्ठ विद्वानो से शब्दायमान खिडकियो के विस्तार से युक्त काष्ठील ब्राह्मणो की प्रसिद्ध निवासभूमियाँ दर्शको के नेत्रो को आनन्द देती है । जिन ब्राह्मणो की निवासभूमियो में, ब्राह्मण लोग, सुबह और शाम आहुति दी हुई अग्नि के धूओ से धूम्रवर्ण के अपने शिरो से कलियुग को देखने मात्र से भयभीत कर देते हैं ।

यत्रानन्तक्षितिपगृहिणीशङ्करागारपार्श्वे
तत्तुङ्गिम्ना त्रिभुवनमनोरञ्जनं गङ्गधाम ।
श्रुत्वा श्रुत्वा रुतमविरतं यत्र पारावतानां
दक्षाः कण्ठध्वनिषु शनकैः पौरकन्या भवन्ति ॥२६॥

अन्वयः

यत्र अनन्तक्षितिपगृहिणीशङ्करागारपार्श्वे तुङ्गिम्ना त्रिभुवनमनोरञ्जनं तत् गङ्गधाम, यत्र पौरकन्याः पारावतानाम् अविरतं रुतं श्रुत्वा श्रुत्वा शनकैः कण्ठध्वनिषु दक्षाः भवन्ति ।

व्याख्या

यत्र प्रवरपुरेऽनन्तनाम्नः क्षितिपस्य राज्ञः गृहिणी महिषी तस्याः सुभटानामिकायाः शङ्करागारमनन्तनृपगृहिणीनिर्मितं गौरीश्वरमन्दिरं तस्य पार्श्वे समीपे

तुङ्गिम्नोन्नतत्वेन हेतुना त्रिभुवनस्य त्रिलोकस्थितजनानां मनसो रञ्जनमानन्द-दायकं तत् प्रसिद्धं गञ्जधामाऽन्नागारं यत्राऽन्नागारे पुरि नगरे भवाः पौराः पुरवासि-जनास्तेषां कन्याः कुमार्यः पारावतानां कपोतानां "पारावतः कलरवः कपोतः" इत्यमरः । अविरतं निरन्तरं रुतं शब्दं श्रुत्वा श्रुत्वा शनकैरनायासमेव मन्दं मन्दं कण्ठध्वनिषु स्वकण्ठेन कपोतरवानुकरणे दक्षा. प्रवीणाः भवन्ति ।

भाषा

जिस प्रवरपुर मे काश्मीर के राजा अनन्त की राजमहिषी सुभटा के बनवाए हुए गौरीश्वर महादेव के मन्दिर के पास मे अपनी ऊँचाई से तीनो लोकों के मन को आनन्दित करने वाला वह प्रसिद्ध अन्नागार है, जहाँ पुरवासीजनो की कन्याएँ कबूतरों के लगातार गुटकने के शब्दों को सुन-सुनकर धीरे २ अनायास ही अपने गले से कबूतरो के शब्दो का अनुकरण करने में प्रवीण हो जाती है ।

यत्क्षेत्रेषु स्थितिमरचयद्वल्कलं यत्सिषेवे
जाने जैत्रं किमपि तपसस्तस्य माहात्म्यमेतत् ।
तत्रत्यस्य प्रथमवयसः स्त्रीजनस्याङ्गकानां
यत्काश्मीरं कनकसुहृदामन्तरङ्गत्वमेति ॥२७॥

अन्वयः

यत् क्षेत्रेषु स्थितिम् अरचयत् यत् वल्कलं सिषेवे; तस्य तपसः एतत् किम् अपि जैत्रं माहात्म्यम् (इति अहम्) जाने। यत् काश्मीरं तत्रत्यस्य प्रथमवयसः स्त्रीजनस्य कनकसुहृदाम् अङ्गकानाम् अन्तरङ्गत्वम् एति ।

व्याख्या

यत् (अत्र यदित्यनेन वाक्यार्थपरामर्शः) क्षेत्रेषु कुङ्कुमपक्षे केदारेषु तपस्वि-पक्षे तीर्थस्थानेषु स्थितिमरचयत् (तपः करणार्थं) निवासमकरोत् । यत् (यदि-त्यनेनात्रापि वाक्यार्थविमर्शः) वल्कलं, तपस्विपक्षे तरुत्वचं कुङ्कुमपक्षे आत्म-त्वचं सिषेवे भेजे धारितवदित्यर्थः । तस्य तपसः एतत् किमपि जैत्रं जयनशीलं माहात्म्यमित्यहं जाने । यद्यस्मात्कारणात् काश्मीरं कुङ्कुमं तत्रत्यस्य काश्मीर-देशीयस्य प्रथमवयसस्तरुणस्य स्त्रीजनस्य कनकसुहृदां सुवर्णसदृशानामङ्गकानां सुकुमाराङ्गानामन्तरङ्गत्वमङ्गानामन्तस्तले मध्ये लेपरूपेणैति प्राप्नोति । कुङ्कुमस्यैतत्सौभाग्यं यत्स्त्रीणां सुकुमाराङ्गानां स्पर्शो भवति ।

भाषा

मैं समझता हूँ कि केसर के क्षेत्र निवास (केसर पक्ष में खेतों में निवास तथा तपस्वी पक्ष में तीर्थस्थानों में निवास) और वल्कल धारण (केसर पक्ष में अपनी छाल तथा तपस्वी पक्ष मे वृक्षों की छाल पहिनना) रूप तपस्या का ही यह उत्कृष्ट जयनशील माहात्म्य है कि उसे काश्मीर की युवतियो के सुवर्ण की कान्ति वाले शरीरों का स्पर्श प्राप्त होता है। अर्थात् जैसे तपस्वी लोग तीर्थो में वास कर और वल्कल धारण कर तप करने का विशिष्ट फल प्राप्त करते हैं वैसे ही केसर ने खेतों में वास कर और अपनी छाल धारण कर तप करने से जयनशील माहात्म्य प्राप्त किया जिससे वह् वहा की युवती स्त्रियों का शरीर-स्पर्श प्राप्त कर सका।

गेहं यत्र प्रवरगिरिजावल्लभस्याद्भुतं तत्
केषामाशां सुरपतिपुरारोपणे नातनोति ।
यद्यातस्य प्रवरनृपतेर्द्यां शरीरेण सार्धं
स्वर्गद्वारप्रतिममुपरिच्छिद्रमद्यापि धत्ते ॥२८॥

अन्वयः

यत्र प्रवरगिरिजावल्लभस्य अद्भुतं तत् गेहं केषाम् आशां सुरपति-पुरारोपणे न आतनोति। यत् शरीरेण सार्धं द्यां यातस्य प्रवरनृपतेः स्वर्गद्वारप्रतिमम् उपरिच्छिद्रम् अद्य अपि धत्ते।

व्याख्या

यत्र पुरे प्रवरस्य प्रवरसेनस्य राज्ञः गिरिजायाः पार्वत्या वल्लभः प्रियः शिवस्तस्याद्भुतं तत् गेहं मन्दिरं केषां जनानामाशां मनोरथं सुरपतिपुरममरावती तस्मिन्नारोपणे प्रापणे नातनोति साहाय्यं न करोति सर्वेषां मनोरथस्समुत्पन्नो भवतीति भावः। काश्मीरनृपतिप्रवरसेननिर्मापितं यत् शिवमन्दिरं शरीरेणैहिकदेहेन सार्धं सह द्यां स्वर्गं यातस्य प्रवरनृपतेः स्वर्गद्वारप्रतिमं स्वर्गद्वार-सदृशमुपरिच्छिद्रं बिलं रंध्रं चाद्यापि धत्ते। अनेनैव मन्दिरस्थच्छिद्रेण स्वर्गद्वार-तुल्येन, प्रवरसेननृपतिः बहिर्निर्गत्य स्वर्गं प्रायेति भावः।

भाषा

जिस नगर में काश्मीर के राजा प्रवरसेन का बनवाया महादेव का आश्चर्य कारक मन्दिर किन लोगों की अमरावती मे पहुँच जाने की आशा को उत्पन्न

नही करता अर्थात् सबकी आशाओं को उत्पन्न करता है। जो शिवमन्दिर स्वर्ग में सशरीर जाने वाले राजा प्रवरसेन के स्वर्गद्वार तुल्य ऊपर बने हुए छेद को अभी भी धारण करता है।

दृष्ट्वा यस्मिन्नभिनयकलाकौशलं नाटकेषु
स्मेराक्षीणां मसृणकरणासङ्गदत्ताङ्गहारम् ।
रम्भा स्तम्भं भजति लभते चित्रलेखा न रेखां
नूनं नाट्ये भवति च चिरं नोर्वशी गर्वशीला ॥२९॥

अन्वयः

यस्मिन् नाटकेषु स्मेराक्षीणां मसृणकरणासङ्गदत्ताङ्गहारम् अभिनयकलाकौशलं दृष्ट्वा नाट्ये रम्भा स्तम्भं भजति चित्रलेखा रेखां न लभते उर्वशी च चिरं गर्वशीला नूनं न भवति।

व्याख्या

यस्मिन्पुरे नाटकेष्वभिनयेषु स्मेराक्षीणां विकसितनयनानां नर्तकीनां मसृणै रम्यैः करणासङ्गैर्भावाविष्करणैर्नाट्यभेदप्रयोगैर्दत्तोऽङ्गहारोऽङ्गविक्षेपो यस्मिंस्तदभिनयकलायाः कौशलं दृष्ट्वा समीक्ष्य नाट्ये रम्भा स्तम्भं भजति जडतामालम्बते चित्रलेखा रेखां न लभते स्मृतिपथं नायात्यग्रे गणनायां नायात्यमनोहरत्वादिति भावः। उर्वशी च चिरं बहुकालं गर्वशीला स्वकलायाः गर्विणी न भवति।

भाषा

जिस नगर में होनेवाले अभिनयो मे सुन्दर आँखवाली नाँचनेवाली नारिओ के सुन्दर करणासङ्गनामक भावव्यञ्जक अङ्गविक्षेप विशेष से युक्त अभिनय कला के कौशल को देखकर रम्भा नाम की अप्सरा भौचक्की हो जाती है, चित्रलेखा नामक अप्सरा की कोई गणना नही रह जाती और उर्वशी नामक अप्सरा का गर्व भी चिरस्थायी नही होता अर्थात् वह भी गर्व रहित हो जाती है।

यस्मिन्नुर्वीपतिगृहततेस्तुङ्गिमा वर्ण्यते किं
तस्याश्चञ्चतुरवनिताभूषितानेकभूमेः ।
जाने यस्यां कुसुमधनुषः स्वर्गरामामनांसि
क्रीडावातायनकृतपदस्यैव लक्ष्मीभवन्ति ॥३०॥

अन्वयः

यस्मिन् चञ्चच्चतुरवनिताभूषितानेकभूमेः तस्याः उर्वीपतिगृहततेः तुङ्गिमा किं वर्ण्यते। यस्यां स्वर्गरामामनांसि क्रीडावातायनकृतपदस्य कुसुमधनुषः एव लक्ष्मीभवन्ति (इति) जाने।

व्याख्या

यस्मिन्पुरे चञ्चन्तीभिरुल्लसन्तीभिश्चतुरवनिताभिः भूषिता अनेका भूमयः यस्याः तस्याः, तस्याः प्रसिद्धाया उर्वीपतिगृहततेस्सौधपरम्परायाः तुङ्गिमौन्नत्यं किं वर्ण्यते यस्यां गृहततौ स्वर्गस्य रामाणां कान्तानां मनांसि क्रीडावातायने कृतपदस्य स्थितस्य कुसुमधनुषः कामस्यैव लक्ष्मीभवन्ति वेध्यत्वमायान्ति इत्यहं जाने।

भाषा

जिस नगर मे उल्लसित चतुर कामिनियो से शोभित भूमि वाली राजा के घरो की परम्परा की ऊँचाई का क्या वर्णन किया जाय। जहाँ राजगृह परम्परा में स्वर्गीय नारियो के मन, क्रीडा की खिड़कियो मे विद्यमान कामदेव के निशानो के पात्र बन जाते हैं अर्थात् कामासक्त हो जाते हैं ऐसा मैं समझता हूँ। अर्थात् वे राजगृह अत्यधिक ऊँचे थे।

यत्र स्त्रीणां मसृणघुसृणालेपनोष्णा कुचश्री-
स्ताः कस्तूरीपरिमलमुचः पट्टिका राङ्कवाणाम्।
नौपृष्ठस्थाः शिशिरसमये ते वितस्ताजलान्तः-
स्नानावासाः प्रचुरमपि च स्वर्गसौख्यं दिशन्ति॥३१॥

अन्वयः

यत्र शिशिरसमये स्त्रीणां मसृणघुसृणालेपनोष्णा कुचश्रीः ताः राङ्कवाणां कस्तूरीपरिमलमुचः पट्टिकाः ते नौपृष्ठस्थाः वितस्ताजलान्तः-स्नानावासाः च अपि प्रचुरं स्वर्गसौख्यं दिशन्ति।

व्याख्या

यत्र पुरे शिशिरसमये शीतकाले मसृणघुसृणं सुखदं कुङ्कुमं तस्य लेपनेनोष्णा कुचश्रीः स्तनश्रीः, ताः प्रसिद्धाः राङ्कवाणां रङ्कुमृगरोमजानां "राङ्कवं मृगरोमजम्" इत्यमरः। कम्बलानां कस्तूरीपरिमलमुचः कस्तूरीसुगन्धयुक्ताः पट्टिकास्ते

प्रसिद्धाः नौपृष्ठे वर्तमानाः वितस्ताजलाभ्यन्तरे स्नानावासाः स्नानगृहाणि चापि प्रचुरं बहुलं स्वर्गस्य सौख्यमानन्दपरम्परां विधान्ति समर्पयन्ति ।

भाषा

जिस प्रवरपुर मे शीतकाल मे सुख देनेवाले केसर के लेप से गरम स्त्रियों के स्तनों की शोभा, वे राङ्कव सज्ञक मृग के रोवों से बने कस्तूरी की सुगन्ध देनेवाले (पश्मीना या तूस) कम्बल, और वे नौका में बने हुए वितस्ता नदी में स्नान करने के स्नानागार भी अत्यधिक स्वर्गीय सौख्य देते हैं ।

वक्त्रन्यस्तैस्तुहिनशकलैर्दन्तुरा वारिकुम्भाः
काश्मीरीणां सरसकदलीकोमला गात्ररेखाः ।
भीष्मग्रीष्मक्लमविरतये सर्वसाधारणत्वं
यस्मिन्नायान्त्यपि हिमशिलाशीतलानि स्थलानि ॥३२॥

अन्वयः

यस्मिन् वक्त्रन्यस्तैः तुहिनशकलैः दन्तुराः वारिकुम्भाः काश्मीरीणां सरसकदलीकोमलाः गात्ररेखाः हिमशिलाशीतलानि स्थलानि अपि भीष्मग्रीष्मक्लमविरतये सर्वसाधारणत्वम् आयान्ति ।

व्याख्या

यस्मिन्पुरे वक्त्रन्यस्तैः कुम्भमुखार्पितैः तुहिनशकलैः हिमखण्डैः दन्तुराः उन्नताः वारिकुम्भाः जलकलशाः, काश्मीरीणां काश्मीरदेशोद्भवानां कामिनीनां सरसकदलीवत्कोमलाः मसृणाः गात्ररेखाः शरीरयष्टयः, हिमशिलावच्छीतलानि स्थलान्यपि भीष्मस्य भयंकरस्य ग्रीष्मस्य क्लमः म्लानत्वं तस्य विरतयेऽपनोदाय सर्वसाधारणत्वं सर्वजनसुलभत्वमायान्त्याप्नुवन्ति ।

भाषा

जिस प्रवरपुर मे मुख पर जमे हुए बरफ के टुकड़ो से ऊपर उठे हुए जल से भरे घड़े, काश्मीर की कामिनिओ की कदली के समान रस भरी एव कोमल शरीर की आकृतियाँ और बरफ की चट्टान के ऐसी ठढी जमीन भी भयकर गर्मी की ग्लानि को दूर कर देने के लिए सर्वसाधारण को प्राप्त होती हैं ।

सत्यत्यागप्रमुखनिखिलोत्कर्षसम्पत्तिसीमा
तस्मिन्नासीदवनिवनितावल्लभोऽनन्तदेवः ।
वैरिस्तम्बेरमघनघटागर्जितानामगम्ये
चक्रे धारापयसि यदसेः कीर्तिहंसी निवासम् ॥३३॥

अन्वयः

तस्मिन् सत्यत्यागप्रमुखनिखिलोत्कर्षसम्पत्तिसीमा अवनिवनितावल्लभः अनन्तदेवः आसीत् । यदसेः वैरिस्तम्बेरमघनघटागर्जितानाम् अगम्ये धारापयसि कीर्तिहंसी निवासं चक्रे ।

व्याख्या

तस्मिन्प्रवरपुरे सत्यं त्यागश्च प्रमुखौ येषान्ते एवम्भूता निखिला ये उत्कर्षा एव सम्पत्तयस्तासां सीमा मर्यादास्वरूपोऽवनिः पृथिव्येव वनिता स्त्री तस्याः वल्लभः प्रियोऽनन्तदेवो राजाऽऽसीत् । यस्यासेः खड्गस्य "तृष्यां खड्गे तु निस्त्रिंशचन्द्रहासासिरिष्टयः" इत्यमरः । वैरिणां शत्रूणां स्तम्बेरमाः गजाः "इभः स्तम्बेरमः पद्मी यूथनाथस्तु यूथपः" इत्यमरः । त एव घनघटाः मेघसमूहास्तेषां गर्जितानि तेषामगम्येऽगोचरे धारापयसि खड्गधाराजले कीर्तिरूपहंसी निवासं चक्रे स्थितिं विदधे । अत्र रूपकालंकारः ।

भाषा

उस प्रवरपुर में सत्य त्याग आदि समग्र उत्कर्ष रूपी सम्पत्ति के सीमास्वरूप पृथ्वीरूपी स्त्री के पति राजा अनन्तदेव राज्य करते थे । शत्रु के हाथी रूपी मेघो की गर्जनाओं के लिये अगम्य जिसके खड्ग के धारारूपी जल में कीर्तिरूपी हंसी निवास करती थी । अर्थात् तलवार की तीखी धार से शत्रुओ का नाश करने से उसकी कीर्ति चारो ओर फैल गई थी ।

दत्वा शोकं शकपरिवृढप्रौढसीमन्तिनीनां
येन क्रीडाविदलितदरद्दीर्घदर्पः कृपाणः ।
अस्पृश्यानामिव परिचयाद्विभ्रता दोषशङ्कां
धौतः क्षोणीवलयजयिना जह्नुकन्याजलेषु ॥३४॥

अन्वयः

अस्पृश्यानां परिचयात् इव दोषशङ्कां बिभ्रता क्षोणीवलयजयिना येन शकपरिवृढप्रौढसीमन्तिनीनां शोकं दत्वा क्रीडाविदलितदरदीर्घदर्पः कृपाणः जह्नुकन्याजलेषु धौतः।

व्याख्या

अस्पृश्याना स्पर्शायोग्याना परिचयादिव सम्बन्धादिव दोषशङ्का बिभ्रता धारयता क्षोणीवलयजयिना पृथ्वीमण्डलविजेत्रा येन राज्ञाऽनन्तेन शकपरिवृढस्य शकनृपस्य प्रौढास्सीमन्तिन्योऽङ्गनास्तासा ताम्य इत्यर्थ । शोक दत्वा शकनृप विजित्येत्यर्थ । क्रीडया विलासेन विदलित खण्डित दरद दरदेशनृपते दीर्घो विशालो दर्पोऽहङ्कारो येन स कृपाण जह्नुकन्या गङ्गा "गङ्गा विष्णुपदी जह्नुतनया सुरनिम्नगा" इत्यमर । तस्या जलेषु धौत प्रक्षालित । अत्र वाच्येनोत्प्रेक्षालकारेण गङ्गातीरपर्यन्त साम्राज्यविस्ताररूप वस्तु व्यज्यते ।

भाषा

मानो अस्पृश्यो का स्पर्श हो गया है इस दोष का सन्देह रखने वाले समग्र पृथ्वी मण्डल को जीतने वाले जिस अनन्त राजा ने शक राजा की प्रौढ कामिनिओं को शोक में डालकर, खेलवाड़ म ही दरद्देश के राजा के अधिक अहकार को नष्ट कर देने वाले अपने खड्ग को गङ्गा जी के जल मे धो डाला था ।

कर्तुं कीर्त्या तिलकमलकागोपुराणां गतेन
क्रौञ्चस्याङ्के भृगुपतिशरच्छिद्रमद्रेर्विलोक्य ।
येन क्रीडालवशबलिताः पीवरे बाहुदण्डे
चण्डध्वाने धनुषि च रुषा सूत्रिता दृष्टिपाताः ॥३५॥

अन्वय.

कीर्त्या अलकागोपुराणां तिलकं कर्तुं गतेन येन क्रौञ्चस्य अद्रेः अङ्के भृगुपतिशरच्छिद्रं विलोक्य पीवरे बाहुदण्डे चण्डध्वाने धनुषि च क्रीडालवशबलिताः दृष्टिपाताः रुषा सूत्रिताः ।

व्याख्या

कीर्त्या यशसाऽलकागोपुराणां कुबेरपुरीद्वाराणां "पुरद्वार तु गोपुरम्" इत्यमर । तिलकमलङ्करण कर्तुं गतेन येनाऽनन्तनृपेण क्रौञ्चनाम्नोऽद्रेरङ्के

भूभुजः परशुरामस्य शराणां छिद्रं बिलं विलोक्य पीवरे परिपुष्टे बाहुदण्डे चण्डो ध्वानः शब्दो यस्य स तस्मिन् धनुषि च क्रीडालवेन क्रीडालेशेन शबलिता युक्ताः दृष्टिपाताः कटाक्षाः रुषाऽमर्षेण सूत्रिताः पातिताः। अत्र चतुर्दशसर्गे एकोनचत्वारिंशत्तमः श्लोकोऽनुसन्धेयः।

भाषा

अपने यश से कुबेर की नगरी अलकापुरी के फाटक को अलङ्कृत करने के लिए गए हुए राजा अनन्त ने क्रौञ्च नामक पर्वत के अङ्क में परशुराम के वाणों के छेद को देखकर, अपनी मोटी भुजा और प्रचण्ड शब्द करने वाले धनुष पर कुछ क्रीडा से युक्त अपने दृष्टिपातों को क्रोध पूर्वक डाला। अर्थात् परशुराम के किए काम को सहज समझ अपने जाने योग्य भी बड़ा छेद न होने से क्रोध आ गया कि यदि मेरी इस भुजा ने और मेरे इस धनुष ने छेद किया होता तो वह छेद केवल हंसों के ही आने जाने योग्य न होता किन्तु बड़ा होता।

सिद्धैरध्यासिततटभुवः स्नातसप्तर्षिहस्त-
न्यस्तभ्राम्यत्तिलतिलकितस्रोतसो मानसस्य।
यत्कान्ताभिः शिरसि विधृताः सारसौभाग्यलोभात्
कैलासस्थत्रिनयनवधूक्षालिताङ्गास्तरङ्गाः ॥३६॥

अन्वयः

सिद्धैः अध्यासिततटभुवः स्नातसप्तर्षिहस्तन्यस्तभ्राम्यत्तिलतिलकितस्रोतसः मानसस्य कैलासस्थत्रिनयनवधूक्षालिताङ्गाः तरङ्गाः यत्कान्ताभिः सारसौभाग्यलोभात् शिरसि विधृताः।

व्याख्या

सिद्धैः देवयोनिविशेषैः "पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः" इत्यमरः। अध्यासिताऽधिष्ठिता तटभूः (मानससरोवरस्य) तीरभूमिर्यस्य तस्य स्नाताः मानससरसि स्नाताः ये सप्तर्षयस्तेषां वसिष्ठादीनां हस्तैः करैर्न्यस्ताः निक्षिप्ताः भ्राम्यन्त इतस्ततश्चलन्तः तिलाः कृष्णतिला. पितृतर्पणार्थं दत्तास्तैस्तिलकितं विभूषितं स्रोतः प्रवाहो यस्य तस्य मानसस्य मानससरोवरस्य कैलासनाम्नि पर्वते स्थिता या त्रिनयनवधूः पार्वती तया क्षालितान्यभिषिक्तान्यङ्गानि येषु ते तरङ्गाः ऊर्मयः "भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा स्त्रियां वीचिरथोर्मिषु" इत्यमरः। यस्या-

नन्तनृपस्य कान्ताभिरन्तःपुराङ्गनाभिस्सारभूतस्योत्कृष्टतमस्य सौभाग्यस्य लोभात प्राप्त्याशया शिरसि विधृताः धारिताः । अत्र काव्यलिङ्गालङ्कारः ।

भाषा

सिद्धों से अधिष्ठित तट प्रदेश वाले, स्नान के अनन्तर वशिष्ठ आदि महर्षियों के हाथों से पितृतर्पण में छोड़े हुए इधर-उधर बहने वाले काले तिलों से शोभित प्रवाह वाले मानसरोवर के, कैलाश पर्वत पर रहने वाली पार्वती के स्नान से पवित्र तरङ्ग, राजा अनन्त की रानियों द्वारा उत्कृष्ट सौभाग्य की प्राप्ति की आशा से, अपने मस्तकों पर श्रद्धा से धारण किये जाते थे ।

यः मन्तोषं चरितविषये पूर्वपुंसां न भेजे
सारग्राही रघुपतिकथामत्सरादेकवीरः ।
चक्रुः क्रीडोद्धृतहरगिरेस्ते हि रोहत्कलङ्का
लङ्काभर्तुर्भुजतरुवनच्छेदनं नार्धचन्द्रैः ॥३७॥

अन्वयः

एकवीरः रघुपतिकथामत्सरात् सारग्राही यः पूर्वपुंसां चरितविषये सन्तोषं न भेजे । हि ते रोहत्कलङ्काः क्रीडोद्धृतहरगिरेः लङ्काभर्तुः भुजतरुवनच्छेदनं अर्द्धचन्द्रैः न चक्रुः ।

व्याख्या

एकोऽप्रतिमः वीर इत्येकवीरः रघुपते रामस्य कथा शौर्यवृत्तान्तस्तस्य मत्सरात् द्वेषात् "मत्सरोऽन्यशुभद्वेषे" इत्यमरः । सारं तत्वं गृह्णातीति सारग्राही यथार्थवीरताज्ञाता योऽनन्तराजा पूर्वपुंसां पूर्वजानां चरितस्य पराक्रमस्य विषये सन्तोषं मनःप्रह्लादं न भेजे न सिषेवे । हि यतस्ते प्रसिद्धाः रोहत्कलङ्काः समुत्पन्नपापाः क्रीडया विलासेन हेलयैव न तु परिश्रमेणोद्धृतोत्पाटितः धारितः हरस्य गिरिः पर्वतः कैलासो येन स तस्य लङ्काभर्तु रावणस्य भुजा बाहव एव तरवो वृक्षास्तेषां वनं गहनं "अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्" इत्यमरः । तस्य छेदनं कर्तनं अर्धचन्द्रैर्बाणविशेषैः न चक्रुः न कृतवन्तः । रघुपतिरर्धचन्द्रैर्बाणविशेषैः रावणस्य भुजतरुवनच्छेदनं चकार । पूर्वजैस्तु तादृशः पराक्रमो न प्रदर्शितः । अहं तु रामसदृशपराक्रमवानिति भावः ।

भाषा

यथार्थ वीरता का ज्ञान रखनेवाला अप्रतिम वीर राजा अनन्त रामचन्द्र की कथा के मत्सर से, अर्थात् रामचन्द्र को यथार्थ वीर मानकर, अपने पूर्ववर्ति राजाओं के पराक्रम के सम्बन्ध में सन्तुष्ट नहीं हुआ। क्योंकि उन अपयश के पात्र पूर्ववर्ती राजाओ ने खेलवाड़ में कैलाश को उठा लेनेवाले लङ्का के राजा रावण के भुजा रूपी वृक्षों के जंगल का छेदन, बाणविशेष से नही किया। अर्थात् राम ने जो पराक्रम दिखाया वह मेरे में है किन्तु पूर्ववर्ती राजाओं मे वह पराक्रम नही था।

चम्पासीम्नि क्षितिपतिकथाधाम्नि दार्वाभिसारे
त्रैगर्तीषु क्षितिषु भवने भर्तुलक्षोणिभर्तुः।
क्रीडाशैलीकृतहिमगिरेर्हासभीतेव यस्य
भ्राम्यत्याज्ञा सुकृतवसतेर्भूः प्रतापोदयानाम् ॥३८॥

अन्वयः

सुकृतवसतेः यस्य प्रतापोदयानां भूः आज्ञा क्रीडाशैलीकृतहिमगिरेः हासभीता इव (शीतभीतेति पाठे शीतभीता इव) चम्पासीम्नि क्षितिपतिकथाधाम्नि दार्वाभिसारे त्रैगर्तीषु क्षितिषु भर्तुलक्षोणिभर्तुः भवने भ्राम्यति।

व्याख्या

सुकृतानां पुण्यकर्मणां वसतिरास्पदं तस्य सुकृतवसतेर्यस्याऽनन्तनृपस्य प्रतापः कोशदण्डजं तेज. "स प्रतापः प्रभावश्च यत्तेजः कोशदण्डजम्" इत्यमरः। प्रकृष्टतापश्च तस्योदयोन्नतयस्तेषां भूरुत्पत्तिस्थानमाज्ञा क्रीडाशैलीकृतः क्रीडापर्वतीकृतो हिमगिरिः कैलासः येन तस्य शिवस्य हासात् हास्याद्भीतेर्वाऽथवा कैलासस्य शीतभीतेव चम्पासीम्नि चम्पानामधेयदेशप्रान्तेषु क्षितिपतिर्लोहराधिपः क्षितिराजस्तस्य कथाया धाम्नि स्थाने दार्वाभिसारे देशविशेषे त्रैगर्तीषु त्रिगर्तसम्बन्धिनीषु क्षितिषु भर्तुलक्षोणिभर्तुः भर्तुलक्षोणिर्देशविशेषस्तस्या भर्तुस्स्वामिनः भवने गृहे भ्राम्यति भ्रमणं करोति।

भाषा

जिस पुण्यात्मा राजा अनन्त के प्रताप की उन्नति का स्थानभूत उसकी आज्ञा, हिमालय को अपना क्रीडापर्वत बनाने वाले शंकर के हास से मानों भयभीत होकर चम्पादेश की सीमा पर, लोहराधिप राजा की कथा के प्रसिद्ध

स्थान में, दार्वाभिसार में, त्रिगर्तदेश वाली भूमि पर और भर्तृलप्रदेश के राजा के भवन मे फैली हुई है ।

कृत्वा मध्ये मठमनुपमोत्तुङ्गदुर्गानुकारं
वैतस्तेन ग्रथितपरिखारेखमम्भोभरेण ।
लग्नाः शृङ्गैर्नभसि विजयक्षेत्रभट्टाग्रहाराः
प्राकारत्वं कलिभयभिदे येन धर्मस्य नीताः ॥३९॥

अन्वयः

येन वैतस्तेन अम्भोभरेण ग्रथितपरिखारेखम् अनुपमोत्तुङ्गदुर्गानुकारं मठं मध्ये कृत्वा नभसि शृङ्गैः लग्नाः विजयक्षेत्रभट्टाग्रहाराः कलिभयभिदे धर्मस्य प्राकारत्वं नीताः ।

व्याख्या

येनाऽनन्तनृपेण वितस्तानदीसम्बन्धिनाऽम्भसां जलानां भरस्समूहस्तेन ग्रथिता निर्मिता परिखा दुर्गादिपरितः खात तद्रूपा रेखा यस्य स तमनुपमोत्तुङ्गोऽतुलोत्तुङ्गोऽत्युन्नतो यो दुर्गस्तस्यानुकारोऽनुकरणं सादृश्यं यस्य स तं मठं मध्ये वितस्तान्तर्द्वीपमध्ये कृत्वा रचयित्वा नभस्याकाशे शृङ्गैः शिखरैः "कूटोऽस्त्री शिखर शृङ्गं" इत्यमरः । लग्नास्संलग्नाः विजयक्षेत्रं विजयक्षेत्रेश्वरनामधेयः प्रदेशविशेषस्तस्य भट्टाः भट्टब्राह्मणास्तेषामग्रहाराः निवासाः कलिभयभिदे कलियुगभयापनोदनाय धर्मस्य प्राकारत्वं प्राचीरत्वं नीताः धर्मस्य संरक्षणाय रचिता इति भाव ।

भाषा

जिस अनन्त राजा ने वितस्ता नदी के जलसमूह से पूरित चारो ओर खाइयो वाला, खूब ऊंचे किले का अनुकरण करने वाला मठ बीच में बनाकर विजय क्षेत्र के भट्ट ब्राह्मणो के आकाश को छूने वाले निवासस्थानो को कलियुग का भय दूर करने के लिए धर्म की रक्षा के हेतु धर्म की चहार दिवारी के रूप में स्थापित किया ।

देवी तस्य प्रचुरयशसश्चन्द्रिकेवेन्दुजाता
याता ख्यातिं जगति सुभटेत्यादिमार्या बभूव ।
मन्ये यस्याः स्थितिमनुपमां सापि कुण्ठानुकर्तुं
वैकुण्ठोरःस्थलजलधरोत्सङ्गसौदामिनी श्रीः ॥४०॥

अन्वयः

प्रचुरयशसः तस्य इन्दुजाता चन्द्रिका इव जगति ख्यातिं याता सुभटा देवी इति आविर्भार्या बभूव। यस्याः अनुपमां स्थितिम् अनुकर्तुं सा वैकुण्ठोरःस्थलजलधरोत्सङ्गसौदामिनी श्रीः अपि कुण्ठा (इति) मन्ये।

व्याख्या

प्रचुरं बहुलं यशो यस्य सः प्रचुरयशास्तस्य प्रचुरयशसस्तस्याऽनन्तराजस्य इन्दोश्चन्द्राज्जाता जालन्धराधिपादिन्दुचन्द्राज्जाता समुत्पन्ना चन्द्रिका इव ज्योत्स्नेव जगति लोके ख्यातिं दानदयादाक्षिण्यादिगुणैः प्रसिद्धिं याता सुभटा[1] देवीति नाम्ना प्रसिद्धाऽऽदिभार्या ज्येष्ठभार्या पट्टमहिषी बभूव। यस्यास्सुभटायाः अनुपमामतुलनीयां स्थितिं सौभाग्यमनुकर्तुं सा वैकुण्ठस्य नारायणस्य "विष्णुर्नारायणः कृष्णो वैकुंठो विष्टरश्रवाः" इत्यमरः। उरःस्थलमेव जलधरो मेघस्तस्योत्सङ्गोऽङ्कः तस्य सौदामिनी विद्युत्स्वरूपा श्रीः लक्ष्मीरपि कुण्ठाऽसमर्था इतीत्यमहं मन्ये।

भाषा

अत्यधिक यश वाले उस अनन्त राजा की जालन्धर के राजा इन्दुचन्द्र से उत्पन्न चन्द्रमा से उत्पन्न चाँदनी के समान, जगत् मे दान दया दाक्षिण्यादि गुणो से प्रसिद्ध सुभटा देवी नाम की पटरानी थी। जिस सुभटा देवी के अनुपम सौभाग्य का अनुकरण करने में विष्णु के वक्षस्थल रूपी मेघ में रहनेवाली लक्ष्मी रूपी बिजली भी असमर्थ थी, ऐसा मैं समझता हूँ।

तस्यास्त्यागव्रतविलसिते कः परिच्छेदमुद्रा-
मारिष्कर्तुं प्रभवति दयाक्षान्तिदाक्षिण्यसीम्नः।
लक्ष्मीं यस्याः क्षितितलगतां पाददासीमकार्षीत्
भर्तुः क्षोणीपतिशतशिखारत्नशाणः कृपाणः॥४१॥

अन्वयः

दयाक्षान्तिदाक्षिण्यसीम्नः तस्याः त्यागव्रतविलसिते परिच्छेदमुद्राम् आविष्कर्तुं कः प्रभवति। यस्याः भर्तुः क्षोणीपतिशतशिखारत्नशाणः कृपाणः लक्ष्मीं क्षितितलगतां पाददासीम् अकार्षीत्।

[1] सूर्यमतीत्यपरनामधेया।

व्याख्या

दयायाः कृपायाः क्षान्तेः क्षमायाः दाक्षिण्यस्यौदार्यस्य परच्छन्दानुवर्तित्वस्य सीमा सीमास्थानभूता तस्याः, तस्याः नृपमहिष्यास्सुभटायाः त्यागव्रतस्य दान-व्रतस्य विलसितेऽनुष्ठाने परिच्छेदस्य परिमाणस्य मुद्रा विन्यासस्ताम् परिच्छेद-मुद्रामियत्तामाविष्कर्तुं कः प्रभवति समर्थः स्यात् । यस्यास्सुभटायाः भर्तुरनन्तस्य क्षोणीपतीनां राज्ञां शतं तस्य शिखासु शिरस्सु परिधारितानि रत्नान्येव शाणाः तीक्ष्णत्वसम्पादकपाषाणाः यस्य सः कृपाणः खड्गोऽथवा क्षोणीपतिशतानां शिखा-रत्नानां शाणः कषणपाषाणरूपः कृपाणः लक्ष्मीं कमलां क्षितितलगतां महीत-लगतां पाददासीं चरणसेविकामकार्षीत् कृतवान् ।

भाषा

दया, क्षमा और दाक्षिण्य की सीमा रूप उस रानी सुभटा देवी के दानव्रत के अनुष्ठान की इयत्ता निर्धारण करने में कौन समर्थ हो सकता है। अर्थात् वह इतना ही दान कर सकती है यह कौन कह सकता है। जिसके पति अनन्त राजा के सैकड़ो विपक्षी राजाओ के मस्तको के रत्न रूपी कसौटी पर रगड़कर तीक्ष्ण किया हुआ या रत्नो की कसौटीरूप खड्ग ने लक्ष्मी को पृथ्वी पर की चरणसेविका बना दिया था।

नो कायस्थैः कुटिललिपिभिर्नो विटैश्चाटुदक्षै-
र्न प्रत्यक्षस्तवनपटुभिर्लुण्ठिता गायनैश्च ।
देवागारद्विजगुरुगृहाण्येव यत्संगृहीता
याता लक्ष्मीर्निजचपलतादोषशुद्धयर्थिनीव ॥४२॥

अन्वयः

यत्संगृहीता लक्ष्मीः कुटिललिपिभिः कायस्थैः नो लुण्ठिता चाटुदक्षैः विटैः नो लुण्ठिता प्रत्यक्षस्तवनपटुभिः गायनैः च न लुण्ठिता (किन्तु) निजचपलतादोषशुद्धयर्थिनी इव देवागारद्विजगुरुगृहाणि एव याता ।

व्याख्या

यया सुभटया संगृहीता समर्जिता लक्ष्मीः कुटिलाश्छद्मपूर्णाः लिपयः लेख-नानि येषान्ते तैः कपटलेखचतुरैः कायस्थैः नो लुण्ठिता न वञ्चिता चाटुदक्षैः चाटुकरणचतुरैः विटैर्धूर्तैर्नो लुण्ठिता बलात्गृहीता प्रत्यक्षमेव स्तवने गुणकीर्तने

पटुभिः प्रगल्भैः गायनैश्च वन्दिजनैश्च न लुण्ठिता गृहीता। किन्तु निजचपलतादोषशुद्धयर्थिनी निजचाञ्चल्यदोषपरिहारवाञ्छया इव देवानामागारे मन्दिरे "निशान्तपस्त्यसदनं भवनागारमन्दिरम्" इत्यमरः। द्विजानां ब्राह्मणानां गुरूणां च गृहाणि सदनान्येव याता सङ्गता। सा धर्मार्थमेव द्रव्यस्य विनियोगं कृतवती न तु विहारादिभोगेषु इति भावः।

भाषा

जिस अनन्त राजा की रानी सुभटा देवी द्वारा संगृहीत लक्ष्मी कपटलेख लिखने में प्रवीण कायस्थो से, मीठी २ बातें बनाकर अपना काम साधने वाले धूर्तों से या मुह पर गुणगान करने मे चतुर स्तुतिपाठको द्वारा नहीं लूटी जा सकी। किन्तु मानों अपने चाञ्चल्य दोष से शुद्धि पाने की इच्छा रखनेवाली वह लक्ष्मी देवमन्दिरो में ब्राह्मण और गुरु के घरों में प्रविष्ट हुई। अर्थात् लक्ष्मी का उपयोग ऐश आराम में न होकर धार्मिक कृत्यों में होता था।

श्रीकाश्मीरक्षितिभुजि गते वश्यतां यद्गुणानां
ऊहुश्चिन्ताक्लमपरिचयं कानि नान्तःपुराणि।
स्वच्छा कीर्तिर्नभसि बिसिनीपत्रमित्रे लुलोठ
श्च्योतद्धारासलिलमकरोद्धाम लक्ष्मीः कृपाणम् ॥४३॥

अन्वयः

श्रीकाश्मीरक्षितिभुजि यद्गुणानां वश्यतां गते (सति) कानि अन्तःपुराणि चिन्ताक्लमपरिचयं न ऊहुः। स्वच्छा कीर्तिः बिसिनीपत्रमित्रे नभसि लुलोठ। लक्ष्मीः श्च्योतद्धारासलिलं कृपाणं धाम अकरोत्।

व्याख्या

श्रीकाश्मीरक्षितिभुजि श्रीकाश्मीरदेशाधिपेऽनन्ते यस्यास्सुभटाया गुणानां वश्यतामायत्ततां गते सति कान्यन्तःपुराण्यन्तःपुरस्थकामिन्यः सपत्न्यः चिन्ताक्लमस्य विरहसन्तापस्य परिचयं सम्बन्धं नोहुः न दधुः। सपत्नीनामेव समाचारमाह—स्वच्छा निर्मला कीर्तिः बिसिनीपत्रमित्रे कमलिनीदलतुल्ये श्यामवर्णे नभस्याकाशे लुलोठ स्वसन्तापशान्त्यर्थं शयनञ्चकार लक्ष्मीः श्च्योतद् क्षरद् धारायाः कृपाणधारायास्सलिलं यस्मात्स तं कृपाणं धाम स्वनिवासस्थानमकरोत्। अत्र समासोक्तिरलङ्कारः।

भाषा

काश्मीर के राजा अनन्त के अपनी पटरानी सुभटा देवी के गुणों के वश में हो जाने पर अर्थात् उसके सद्गुणों से उससे अधिक प्रेम रखने से कौन अन्तःपुर की रानियां विरहसन्ताप से पीड़ित नहीं थी अर्थात् सभी सुभटा देवी की सौतें खिन्नमनस्क रहा करती थीं। स्वच्छ कीर्ति, कमलिनी के पत्ते के ऐसे नीले रग के आकाश में अपना विरहजनित सन्ताप दूर करने के लिये पड़ी रहती थी और लक्ष्मी अपना सन्ताप दूर करने के लिये, अपनी धार के पानी गिराने वाले खड्ग में रहने लगी। अर्थात् उसकी कीर्ति आकाश तक फैल गई थी और खड्ग से शत्रुओं का नाश करने से लक्ष्मी प्राप्त होती थी।

कीर्तिज्योत्स्नास्नपितभुवनश्रीरधिष्ठानमध्ये
शोभाज्येष्ठं मठमकुरुत स्वीयनामाङ्कितं सा।
यस्मिन्विद्यारसिकमनसामास्पदे दैशिकानां
का नामाक्ष्णोर्व्रजति न सुधावर्तितां नर्तितश्रीः ॥४४॥

अन्वयः

कीर्तिज्योत्स्नास्नपितभुवनश्रीः सा अधिष्ठानमध्ये शोभाज्येष्ठं स्वीयनामाङ्कितं मठम् अकुरुत। विद्यारसिकमनसां दैशिकानाम् आस्पदे यस्मिन् का नाम नर्तितश्रीः अक्ष्णोः सुधावर्तितां न व्रजति।

व्याख्या

कीर्तीनां ज्योत्स्नया स्वयशश्चन्द्रिकया स्नपिता भुवनस्य श्रीः लक्ष्मीः यया सा, सा सुभटाऽधिष्ठानमध्ये वितस्तापुलिनवर्तिनि प्रदेशविशेषे ("अहीठाणमाहि" इति तद्भाषायाम्) शोभाभिः कान्तिभिः, रम्यताभिः ज्येष्ठं श्रेष्ठं स्वीयनामाङ्कितं मठं सुभटामठमकुरुत कृतवती। विद्यायां रसिकानि स्नेहयुक्तानि मनांसि येषान्ते तेषां दैशिकानां विद्याचार्याणामास्पदे आश्रयभूते यस्मिन् मठे का नाम नर्तितस्य नृत्यस्य श्रीः शोभाऽक्ष्णोः नेत्रयोः सुधावर्तितताममृतशलाकात्वं न व्रजति न प्राप्नोति।

भाषा

अपनी कीर्ति की चाँदनी से सकल भुवनो की शोभा को स्नान कराने वाली अर्थात् शोभा को उज्वल करने वाली सुभटा देवी ने अहिठाणमाही नामक स्थान में अत्यन्त सुन्दर अपने नाम से सुभटामठ बनवाया था। विद्या के प्रेमी मन वाले बड़े बड़े विद्वानो के निवासस्थानभूत उस मठ में कौन सी नृत्य

की शोभा आंखों के लिए अमृतशलाका का काम नहीं करती अर्थात् वहां के नृत्य की शोभा को देख कर सब लोगों की आँखें तृप्त हो जाती थी।

भाण्डागाराण्यकृत विदुषां सा स्वयं भोगभाञ्जि
स्वातन्त्र्येण ग्रहणमवनेर्ब्राह्मणानामवादीत्।
यामस्तम्बेरमसहचरस्फूर्जदाशागजेन्द्र-
क्षोणीकोशप्रणयिनि यशस्येव रक्षामकार्षीत् ॥४५॥

अन्वयः

सा स्वयं विदुषां भोगभाञ्जि भाण्डागाराणि अकृत ब्राह्मणानां स्वातन्त्र्येण अवनेः ग्रहणम् अवादीत् यामस्तम्बेरमसहचरस्फूर्जदाशागजेन्द्रक्षोणीकोशप्रणयिनि यशसि एव रक्षाम् अकार्षीत्।

व्याख्या

सा सुभटा स्वयं विदुषां पण्डितानां भोगं सूपयोगं भजन्तीति भोगभाञ्जि उपयोगयोग्यानि भाण्डागाराण्यन्नाद्यागाराण्यकृत कृतवती। ब्राह्मणानां विप्राणां स्वातन्त्र्येण स्वेच्छयाऽवनेः पृथिव्याः ग्रहणं, ब्राह्मणानां यत्र स्थले पृथिवीग्रहणस्येच्छा स्यात्तत्रैव तावती पृथिवी स्वजीवनयापनार्थं तैः गृह्यतामिति सुभटा अवादीदाज्ञां दत्तवती। यामस्तम्बेरमाणां प्रहरहस्तिनां सहचराः सदृशाः स्फूर्जन्तः गर्जनादिभिः प्रोद्दण्डदर्पं प्रकाशयन्त आशागजेन्द्रा ऐरावताद्या यस्यां तादृशी क्षोणी पृथिव्येव "धराधरित्री धरणिः क्षोणिर्ज्या काश्यपी क्षितिः" इत्यमरः। कोशस्तस्य प्रणयिनी तत्र विद्यमाने यशसि कीर्तौ रक्षामकार्षीत्। तस्याः सर्वव्यापियशोरक्षणमेव गरीयो न तु धनरक्षणमिति भावः।

भाषा

उस सुभटा देवी ने विद्वानो के उपभोग में आनेवाले अनेक अन्नभण्डारों को बनवाया। ब्राह्मण लोग जहाँ, जैसी और जितनी जमीन चाहें ले लें ऐसा आदेश निकाल दिया। प्रहरहाथियों के समान गर्जना आदि से अपना प्रचण्ड दर्प दिखानेवाले ऐरावतादि दिग्गजों की भूमि रूपी खजाने में प्रेम रखनेवाली कीर्ति की ही वह रक्षा करती थी। अर्थात् सर्वत्र फैली अपनी कीर्ति की ही वह रक्षा करती थी न कि धन आदि की।

चक्रे धाम त्रिभुवनगुरोः सा वितस्तासमीपे
कामारातेः शिखरनिकरक्षुण्णनक्षत्रमार्गम्।

कूजत्काञ्चीनिवहपिहितज्याध्वनिर्नर्तकीनां
यस्योपान्ते भवति न भवक्रोधपात्रं मनोभूः ॥४६॥

अन्वयः

सा वितस्तासमीपे शिखरनिकरक्षुण्णनक्षत्रमार्गं त्रिभुवनगुरोः कामारातेः धाम चक्रे यस्य उपान्ते नर्तकीनां कूजत्काञ्चीनिवहपिहित-ज्याध्वनिः मनोभूः भवक्रोधपात्रं न भवति ।

व्याख्या

सा सुभटा वितस्तानदीसमीपे शिखरनिकरक्षुण्णनक्षत्रमार्गं शिखराणां शृङ्गाणां "कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गं" इत्यमरः । निकरैः समूहैः "स्तोमौघ-निकरव्रातवारसंघातसञ्चयाः" इत्यमरः । क्षुण्णः संक्षुब्धः नक्षत्राणां मार्गः पन्था आकाशः येन तत्त्रिभुवनस्य लोकत्रयस्य गुरुस्तस्य कामारातेः कामशत्रो-र्महादेवस्य धाम मन्दिरं चक्रे निर्मितवती । यस्य मन्दिरस्योपान्ते समीपे नर्तकीनां लास्यकर्त्रीणां कामिनीनां कूजन्तीनां शब्दायमानानां काञ्चीनां रश-नानां "स्त्रीकट्यां मेखला काञ्ची सप्तकी रशना तथा" इत्यमरः । निवहेन समूहेन पिहितोऽभिभूतः ज्यायाः मौर्व्याः "मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः" इत्य-मरः । ध्वनिः शब्दः यस्य सः मनोभूः कामः भवस्य शिवस्य क्रोधपात्रं कोपस्थानं न भवति । अत्र काव्यलिङ्गालङ्कारः ।

भाषा

उस सुभटा देवी ने वितस्ता नदी के समीप में अपने ऊँचे २ शिखरो से नक्षत्रो के मार्ग आकाश को छूने वाला, तीनो भुवनों के पूज्य, कामदेव के शत्रु महादेव का (गौरीश्वर नामक) मन्दिर बनवाया था । जिस मन्दिर के समीप में नाचनेवालियो की शब्दायमान करधनियो के समूह से अपनी प्रत्यञ्चा के छिपे शब्द वाला कामदेव शकर के क्रोध का स्थान नही होता था ।

यस्या[1] भ्राता क्षितिपतिरिति क्षात्रतेजोनिधानं
भोजक्ष्माभृत्सदृशमहिमा लोहराखण्डलोऽभूत् ।
शङ्के लक्ष्म्याः शिरसि चरणं न्यस्य वक्षःस्थितायाः
प्राप्ता लीलातिलकतुलनां यन्मुखे सूक्तिदेवी ॥४७॥

---

[1] यस्य भ्रातेति पाठाद्यस्या भ्रातेति पाठः समुचितः । अत्रैतस्यैव सर्गस्य ३८ तथा ६७ संख्याकौ श्लोकावलोकनीयौ ।

अन्वयः

यस्याः भ्राता क्षात्रतेजोनिधानं भोजक्ष्माभृत्सदृशमहिमा क्षितिपतिः इति लोहराखण्डलः अभूत्। यन्मुखे सूक्तिदेवी वक्षःस्थितायाः लक्ष्म्याः शिरसि चरणं न्यस्य लीलातिलकतुलनां प्राप्ता (इत्यहं) शङ्के।

व्याख्या

यस्याः सुभटाया भ्राता सहोदरः क्षात्रं क्षत्रियसम्बन्धि तेजः तस्य निधानं प्रधानस्थानं भोजस्य भोजनामकस्य क्ष्माभृतो धारानगर्या नृपस्य सदृशः महिमा प्रभावो यस्य सः क्षितिपतिरिति नाम्ना क्षितिराज इति नाम्ना च प्रसिद्धः लोहराखण्डलः लोहरदुर्गाधिपतिरभूत्। यस्य क्षितिपतेः मुखे आनने सूक्तिदेवी सरस्वती वक्षसि हृदये स्थिताया लक्ष्म्याः शिरसि चरणं पादं न्यस्य निक्षिप्य लीलातिलकस्य क्रीडातिलकस्य क्रीडालङ्कारस्य वा तुलनां साम्यं प्राप्ता प्रपेदे इत्यहं शङ्के उत्प्रेक्षे।

भाषा

उस रानी सुभटा का, क्षत्रियो के तेज का स्थानभूत धारा के भोज राजा के ऐसी महिमा वाला क्षितिराज नाम का भाई लोहर किले का स्वामी था। जिस क्षितिराज के मुख मे सरस्वती, हृदय में वास करनेवाली लक्ष्मी के मस्तक पर चरण रख कर क्रीडा तिलक वा अलङ्कार की समता को अर्थात् शोभा को प्राप्त हुई थी ऐसा मै समझता हूँ।

यस्य प्राप्ताद्भुतपरिणतेः कर्कशे तर्कमार्गे
　　त्यागः कासां विचरति गिरां गोचरे कान्तकीर्तिः।
येन न्यस्ता दलितविपदां कोविदानां गृहेषु
　　श्रीर्नाद्यापि स्वपिति ललनाभूषणानां निनादैः॥४८॥

अन्वयः

कर्कशे तर्कमार्गे प्राप्ताद्भुतपरिणतेः यस्य कान्तकीर्तिः त्यागः कासां गिरां गोचरे विचरति। येन दलितविपदां कोविदानां गृहेषु न्यस्ता श्रीः ललनाभूषणानां निनादैः अद्यापि न स्वपिति।

व्याख्या

कर्कशे कठिने तर्कमार्गे न्यायशास्त्रे प्राप्ताऽद्भुताऽऽश्चर्यकारिणी परिणतिः प्रागल्भ्यं येन स तस्य यस्य लोहराधिपस्य कान्ता रमणीया कीर्तिर्यस्य स त्यागः

दानं "त्यागो विहापितं दानमुत्सर्जनविसर्जने" इत्यमरः । कासां गिरां वाचां गोचरे विषये विचरति वर्तते वागगोचरं दानमिति भावः । येन राज्ञा लोहराधिपेन दलिताः विनाशिताः विपदः येषान्ते तेषां कोविदानां पण्डितानां गृहेषु न्यस्ता निक्षिप्ता श्रीर्लक्ष्मीः ललनाभूषणानां कामिनीभूषणानां निनादैः शब्दैरद्यापि न स्वपिति निद्रां न प्राप्नोति । प्रचुरदानात् कोविदानां स्त्रियः अद्यापि भूषणयुक्ताः सन्तीति भावः ।

भाषा

अत्यन्त कठिन न्यायशास्त्र मे अद्भुत प्रागल्भ्य प्राप्त करने वाले लोहराधिप क्षितिराज का रमणीय कीर्तिवाला त्याग अर्थात् दानादि, कौन सी वाणियो से वर्णित किया जा सकता है। अर्थात् उसका त्याग अवर्णनीय था। जिसके द्वारा विपत्तियो से दूर किये हुए पण्डितो के घरो मे समर्पित लक्ष्मी, घर की स्त्रियो के भूषणो के शब्दो से अभी भी सोती नही हैं। अर्थात् उसने विद्वानो को इतनी अधिक सम्पत्ति दी थी जो अभी तक विद्यमान है।

गण्डाभोगोड्डमरविलुठद्बाष्पधाराशतेन
व्यातन्वानः कुचयुगतटीः पङ्किलाः सुन्दरीणाम् ।
यस्य क्रीडाकवलमकरोद्राजपुर्याः प्रतापं
बाहुर्बाहुस्थलकमलिनीराजहंसाम्बुवाहः ॥४६॥

अन्वयः

यस्य बाहुस्थलकमलिनीराजहंसाम्बुवाहः बाहुः गण्डाभोगोड्डमरविलुठद्बाष्पधाराशतेन सुन्दरीणां कुचयुगतटीः पङ्किलाः व्यातन्वानः राजपुर्याः प्रतापं क्रीडाकवलम् अकरोत् ।

व्याख्या

यस्य क्षितिपतेः बाहुस्थलं देशविशेष एव कमलिनी पद्मिनी तस्या राजहंसो नृपश्रेष्ठः कश्चिद्राजा पक्षिश्रेष्ठो मरालस्च तस्य कृतेऽम्बुवाहो मेघः बाहुः भुजः "जलधरसमये मानसं यान्ति हंसाः" इति नियमाद्यथा मेघं दृष्ट्वा हंसो दूरं याति स्वदेशं परित्यज्य, तथैव क्षितिपतेः बाहुरपि बाहुस्थलाधिपं पराजित्य पलायनपरायणं करोति स्मेति भावः । गण्डाभोगेषु कपोलप्रदेशेषूड्डमरा अत्युत्कटं विलुठन्त्यश्च या बाष्पधारा नेत्राश्रुप्रवाहास्तासां शतेन सुन्दरीणां रिपुसुन्दरीणां

कुचतटीः स्तनस्थलानि पङ्किलाः कर्दमवतीः व्यातन्वानः जनयन् राजपुर्याः काश्मीरसमीपस्थ-राजपुरीनामकनगरविशेषस्य प्रतापं महत्वं प्रभावं च क्रीडा-कवलं लीलाग्रासमकरोत् । अत्र रूपकालङ्कारः ।

भाषा

बाहुस्थल नामक देश विशेष रूपी कमलिनी के श्रेष्ठ नृप या राजहंस के लिए मेघरूप जिस क्षितिपति की भुजा ने कपोलस्थलो में अत्यधिक रूप से गिरने वाले नेत्राश्रुओं के सैकडो प्रवाहों से शत्रुनारियों के कुचस्थलों को पङ्किल बनाते हुए काश्मीर के पास के राजपुरी नामक स्थान के महत्व को खेलवाड में ही ग्रास बना लिया अर्थात् राजपुरी को सहज में जीत लिया। हंस जैसे मेघ को देखकर अपने निवास स्थान से भाग जाता है वैसे ही राजपुरी का राजा इसके बाहुबल को देखकर राजपुरी से भाग गया।

श्रोणीबन्धे कुवलयदृशां द्रागवज्ञारसज्ञः
　　पार्श्वद्वन्द्वेऽप्यतनुत सभामण्डनं पण्डितालीम् ।
रत्नच्छायाच्छुरणसुभगस्वर्णपत्रावमानी
　　मानी मेने श्रवसि च कथां वैष्णवीं भूषणं यः ॥५०॥

अन्वयः

कुवलयदृशां श्रोणीबन्धे द्राक् अवज्ञारसज्ञः यः पण्डितालीं पार्श्व-द्वन्द्वे अपि सभामण्डनम् अतनुत । मानी रत्नच्छायाच्छुरणसुभग-स्वर्णपत्रावमानी यः वैष्णवीं कथां च श्रवसि भूषणं मेने ।

व्याख्या

कुवलयदृशामिन्दीवरसमाननयनानां कामिनीनां श्रोणीबन्धे नितम्बबिम्बे द्राक् शीघ्रमेवाऽवज्ञाऽपमानमुपेक्षा च तस्या रसं जानातीत्यवज्ञारसज्ञः यः क्षितिपतिः पण्डितालीं विद्वन्मण्डलीं पार्श्वयोः वामदक्षिणभागयोर्द्वन्द्वे युगलेऽपि सभायास्सं-सदः "समज्या परिषद्गोष्ठी सभासमितिसंसदः" इत्यमरः । मण्डनमलङ्कार-मतनुत कृतवान् । मान्यतिशयमानसंयुक्तः रत्नच्छायानां मणिकान्तीनां छुरणैः स्पर्शैः सुभगं सुन्दरं यत् स्वर्णपत्रं कर्णभूषणं तदवमानयति तिरस्करोतीति रत्न-च्छायाच्छुरणसुभगस्वर्णपत्रावमानी यः क्षितिपतिः वैष्णवीं विष्णुसम्बन्धिनीं कथां च श्रवसि कर्णे भूषणं मेने ज्ञातवान् । अतीव विष्णुभक्तः स आसीदिति भावः ।

भाषा

कमलनयनी कामिनिओं के नितम्बस्थल में शीघ्रता से उपेक्षाबुद्धि रखने वाला क्षितिपति अपने दोनों ही ओर पण्डितों को बैठने का स्थान देकर दर्बार की शोभा बढ़ाता था। रत्नों की चमक से सुन्दर सोने के कर्णभूषणों का आदर न करने वाला, वह विष्णु सम्बन्धिनी कथा को ही कानों का आभूषण समझता था। अर्थात् वह परम वैष्णव था।

पुण्यैरैरावतकरिकरोच्चण्डदोर्दण्डशाली
देव्यां तस्यां कलशनृपतिस्तस्य जातस्तनूजः।
सङ्ग्रयोत्सङ्गादपसृतवतां भूभुजां वल्लभा श्रीः
खड्गे यस्य द्विपमदमषीपङ्कलिप्ते लुलोठ ॥५१॥

अन्वयः

तस्य पुण्यैः तस्यां देव्याम् ऐरावतकरिकरोच्चण्डदोर्दण्डशाली कलशनृपतिः तनूजः जातः। सङ्ग्रयोत्सङ्गात् अपसृतवतां भूभुजां वल्लभा श्रीः यस्य द्विपमदमषीपङ्कलिप्ते खड्गे लुलोठ।

व्याख्या

तस्य अनन्तस्य पुण्यैस्तस्यां देव्यां सुभटायामैरावतकरिणः करः शुण्डावच्च इवोच्चण्डः दोर्दण्डः प्रबलः भुजदण्डस्तेन शालते शोभत इति तादृशः कलशनामा नृपतिः तनूजः पुत्रो जातः सङ्ग्रयस्य युद्धस्य "मृधमास्कन्दनं सङ्ख्यं समीकं साम्परायिकम्" इत्यमरः। उत्सङ्गान्मध्यात् रणप्राङ्गणादपसृतवतां पलायमानानां भूभुजां नृपाणां वल्लभा प्रिया श्रीर्लक्ष्मीः यस्य कलशनृपस्य द्विपानां गजानां मद एव मषीपङ्कः तेन लिप्ते खड्गे लुलोठ समागत्य सुचिरं स्थिता।

भाषा

जिस अनन्त राजा के पुण्य से उस सुभटा देवी से ऐरावत हाथी की सूँड के समान उद्दण्ड भुजदण्ड से शोभित कलशराजा नामक पुत्र हुआ। रणभूमि से भागे हुए विपक्षी राजाओं की प्यारी लक्ष्मी जिस कलश राजा के विपक्षी हाथियों के मद रूपी काले स्याही से सने खड्ग में चिरकाल तक वास करती थी।

दर्पाध्मातप्रतिभटनृपव्रातसेनाशिरांसि
त्यक्त्वा सान्द्रोल्लसदसिलताशैवलश्यामलानि।

हेमाम्भोजप्रतिमवदनालोकनादेव यस्य
प्राप्ता लक्ष्मीश्चरणनिकटं कीर्तिहंसावतंसा ॥५२॥

अन्वयः

कीर्तिहंसावतंसा लक्ष्मीः यस्य हेमाम्भोजप्रतिमवदनालोकनात् एव सान्द्रोल्लसदसिलताशैवलश्यामलानि दर्पाध्मातप्रतिभटनृपव्रात-सेनाशिरांसि त्यक्त्वा चरणनिकटं प्राप्ता।

व्याख्या

कीर्तिरेव हंसः कीर्तिहंस एवावतंसो भूषणं यस्याः सा लक्ष्मीः यस्य कलशनृपतेः हेमाम्भोजं स्वर्णकमलं प्रतिमा प्रतिमानमुपमानं वा यस्य तत् वदनं मुखं तस्या-ऽऽलोकनात् दर्शनादेव सान्द्रं घनं यथा स्यात्तथोल्लसन्त्यः प्रकटीभवन्त्योऽसिलताः खड्गा एव शैवलास्तद्वत् श्यामलानि दर्पेण गर्वेणाध्माताः पूरिताः प्रतिभट-नृपव्राताः शत्रुभूतनृपतिसमूहास्तेषां सेनास्तासां शिरांसि मूर्ध्नः त्यक्त्वा चरण-निकटं पदसामिप्यं प्राप्ता।

भाषा

कीर्ति रूपी हंस का भूषण रखनेवाली लक्ष्मी, जिस राजा कलश के सोने के कमल के समान मुख को देखते ही गम्भीन दीख पडने वाली तलवारों के स्वरूप सॅवार के ऐसे काले, घमण्ड से भरे प्रतिपक्षी राजाओं की सेना के मस्तको को छोड़कर उसके चरण के पास प्राप्त हुई। अर्थात् उसने असंख्य राजाओ को जीत कर अत्यधिक लक्ष्मी प्राप्त की।

दिग्यात्रासु स्फटिकविशदच्छायमच्छोदमेत्य
भ्राम्यन्निन्द्रायुधखुरपुटोट्टङ्कितासु स्थलीषु।
कादम्बर्याः परिजनमसौ मर्त्यलोकैकचन्द्र-
श्चन्द्रापीडस्तुतिषु विदधे सङ्कुचद्वाग्विलासम् ॥५३॥

अन्वयः

मर्त्यलोकैकचन्द्रः असौ दिग्यात्रासु स्फटिकविशदच्छायम् अच्छोदम् एत्य इन्द्रायुधखुरपुटोट्टङ्कितासु स्थलीषु भ्राम्यन् कादम्बर्याः परिजनं चन्द्रापीडस्तुतिषु सङ्कुचद्वाग्विलासं विदधे।

व्याख्या

मर्त्यानां मनुष्याणां लोकस्य एकश्चन्द्र इवाह्लादकोऽसौ कलशनृपः दिग्यात्रासु दिग्विजयोद्यमेषु स्फटिकवद्विशदा निर्मला छाया कान्तिर्यस्य तत् स्फटिकविशदच्छायमच्छोदमच्छं निर्मलमुदकं जलं यस्य तदच्छोदनामकं सरः एत्य प्राप्य इन्द्रायुधस्य कादम्बरीकथाया नायकचन्द्रापीडतुरगस्य खुरपुटैरुट्टङ्किता भग्नाः स्थल्यस्तासु भ्राम्यन् विहारं कुर्वन् कादम्बर्याः बाणभट्टप्रणीतकथानायिकायाः परिजनं परिवारकसमूहं चन्द्रापीडस्य कादम्बरीकथानायकस्य स्तुतिषु प्रशंसासु सङ्कुचन्निमीलन् वाग्विलास वाचामुक्तीनां विलासः आनन्दो यस्य स तं विदधे कृतवान् । चन्द्रापीडादपि समुत्कृष्टपराक्रमशाली कलश आसीदिति भावः ।

भाषा

मनुष्यलोक के अकेले चन्द्र के समान आनन्ददायक इस कलश राजा ने अपनी दिग्यात्राओं में स्फटिक के सदृश निर्मल अच्छोद सर के पास आकर बाणभट्ट रचित कादम्बरी में वर्णित चन्द्रापीड के इन्द्रायुध नामक घोड़े के खुरों से खुदी हुई जमीनों पर घूमते हुए कादम्बरी नायिका के परिजनों को चन्द्रापीड नामक कादम्बरी के नायक की प्रशंसा में कम आनन्द प्राप्त होने वाला बना दिया। अर्थात् कलश राजा चन्द्रापीड से भी अधिक प्रतापी व गुणी था।

येनोदीच्यां दिशि गतवता वन्दितोऽसौ गिरीन्द्र-
श्चञ्चच्चण्डीपतिवृषखुरक्षोदलेखावतंसः ।
शङ्के लङ्कापतिकरतलोत्क्षेपलोलस्य यस्य
त्रस्ताः केचित्तलभुवि गणा नाधुनाप्युच्छ्वसन्ति ॥५४॥

अन्वयः

उदीच्यां दिशि गतवता येन चञ्चच्चण्डीपतिवृषखुरक्षोदलेखावतंसः असौ गिरीन्द्रः वन्दितः लङ्कापतिकरतलोत्क्षेपलोलस्य यस्य तलभुवि त्रस्ताः केचित् गणाः अधुना अपि न उच्छ्वसन्ति (इति) शङ्के।

व्याख्या

उदीच्यां दिशि उत्तरस्यां दिशि गतवता येन कलशेन चञ्चत् चाञ्चल्यवान् चण्डीपतेः शिवस्य वृषः वाहनवृषभो नन्दी तस्य खुरक्षोदलेखा एवावतंसो भूषणं यस्य सः असौ गिरीन्द्रः कैलासः वन्दितः, लङ्कापतेः रावणस्य करतलेन य उत्क्षेपः

उपरिधारणं तेन लोलश्चञ्चलस्तस्य यस्य कैलासस्य तलभुव्यधःप्रदेशे त्रस्ताः कैलाससञ्चलनाद् भीताः केचित्प्रमथाद्याः अद्यापि नोच्छ्वसन्ति न स्वस्था जाताः। भीता एवाद्याऽपि वर्तन्त इति भावः। इतीत्थं शङ्के तर्कयामि।

भाषा

उत्तर दिशा की ओर जाने वाले कलश राजा ने महादेव के चञ्चल बैल अर्थात् नन्दी के खुरो से खुदी, खुरो की लकीर रूप भूषण वाले कैलास पर्वत को नमस्कार किया। रावण द्वारा हाथ से ऊपर की ओर उठाने से हिलने वाले उस कैलास पर्वत के नीचे के भाग में कैलास के हिलने से भयभीत कुछ प्रमथादि महादेव के गण अभी भी उस भय से निर्मुक्त नही हुए है, ऐसा मैं समझता हूँ।

धृत्वा काश्चित्कनककपिशाः कौतुकाद्यक्षकन्याः
प्रत्यागच्छन्धनपतिपुरादुत्तरं मानसं यः।
दत्ताश्लेषं हरमुकुटतः स्रस्तया नाकनद्या
हेमाब्जानामकृत वसतिं मानसादाहृतानाम् ॥५५॥

अन्वयः

यः धनपतिपुरात् उत्तरं मानसं प्रत्यागच्छन् काश्चित् कनककपिशाः यक्षकन्याः कौतुकात् धृत्वा हरमुकुटतः स्रस्तया नाकनद्या दत्ताश्लेषं (यथा स्यात्तथा) मानसात् आहृतानां हेमाब्जानां (ताः तत्र वा) वसतिं अकृत।

व्याख्या

यः कलशनृपतिः धनपतिपुरादलकाया उत्तरमुत्तरप्रदेशे विद्यमानं मानसं मानससरोवरं प्रत्यागच्छन् काश्चित् कनकवत् सुवर्णवत् कपिशाः पिङ्गला यक्षकन्या यक्षपुत्र्यः कौतुकात् कौतूहलेन "कौतुहल कौतुकञ्च कुतुकञ्च कुतूहलम्" इत्यमरः। धृत्वा बलादाहृत्य हरमुकुटतः शङ्करमस्तकात् स्रस्तया प्रवहन्त्या नाकनद्या गङ्गया दत्तः आश्लेषो स्नानं यस्मै एवम्भूतो यथा स्यात्तथा मानसात् मानससरोवरात् आहृतानां समानीतानां हेमाब्जानां सुवर्णकमलानां (ताः) यक्षकन्या वसतिं स्थानं अकृत कृतवान्। ताभ्यः सुवर्णकमलानि ददाविति भावः। अथवा यक्षकन्याः धृत्वा स्वान्तःपुरे आनीतवान्। गङ्गायां सुवर्णकमलाभावात् कनकाब्जानां तत्र गङ्गायां वसतिं स्थानं चक्रे।

भाषा

उस कलश राजा ने अलकापुरी से उत्तरमानसरोवर पर आते हुए कुछ सोने जैसी कान्ति वाली यक्षकन्याओं को पकड़ कर, शङ्कर के मस्तक से बहने वाली गङ्गा मे स्नान कर, उन यक्षकन्याओं को मानसरोवर से लाये हुए सुवर्ण कमल दिये अथवा उन यक्षकन्याओ को लेकर अपने अन्तःपुर में रख लिया और गङ्गा नदी में कनककमल न होने से उसमें मानसरोवर से लाए सुवर्ण कमलो का स्थान बनाया।

यस्योदारां परिकलयतः शस्त्रशास्त्रप्रतिष्ठां
द्वे प्रेयस्यौ जगति विदिते श्रीश्च वाग्देवता च।
एका भेजे भुजमभिनवाम्भोदनीलातपत्रा
श्वेतच्छत्रायितसितयशश्चन्द्रिकान्या मुखेन्दुम् ॥५६॥

अन्वयः

यस्य जगति विदिते द्वे प्रेयस्यौ श्रीः च वाग्देवता च उदारां शस्त्रशास्त्रप्रतिष्ठां परिकलयतः। अभिनवाम्भोदनीलातपत्रा एका भुजं भेजे। श्वेतच्छत्रायितसितयशश्चन्द्रिका अन्या मुखेन्दुं भेजे।

व्याख्या

यस्य कलशस्य जगति लोके विदिते प्रसिद्धे द्वे प्रेयस्यौ कान्ते श्रीः लक्ष्मीश्च वाग्देवता च सरस्वती चोदारामुत्कृष्टां महतीं शस्त्रस्य शास्त्रस्य च प्रतिष्ठां परिकलयतः कुरुतः। अभिनवः अम्भोदो मेघ इव नीलमातपत्रं छत्रं यस्यास्सैका श्रीः भुजं भेजे। श्वेतच्छत्रायिता धवलातपत्रसमाना सितयशश्चन्द्रिका यस्या-स्साऽन्या सरस्वती मुखेन्दुं मुखचन्द्रं भेजे आश्रितवती।

भाषा

जिस राजा कलश की जगत् मे प्रसिद्ध दो प्रेमिकाएँ लक्ष्मी और सरस्वती, उसके शस्त्र और शास्त्र की अत्यधिक प्रतिष्ठा द्योतित करती थीं। उनमे से नूतन मेघ के ऐसे नीले छत्र से शोभित लक्ष्मी उसकी भुजा मे वास करती थी और श्वेत छत्र के समान सफेद यश की चांदनी से शोभित सरस्वती उसके मुखचन्द्र में वास करती थी।

अश्वैः कृत्वा पवनगतिभिर्लङ्घनं वालुकाब्धे-
र्यः स्त्रीराज्यं व्यजयत जयापीडतुल्यप्रभावः ।
तत्र श्लाघामसहत पुनर्नैकवीरः स यस्मात्
सव्रीडोऽभूदपि रघुपतौ ताडके ताडकायाः ॥५७॥

अन्वयः

जयापीडतुल्यप्रभावः यः पवनगतिभिः अश्वैः वालुकाब्धेः लङ्घनं कृत्वा स्त्रीराज्यं व्यजयत। एकवीरः तत्र पुनः श्लाघां न असहत यस्मात् सः ताडकायाः ताडके रघुपतौ अपि सव्रीडः अभूत् ।

व्याख्या

जयापीडस्य कादम्बरीकथानायकतारापीडपितुस्तुल्यस्सदृशः प्रभावो यस्य सः अथवा काश्मीरराजजयापीडतुल्यप्रभावः यः कलशनृपः पवनस्य वायोर्गतिरिव गतिर्येषान्ते तैः पवनगतिभिरश्वैः वालुकायास्सिकतायाः "सिकताः स्युर्वालुकापि" इत्यमरः । अब्धिस्समुद्रः (काश्मीराबुत्तरस्यां दिशि स्थिता बालुकार्णव इति ख्याता मरुभूमिः) तस्य लङ्घनं कृत्वा स्त्रीराज्यं देशविशेषं व्यजयत । एकवीरः अप्रतिमशौर्यः(सः) तत्र पुनः श्लाघां प्रशंसां नासहत प्रियत्वेन नामन्यत । यस्मात् यतः सः ताडकायाः ताडके संहारके रघुपतौ रामेऽपि सव्रीडः लज्जालुरभूत् । स्त्रीणामुपरि बाणप्रहारः वीराणां लज्जाकर इति भावः ।

भाषा

कादम्बरी के कथानायक तारापीड के पिता जयापीड के अथवा काश्मीर के राजा जयापीड़ के समान प्रताप वाले कलश राजा ने वायु की गति के समान गतिवाले घोड़ो से बालुकार्णव नामक काश्मीर के उत्तर में विद्यमान मरुभूमि को पार कर स्त्रीराज्यनामक देशविशेष को जीत लिया। लेकिन प्रधान वीर राजा कलश को स्त्रीराज्य जीतने की आत्मप्रशंसा अच्छी न मालुम हुई, क्योंकि उसको ताडका राक्षसी को मारने वाले रामचन्द्र पर भी लज्जा मालुम होती थी। वीर पुरुष स्त्रियो पर प्रहार नही करते ।

यत्खड्गस्य स्मरणवशतः कालजिह्वासनाम्ने-
ल्लासोल्लासत्त्रुटितमदनोन्मादमुद्रा नरेन्द्राः ।
हर्षं वर्षाजलदपटले कुन्तलेष्वङ्गनानां
श्रोणीलेखास्वपि च मुमुचुः शाद्वलश्यामलासु ॥५८॥

अन्वयः

कालजिह्वासनाभेः यत्खड्गस्य स्मरणवशतः त्रासोल्लासत्रुटित-मदनोन्मादमुद्राः नरेन्द्राः वर्षाजलदपटले अङ्गनानां कुन्तलेषु शाद्वल-श्यामलासु क्षोणीलेखासु अपि च हर्षं मुमुचुः।

व्याख्या

कालस्य यमस्य जिह्वा रसना "रसज्ञा रसना जिह्वा" इत्यमरः। तस्याः सनाभिः सदृशस्तस्य प्राणहरत्वात्साम्यं बोध्यम्। यस्य कलशस्य खड्गोऽसिस्तस्य यत्खड्गस्य स्मरणवशतः स्मरणमात्रेण त्रासस्य भयस्योल्लासेन समुदयेन त्रुटिता भग्ना मदनोन्मादस्य कामोन्मादस्य मुद्राः स्वरूपाणि येषान्ते नरेन्द्राः राजानः वर्षाजलदपटले प्रावृड्जलदसमूहेऽङ्गनानां स्त्रीणां कुन्तलेषु केशेषु "चिकुरः कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः" इत्यमरः। शाद्वलश्यामलासु शादहरितासु शष्प-श्यामासु "शाद्वलः शादहरिते" इत्यमरः। क्षोणीलेखासु भूमिष्वपि कामोद्दीप-केष्वेतेषु वस्तुष्वपि च हर्षं मुमुचु तत्यजुः। रम्यवस्तून्यपि तस्य राज्ञः खड्गस्य स्मरणसमये हर्षसमर्पकाणि न बभूवुः। खड्गस्य नीलत्वात् सकलेषु नीलवस्तुषु वैरस्यं वहति स्मेति भावः।

भाषा

यमराज की जीभ के समान भयकर उस राजा कलश की तलवार के स्मरणमात्र से कामोन्मादयुक्त राजा लोग वर्षाऋतु में मेघ समूह के उपस्थित होने पर स्त्रियों के केशपाशो में और हरी २ घास से भरी जमीनो मे भी आनन्द प्राप्त करने से वञ्चित रहते थे। अर्थात् उस काली तलवार से इतने भयभीत हो गए थे कि कामासक्त होने पर भी कामोद्रेक करने वाले स्त्रियो के काले केशपाश, काले मेघों से युक्त वर्षा काल तथा हरित भूमियो को देखने से भी उन्हें हर्ष न होता था।

दृष्ट्वा देव्याः कुचपरिसरे हर्षदेवस्य मातु-
स्तुष्टः सेवानतधनपतिप्राभृतैकावलीं यः।
कर्तुं वाञ्छन्नखिलभुवनाश्चर्यमस्योपकारं
प्रत्यानीते रघुपतिशरैः पुष्पके खेदमाप ॥५६॥

अन्वयः

यः हर्षदेवस्य मातुः देव्याः कुचपरिसरे सेवानतधनपतिप्राभृतैकावलीं दृष्ट्वा अस्य अखिलभुवनाश्चर्यम् उपकारं वाञ्छन् पुष्पके रघुपतिशरैः प्रत्यानीते खेदम् आप ।

व्याख्या

यः कलशः हर्षदेवस्य कलशतनयस्य मातुः जनन्याः देव्या राजमहिष्याः कुचपरिसरे स्तनतटे सेवया परिचर्यया नतस्य धनपतेः कुबेरस्य प्राभृतैकावलीं उपायनत्वेन प्रदत्तं "प्राभृत तु प्रदेशनम् । उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा" इत्यमरः । एकावृतं हारं दृष्ट्वाऽस्य धनपतेरखिलभुवने आश्चर्यमाश्चर्यकार्युपकारं वाञ्छन्नभिलषन् पुष्पके कुबेरविमाने रावणापहृते रघुपतिशरैः रामबाणैः प्रत्यानीते प्रतिगृहीते सति खेदमाप । यदि रामेण न गृहीतं स्याद्विमानं तर्हि रावणसकाशात्सभमेवाऽऽहृत्य विमानं कुबेराय प्रदत्तं स्यादिति महानुपकारः स्यादिति भावः ।

भाषा

जिस कलश राजा ने हर्षदेव की माता के कुचस्थल पर सेवा में नम्र कुवेर द्वारा नजर के रूप में दिया हुआ मोती का एकलड़ा हार देख कर, कुवेर का, जगत् को आश्चर्य में डालनेवाला विशिष्ट उपकार करने की इच्छा रखते हुए कुबेर का रावण द्वारा अपहृत पुष्पक विमान रामचन्द्र जी के बाणों द्वारा कुबेर को मिल गया इस बात से उसको दुःख हुआ । अर्थात् यदि राम के वाणो से उसे विमान न मिला होता तो वह रावण से छीन कर स्वय पुष्पक विमान कुबेर को देता । हर्षदेव राजा कलश के पुत्र थे ।

खड्गे कुण्ठीभवति शिरसां छेदतः खेदमागात्
यः शाणार्थी हरशिखरिणा प्राग्गृहीतोज्झितेन ।
यः पौलस्त्यं तमपि जितवान्सोऽपि यस्योपमायां
शङ्के लोकोत्तरगुणनिधेर्मुद्रितो रामभद्रः ॥६०॥

अन्वयः

शिरसां छेदतः खड्गे कुण्ठीभवति (सति) शाणार्थी यः हरशिखरिणा प्राग्गृहीतोज्झितेन खेदम् आगात् । तम् अपि पौलस्त्यं यः जितवान् सः अपि रामभद्रः लोकोत्तरगुणनिधेः यस्य उपमायां मुद्रितः (इति) शङ्के ।

व्याख्या

हरप्रसादलब्धये शिरसां रावणशीर्षाणां स्वहस्ते धारितेन खड्गेन छेदनः कर्तनात् खड्गे कुण्ठीभवति सति शाणार्थी तेजनपाषाणेच्छुः यः पौलस्त्यः हरशिखरिणा कैलासेन प्राग्गृहीतः स्वभुजबलपरीक्षणार्थं पूर्वं समुद्धृतस्तदनन्तरमुज्झितस्तेन खेदमागात् खिन्नो बभूव । यदि साम्प्रतं कैलासः हस्ते धारितस्यात्तर्हि निकषपाषाणस्य कार्यं कृतं स्यादिति हेतो खिन्नो बभूवेति भावः । तमपि पौलस्त्यं रावणं य जितवान्सोऽपि रामभद्रः लोकोत्तरगुणानां निधेः यस्य कलशस्योपमाया मुद्रितो न्यून इति शङ्के । अत्र सारालङ्कारः ।

भाषा

शकर को प्रसन्न करते समय अपने मस्तकों को काटते २ तलवार की धार कुण्ठित होने पर उस पर सान चढ़ाने की इच्छा वाला रावण अपने बल की परीक्षा मे उठाए हुए और बाद में छोड दिए हुए कैलास पर्वत का स्मरण कर दुःखी हुआ । अर्थात् यदि उस समय भी कैलाश हाथ में होता तो उस पर तलवार को सान लग जाती । ऐसे प्रतापी रावण को भी जिसने जीत लिया ऐसे रामचन्द्र भी अलौकिक गुणो के आकर राजा कलश की उपमा मे न्यून है ऐसा मै समझता हूँ ।

मन्थक्षोणीधरविदलिताम्भोधितीव्रक्रुधेव
क्ष्माभृन्मूलान्यपि दलयति व्यायतैर्या तरङ्गैः ।
सेनाचक्रक्षपितसलिलां तां चकार स्थलं यः
श्रीकाश्मीरक्षितिकुमुदिनीचन्द्रमाश्चन्द्रभागाम् ॥६१॥

अन्वयः

या व्यायतैः तरङ्गैः मन्थक्षोणीधरविदलिताम्भोधितीव्रक्रुधा इव क्ष्माभृन्मूलानि अपि दलयति । श्रीकाश्मीरक्षितिकुमुदिनीचन्द्रमाः यः सेनाचक्रक्षपितसलिलां तां चन्द्रभागां स्थलं चकार ।

व्याख्या

या (चन्द्रभागा नदी) व्यायतैः दीर्घैस्तरङ्गैरूर्मिभिः "भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा स्त्रियां वीचिरथोर्मिषु" इत्यमरः । मन्थक्षोणीधरः मन्दरगिरिस्तेन विदलितः संक्षुब्धः मथितः योऽम्बोधिर्नदीवल्लभः क्षीरसागरस्तेन संजाता तीव्रक्रुध् तेन मन्थ-

क्षीरनीरधिवल्लिनाम्भोभिलीलकुधा इव तीव्रकोपादित्यर्थः । क्ष्मामृन्मूलानि पर्वताधोभागानपि वल्मलि विवलयति । एकेन मन्थरेण तद्वल्लभोऽब्धिर्विवलित इति सकलानपि पर्वतान् चन्द्रभागा विदारयतीति भावः । पक्षे नृपमूलान्यपि विवलयति । श्रीकाश्मीरक्षितिरेव कुमुदिनी तस्याः कृते चन्द्रमाः चन्द्रस्वरूपो यः कलशः सेनामण्डलेन क्षपितं व्ययीकृतं सलिलं यस्यास्सा तां प्रसिद्धां चन्द्रभागां स्थलं भूमिं चकार । तस्य सेनामण्डलमतीव बृहदासीदिति भावः ।

भाषा

जो चन्द्रभागा नदी, मन्दराचल से अपने प्रिय पति क्षीरसागर के मथे जाने के उत्कट क्रोध से अपनी बडी २ लहरों से मानों पर्वतों की जड़ो को ही खोद फेंक रही है पक्ष मे राजाओ की जड़ खोद रही है, उस चन्द्रभागा नदी के जलों को काश्मीर की भूमिरूप कुमुदिनी के लिए चन्द्रमास्वरूप राजा कलश ने अपनी असख्य सेना समूह से जलरहित कर जमीन बना दिया । अर्थात् जो नदी अपने पति क्षीरसागर को मथने का बदला लेने में सब पर्वतो की जड़ पक्ष मे राजाओं की जड़ खोदकर फेंक देना चाहती है ऐसी अगाध नदी को भी जिसकी असख्य पलटनो ने पानी का प्रयोग कर सुखा कर जमीन बना दिया । अर्थात् उसकी पलटनें अगणित थी ।

धत्ते यस्यास्तपनदुहितुः शेषकल्लोललीलां
नीलच्छाया तुरगपटली भास्करस्याधुनापि ।
तां कालिन्दीं सकलजयिनो यस्य सेनासमूहः
पृथ्वीलीलालुलितकबरीमेचकामाचचाम ॥६२॥

अन्वयः

भास्करस्य नीलच्छाया तुरगपटली यस्याः तपनदुहितुः शेषकल्लोललीलां अधुना अपि धत्ते । सकलजयिनः यस्य सेनासमूहः पृथ्वीलीलालुलितकबरीमेचकां तां कालिन्दीम् आचचाम ।

व्याख्या

भास्करस्य सूर्यस्य नीला हरिता छाया कान्तिर्यस्यास्सा नीलच्छाया तुरगपटल्यश्वसमूहः यस्यास्तपनदुहितुः यमुनायाः शेषकल्लोललीलां शेषनागकल्लोलविलासमुर्वरिततरङ्गशोभां चाऽधुनाऽपि धत्ते धारयति । सकलजयिनो यस्य

कलशस्य सेनासमूहः पृथ्व्याः लीलया लुलिता इतस्ततो लुठिता या कबरी केशभारः "कबरी केशवेशोऽथ" इत्यमरः। तद्वन्मेचका श्यामा तां कालिन्दीं यमुनामाचमनं जलपानेन शमयामास।

भाषा

सूर्य का हरे रंग के घोडो का समूह जिस सूर्यकन्या यमुना के, शेषनाग के सम्पर्क से काली ऊंची २ लहरों की शोभा को या अत्यधिक ऊंची उठने वाली लहरों के काले रंग की शोभा को अभी भी धारण करते है अर्थात् स्वयं हरे रंग के है, सबका विजय करने वाले राजा कलश की सेना ने पृथ्वी के इधर-उधर बिखरे केश पास के समान काले रंग की उस यमुना नदी को पानी पीते पीते सुखा दिया।

उर्वीमुर्वीधरसहचरैः पूरयन्यो यशोभि-
स्तस्मिःशेषक्षितिपरिजयी कौरवं क्षेत्रमागात्।
यत्र क्षत्रक्षतजपटले पार्थबाणाभिघातैः
कर्णभ्रष्टं कुरुपतियशोदन्तपत्रं ममज्ज ॥६३॥

अन्वयः

निःशेषक्षितिपरिजयी यः उर्वीधरसहचरैः यशोभिः उर्वीं पूरयन् तत् कौरवं क्षेत्रम् आगात्। यत्र क्षत्रक्षतजपटले पार्थबाणाभिघातैः कर्णभ्रष्टं कुरुपतियशोदन्तपत्रं ममज्ज।

व्याख्या

निःशेषक्षितेः सम्पूर्णपृथिव्याः परिजयी विजेता यः कलशः उर्वीधरः शेषो हिमालयो वा तस्य सहचरैः सदृशैरुज्ज्वलैः श्वेतैर्यशोभिरुर्वीं पृथ्वीं पूरयन्नभिव्याप्नुवन् तत् प्रसिद्धं कौरवं क्षेत्रमागादागतवान्। यत्र क्षेत्रे क्षत्राणां क्षतजं रुधिरं तस्य पटले समूहे रुधिरपङ्के पार्थबाणानामर्जुनशराणामभिघातैः कर्णोऽङ्गराजः राधासुतः श्रोत्रं च तस्माद्भ्रष्टं कुरुपतिर्दुर्योधनस्तस्य यश एव दन्तपत्रं ताटङ्को ममज्जाऽन्तःपतितम्। अत्र रूपकालङ्कारः।

भाषा

सम्पूर्ण पृथ्वी का विजेता वह कलश राजा, शेषराज या हिमालय के सदृश श्वेत कीर्ति से समग्र पृथ्वी को व्याप्त करता हुआ उस प्रसिद्ध कौरव क्षेत्र में

अर्थात् महाभारत की युद्धभूमि में आ पहुँचा, जहाँ कि रणभूमि में क्षत्रियों के रुधिरपंक में अर्जुन के बाणों के अभिघात से अङ्गराज कर्ण से या कान से गिरा दुर्योधन का यशरूपी कर्ण का आभूषण डूब गया। महाभारत के कर्णपर्व से दुर्योधन की हार का अनुमान होने लगता है।

यस्य प्रेयान्प्रथमतनयः कं न चक्रे सहर्षं
श्रीहर्षादप्यधिककवितोत्कर्षवान्हर्षदेवः ।
तीक्ष्णः स्वस्मिन्कनकवलये येन चक्रे रणेषु
क्ष्माभृच्चूडामणिकषणतः कुण्ठधारः कृपाणः ॥६४॥

अन्वयः

यस्य प्रेयान् प्रथमतनयः श्रीहर्षात् अपि अधिककवितोत्कर्षवान् हर्षदेवः कं सहर्षं न चक्रे। येन रणेषु क्ष्माभृच्चूडामणिकषणतः कुण्ठधारः कृपाणः स्वस्मिन् कनकवलये तीक्ष्णः चक्रे।

व्याख्या

यस्य कलशस्य प्रेयानतिशयेन प्रियः प्रथमतनयः श्रीहर्षादपि शीलादित्याद्यपरनामधेयात् श्रीहर्षवर्धनादप्यधिककवितोत्कर्षवान् काव्येऽद्वितीयमुत्कर्षं दधानः हर्षदेवः कं सहर्षं सानन्दं न चक्रे। येन हर्षदेवेन रणेषु क्ष्माभृतां राज्ञां चूडामणीनां शिरःकर्तनसमये शेखरीभूतमणीनां कषणतः संघर्षात् कुण्ठधारः कुण्ठा अशिता धाराऽग्रभागो यस्य सः कृपाणः खड्गः स्वस्मिन् निजे कनकवलये सुवर्णकटके "स्वर्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेम हाटकम्" "आवापकः पारिहार्यः कटको वलयोऽस्त्रियाम्" इत्युभयत्राप्यमरः। तीक्ष्णः निशितः चक्रे कृतः।

भाषा

कलश राजा का प्रिय ज्येष्ठपुत्र, शिलादित्य हर्षवर्द्धन से भी अधिक कविता में उत्कर्ष रखने वाला, हर्षदेव, किसको हर्षयुक्त नहीं करता था अर्थात् सबको हर्षित करता था। जिसने युद्धों में राजाओं के चूड़ामणि अर्थात् मस्तक पर के आभूषणों को काटने से कुण्ठित धार वाली अपनी तलवार को अपने सोने के कड़े पर रगड़ कर तीक्ष्ण किया था।

यस्यापूर्वा पदपरिणतिः कापि चर्या विचारे
वाक्चातुर्ये प्रसरति यतिर्वादिनां मौनमुद्रा ।

प्रख्यातं तत्त्रिजगति पुनः सर्वभाषाकवित्वं
यस्यास्वादे भवति सिकताकर्कशा शर्करापि ॥६५॥

अन्वयः

यस्य अपूर्वा पदपरिणतिः विचारे का अपि चर्या वाक्चातुर्ये प्रसरति वादिनां मौनमुद्रा गतिः त्रिजगति तत् पुनः प्रख्यातं सर्वभाषाकवित्वं यस्य आस्वादे शर्करा अपि सिकताकर्कशा भवति ।

व्याख्या

यस्य हर्षदेवस्याऽपूर्वा विचित्रा पदपरिणतिः रचनापरिपाकः प्रतिष्ठातिशयो वा विचारे कापि चर्या योगमार्गस्थितिः ध्यानमित्यर्थः । वाक्चातुर्ये वाणीप्रागल्भ्ये प्रसरति विस्तारमाप्नुवति वादिनां प्रतिपक्षवादिनां मौनमुद्रा गतिः प्रत्युत्तरप्रदानाऽसमर्थत्वे मौनावलम्बिनी दशा, त्रिजगति त्रिभुवनेषु तत्पुनः प्रख्यातं प्रसिद्ध सर्वभाषासु कवित्वं काव्यरचनानैपुण्यं यस्य काव्यस्याऽऽस्वादे सति शर्करापि सिकतावत् वालुकावत् "सिकताः स्युर्वालुकापि" इत्यमरः । कर्कशा कठोरा नीरसा भवति ।

भाषा

जिस हर्षदेव का रचना परिपाक, या प्रतिष्ठा की पूर्णता विचित्र थी । विचार मे विलक्षण योगमार्ग की झलक थी, वाणी की प्रगल्भता फैलती रहने पर विपक्षियो के लिए उत्तर न दे सकने से मौन धारण कर लेना ही गति थी । साथ ही साथ तीनो लोको में वह सर्वभाषाओ मे कविता करने की शक्ति प्रसिद्ध थी जिस कविता का स्वाद मिल जाने पर चीनी भी बालू के ऐसी करकरी और नीरस मालुम होती थी ।

येनोत्कण्ठाव्यसनगुरुणा दत्ततापास्तरुण्यः
स्वस्मिन्मूर्च्छाक्लमपरवशा बाष्पपङ्के लुठन्ति ।
तासां गण्डस्थलभुवि पुनः पाण्डिमा वर्ण्यते किं
यत्र स्पष्टीभवति शपथैः श्रोत्रयोर्दन्तपत्रम् ॥६६॥

अन्वयः

उत्कण्ठाव्यसनगुरुणा येन दत्ततापाः तरुण्यः मूर्च्छाक्लमपरवशाः स्वस्मिन् बाष्पपङ्के लुठन्ति । तासां गण्डस्थलभुवि पाण्डिमा किं पुनः वर्ण्यते यत्र श्रोत्रयोः दन्तपत्रं शपथैः स्पष्टीभवति ।

व्याख्या

उत्कण्ठाव्यसनगुणमौत्सुक्यासक्तिदायिना येन हर्षदेवेन वसन्तापसन्तापो यास्यस्तास्तरुण्यो युवतयः मूर्च्छाकलमस्य मोहरूपपीडायाः परवशाः पराधीनाः अचेतना इत्यर्थः । स्वस्मिन् निजे बाष्पपङ्केऽश्रुपङ्के लुठन्ति विचरन्ति । तासां तरुणीनां गण्डस्थलभुवि कपोलस्थले पाण्डिमा पाण्डुत्वं किं पुनः वर्ण्यते कथ्यते यत्र श्रोत्रयोः कर्णयोः दन्तपत्रं हस्तिदन्तनिर्मितं श्वेतं कर्णभूषणपत्रं शपथैः स्पष्टी-भवति काठिन्येन पृथक्तया तस्य ज्ञानम्भवति, एकवर्णमयत्वादुभयोरिति भावः । अत्र सामान्यं नामाऽलङ्कारः ।

भाषा

अपनी ओर औत्सुक्य और आसक्ति को देने वाले उस हर्षदेव से पीडित युवतियाँ बेहोशी के मालिन्य से पराभूत होकर अर्थात् बेहोश होकर अपने ही आसूओ के पङ्क मे लोटपोट किया करती थी । उन युवतियो के गालो पर की सफेदी का क्या वर्णन किया जाय जहाँ कान में के हाथीदाँत के बने सफेद कर्णभूषण गालो से अलग है इसका ज्ञान बडी कठिनता से होता था अर्थात् उनके गण्डल हाथी दात के ऐसे सफेद पड गये थे ।

दुर्गं प्राप्य क्षितिपतियशोधाम यस्यानुजोऽसौ
कस्याकार्षीन्न खलु पुलकोत्कर्षमुत्कर्षदेवः ।
येनारोप्य स्वभुजशिखरे निर्मिता दूरमुर्वी
म्लेच्छक्षोणीपतिहरिखुरक्षोदमुद्रादरिद्रा ॥६७॥

अन्वयः

यस्य अनुजः असौ उत्कर्षदेवः क्षितिपतियशोधाम दुर्गं प्राप्य कस्य पुलकोत्कर्षं न खलु अकार्षीत् । येन स्वभुजशिखरे आरोप्य उर्वी म्लेच्छक्षोणीपतिहरिखुरक्षोदमुद्रादरिद्रा दूरं निर्मिता ।

व्याख्या

यस्य हर्षदेवस्याऽनुजोऽसावुत्कर्षदेवः क्षितिपतिः क्षितिराजः तस्य यशोधाम कीर्तिस्थानं दुर्गं लोहरदुर्गं प्राप्य कस्य जनस्य पुलकोत्कर्षमानन्दातिरेकं न व्यकार्षीत् । सर्वेषामेवाऽऽनन्दोत्कर्षमकार्षीदिति भावः । येनोत्कर्षदेवेन

स्वभुजशिखरे निजभुजाग्रे आरोप्य संस्थाप्योर्वी पृथ्वी म्लेच्छा ये क्षोणीपतयो नृपतयस्तेषां हयोऽश्वास्तेषां खुरक्षोदमुद्राभिः खुरसञ्चूर्णनकीलाभिर्वर्जिता रहिता दूरमत्यन्तं निर्मिता कृता । अस्मिन्नेव सर्गे सप्तचत्वारिंशत्तमः श्लोकोऽवलोकनीयः ।

भाषा

हर्षदेव के छोटे भाई उत्कर्षदेव ने विपक्षी राजा क्षितिराज के कीर्तिस्थान लोहरदुर्ग नाम के किले को जीत कर किसको आनन्दातिरेक से युक्त नहीं किया अर्थात् सबको आनन्दित किया । जिस उत्कर्षराज ने पृथ्वी को अपनी भुजा पर लेकर म्लेच्छ राजाओं के घोडो के खुरो से खुदने के चिन्हों से पूर्णतया रहित बना दिया । अर्थात् म्लेच्छ राजाओ का पूर्णतया संहार किया ।

नाम्नापरो विजयमल्ल इति प्रतापी
भूपस्य तस्य तनयो नयनाभिरामः ।
पुष्पोपहारवति नूतनदन्तकान्त्या
वाग्देवता व्यधित यस्य मुखे प्रवेशम् ॥६८॥

अन्वयः

तस्य भूपस्य प्रतापी नयनाभिरामः विजयमल्लः इति नाम्ना अपरः तनयः (आसीत्) नूतनदन्तकान्त्या पुष्पोपहारवति यस्य मुखे वाग्देवता प्रवेशं व्यधित ।

व्याख्या

तस्य भूपस्य राज्ञः कलशस्य प्रतापी प्रभाववान् नयनयोर्नेत्रयोरभिरामस्सुखदः विजयमल्ल इति नाम्नाऽपरस्तनय आसीत् नूतनदन्तकान्त्या नवीनदशनानां प्रभया पुष्पोपहारवति पूजनार्थार्पितैः पुष्पैस्सहिते यस्य विजयमल्लस्य मुखे आनने नूतनदन्तानां पुष्पैस्सहाऽभेदाध्यवसायाद्रूपकम् । वाग्देवता सरस्वती प्रवेशं व्यधित कृतवती । अत्र वसन्ततिलकाच्छन्दो रूपकालङ्कारश्च ।

भाषा

उस कलश राजा का प्रतापी, दर्शन से आँखो को आनन्द देनेवाला विजय-मल्ल नाम का दूसरा पुत्र था । दातो की नूतन श्वेतकान्ति रूपी पुष्पों से पूजित जिसके मुख में सरस्वती प्रविष्ट थी ।

नित्याभ्यासात्परिणतलिपेः स्रष्टुराश्चर्यलेखं
तल्लावण्यं वपुषि ललिते तस्य भूपालसूनोः ।
यत्र स्फूर्जल्लटभललनालोकलोभैकपात्रे
जागर्ति ज्यानिनदमुखरः सन्ततं पुष्पचापः ॥६९॥

अन्वयः

तस्य भूपालसूनोः ललिते वपुषि नित्याभ्यासात् परिणतलिपेः स्रष्टुः आश्चर्यलेखं तत् लावण्यं स्फूर्जल्लटभललनालोभैकपात्रे यत्र पुष्पचापः ज्यानिनदमुखरः सन्ततं जागर्ति ।

व्याख्या

तस्य भूपालसूनोः कलशपुत्रस्य विजयमल्लस्य ललिते रम्ये वपुषि शरीरे नित्याभ्यासात् परिणतलिपेः परिणता परिपाकमापन्ना लिपिरक्षरविन्यासो यस्य स तस्य अभ्यस्तहस्तस्येत्यर्थः । स्रष्टुर्ब्रह्मणः आश्चर्यलेखं विस्मयप्रदसौन्दर्यविशिष्टं तल्लावण्यं सौन्दर्यं स्फूर्जत् उल्लसतो लटभललनालोकस्य सुन्दरीजनस्य लोभैकपात्रे लालसाश्रये यत्र लावण्ये पुष्पचापः कामः ज्याया निनदेन शब्देन "शब्दो निनादनिनदध्वनिध्वानरवस्वनाः" इत्यमरः । मुखरः सशब्दः सन् सन्ततं निरन्तरं जागर्ति विद्यमानोऽस्ति ।

भाषा

उस कलश राजा के पुत्र विजयमल्ल के सुन्दर शरीर पर नित्य के अभ्यास से परिपाक को प्राप्त अक्षरविन्यास वाले अर्थात् अभ्यस्तहस्त ब्रह्मा का वह विस्मयप्रद सौन्दर्यविशिष्ट लावण्य था, उल्लसित सुन्दरियों के लोभ का एक मात्र स्थान, उस लावण्य पर, कामदेव अपनी प्रत्यञ्चा के शब्द से शब्द करते हुए सदैव पहरा दिया करता था। अर्थात् उसके सौन्दर्य को देखकर कामिनियाँ कामासक्त हो जाया करती थी ।

साम्प्रतं कविस्स्वजीवनवृत्तान्तं निबध्नाति—

तस्मादस्ति प्रवरपुरतः सार्धगव्यूतिमात्रीं
भूमिं त्यक्त्वा जयवनमिति स्थानमुत्तुङ्गचैत्यम् ।
कुण्डं यस्मिन्नमलसलिलं तक्षकस्याहिभर्तु-
र्धर्मध्वंसोद्यतकलिशिरश्छेदचक्रत्वमेति ॥७०॥

अन्वयः

तस्मात् प्रवरपुरतः सार्धगव्यूतिमात्रीं भूमिं त्यक्त्वा जयवनम् इति उत्तुङ्गचैत्यं स्थानं यस्मिन् अहिभर्तुः तक्षकस्य अमलसलिलं कुण्डं धर्मध्वंसोद्यतकलिशिरश्छेदचक्रत्वम् एति ।

व्याख्या

तस्मात्प्रवरपुरतः सार्धगव्यूतिमात्रीं कोशत्रयपरिमितां "गव्यूतिः स्त्री क्रोशयुगम्" इत्यमरः । भूमिं त्यक्त्वाऽपहाय जयवनमिति नाम्ना प्रसिद्धमुत्तुङ्गान्युन्नतानि चैत्यान्यायतनानि यस्मिंस्तत् स्थानमस्ति यस्मिन्नहिभर्तुस्सर्पाधिराजस्य तक्षकस्याऽमलं सलिलं यस्मिंस्तत् कुण्डं धर्मस्य ध्वंसे विनाशे उद्यतः यः कलिस्तस्य शिरसः छेदाय कर्तनाय चक्रत्वमेति प्राप्नोति । अस्मिन्नेव सर्गे षोडशसंख्याकश्लोकोऽवलोक्यः ।

भाषा

उस प्रवरपुर से तीन कोस की दूरी पर जयवन नाम का ऊँचा चैत्यस्थान है जहाँ सर्प के राजा तक्षक का स्वच्छ जल से भरा वह तालाब (कुण्ड) धर्म का नाश करने में तत्पर कलि के मस्तक का छेद करने के लिये चक्र का काम करता था। अर्थात् जहाँ कलि गर्दन कट जाने के भय से प्रवेश ही नही करता था ।

यस्यास्ति खोनमुष इत्युपकण्ठसीम्नि
ग्रामः समग्रगुणसम्पदवाप्तकीर्तिः ।
आलानरूपबहुयूपवति प्रविष्टं
नो यत्र बन्धनभियेव कलिद्विपेन ॥७१॥

अन्वयः

यस्य उपकण्ठसीम्नि समग्रगुणसम्पदवाप्तकीर्तिः खोनमुषः ग्रामः अस्ति । आलानरूपबहुयूपवति यत्र बन्धनभिया इव कलिद्विपेन नो प्रविष्टम् ।

व्याख्या

यस्य जयवनस्योपकण्ठसीम्नि समीपस्थाने "उपकण्ठान्तिकाभ्यर्णाभ्यग्रा अप्यभितोऽव्ययम्" इत्यमरः । समग्रगुणसम्पदा सम्पूर्णगुणविभूत्याऽवाप्ताऽर्जिता

कीर्तिर्येन सः खोनमुख इति नाम्ना प्रसिद्धः ग्रामोऽस्ति। आलानरूपबहुयूपवति गजबन्धनस्तम्भरूपबहुयज्ञस्तम्भवति "आलानं बन्धस्तम्भेऽथ शृंखले" इत्यमरः। यत्र ग्रामे बन्धनभिया बन्धनजन्यभयादिव कलिद्विपेन कलिगजेन नो प्रविष्टम् नाऽऽयातम्।

भाषा

जिस जयवन के समीप मे समग्र गुणगणो की विभूति से कीर्तियुक्त खोनमुख नाम का गाव है। गजबन्धनस्तम्भस्वरूप अनेक यज्ञस्तम्भों के जहाँ होने से बन्धन प्राप्त हो जाने के भय से मानों वहा कलिरूप हाथी जाता ही न था।

ब्रूमस्तस्य प्रथमवसतेरद्भुतानां कथानां
किं श्रीकण्ठश्वशुरशिखरिक्रोडलीलाललाम्नः।
एको भागः प्रकृतिसुभगं कुङ्कुमं यस्य सूते
द्राक्षामन्यः सरससरयूपुण्ड्रकच्छेदपाण्डुम् ॥७२॥

अन्वयः

श्रीकण्ठश्वशुरशिखरिक्रोडलीलाललाम्नः अद्भुतानां कथानां प्रथमवसतेः तस्य किं ब्रूमः। यस्य एकः भागः प्रकृतिसुभगं कुङ्कुमं सूते अन्यः सरससरयूपुण्ड्रकच्छेदपाण्डुं द्राक्षां सूते।

व्याख्या

श्रीकण्ठस्य शिवस्य श्वसुरः पार्वतीजनकः शिखरी हिमालयस्तस्य क्रोडलीलाललाम्नः उत्सङ्गविलासभूषणस्याऽद्भुतानां विचित्राणां कथानां प्रथमवसतेरादिधाम्नस्तस्य खोनमुखस्य विषये किं ब्रूमः। यस्य खोनमुखस्यैकः भाग कुङ्कुमं काश्मीरजं सूते जनयति। अन्यो भागस्तु सरसाः सरयूनदीतटस्थिताः पुण्ड्रकाः स्थूलेक्षुभेदास्तेषां छेदाः खण्डानि तद्वत्पाण्डुस्तां पाण्डुवर्णां द्राक्षां मृद्वीकां "मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा स्वाद्वी मधुरसेति च" इत्यमरः। सूते जनयति।

भाषा

शङ्कर भगवान् के ससुर हिमालय की गोद में विलास का भूषण अर्थात् हिमालय के समीप में विद्यमान, अनेक अद्भुत कथाओं का प्रथमस्थान उस खोनमुख गांव की प्रशंसा में क्या कहा जाय। जिसका एक भाग स्वभावत. सुन्दर

केसर उत्पन्न करता है और दूसरा भाग रस भरे सरयू के तट पर होनेवाले पौंढों के टुकड़ों के समान अर्थात् गण्डेरी के समान पाण्डुवर्ण अंगूरों को उत्पन्न करता है।

कर्तुं कीर्तिप्रणयि कुशलाः कौशिकं गोत्रमुच्चै-
स्तत्र ब्रह्मप्रवणमनसो ब्राह्मणाः केचिदासन्।
यान्काश्मीरक्षितितिलकतां मध्यदेशावतंसान्
गोपादित्यक्षितिपतिरसौ पावनानानिनाय ॥७३॥

अन्वयः

तत्र कौशिकं गोत्रम् उच्चैः कीर्तिप्रणयि कर्तुं कुशलाः ब्रह्मप्रवण-मनसः केचित् ब्राह्मणाः आसन्। असौ गोपादित्यक्षितिपतिः मध्य-देशावतंसान् पावनान् यान् काश्मीरक्षितितिलकताम् आनिनाय।

व्याख्या

तत्र खोनमुषे कौशिकं गोत्रमुच्चैरत्यन्तं कीर्तिप्रणयि यशोभाजनं कर्तुं कुशलाः प्रवीणाः ब्रह्मणि वेदाध्ययने परब्रह्मज्ञाने वा प्रवणं तत्परं मनो येषान्ते केचिद् ब्राह्मणाः आसन्। असौ गोपादित्यक्षितिपतिः काश्मीरनृपतिः मध्यदेशस्यावतंसान् भूषणस्वरूपान् तत्रस्थान् पावनान् पवित्रान् यान् ब्राह्मणान् काश्मीरक्षितेः काश्मीरभूमेः तिलकतां भूषणत्वमानिनाय प्रापितवान्।

भाषा

उस खोनमुष गाव मे कौशिक गोत्र को अत्यन्त कीर्तिशाली बनाने मे कुशल वेदाध्ययन में या परब्रह्म के ज्ञान मे तत्पर कुछ ब्राह्मण निवास करते थे। गोपादित्य नामक प्रसिद्ध काश्मीर के राजा ने मध्यदेश के भूषण रूप, पवित्र जिन ब्राह्मणो को काश्मीर की पृथ्वी के भूषण रूप बनाया। अर्थात् मध्यदेश से लाकर जिन ब्राह्मणो को काश्मीर की शोभा बढ़ाने वाले बनाया।

कीर्तिं येषां शतमखसखीमुत्सुकानामवाप्तुं
धूमस्तोमे मखपरिचिते पूरयत्यन्तरिक्षम्।
नो केषाञ्चिद्वचनमभृच्छोकाकरोऽकाकचिन्तां
शक्रश्चित्रार्पित इव परं छाययाभूद्दरिद्रः ॥७४॥

अन्वयः

शतमखसखीं कीर्तिम् अवाप्तुम् उत्सुकानां येषां मखपरिचिते धूमस्तोमे अन्तरिक्षं पूरयति (सति) शक्रः केषाञ्चित् वचनं नो अशृणोत् नाकचिन्तां न अकरोत् चित्रार्पितः इव छायया परं दरिद्रः अभूत्।

व्याख्या

शतमखस्येन्द्रस्य सखीं तुल्यां कीर्तिमवाप्तुं शतसंख्याकयज्ञकरणादिति भावः। उत्सुकानां येषां ब्राह्मणानां मखेषु यज्ञेषु "यज्ञः सवोऽध्वरो यागः सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः" इत्यमरः। परिचिते यज्ञसम्बन्धिनि धूमस्तोमे धूमसमूहेऽन्तरिक्षमाकाशं पूरयति व्याप्नुवति सति शक्र इन्द्रः केषाञ्चिद्देवानां वचनं नो अशृणोत् नाकस्य स्वर्गस्य रक्षाया "स्वरव्ययं स्वर्गनाकत्रिदिवत्रिदशालयाः" इत्यमरः। चिन्तामपि नाकरोत्, स्वपदच्युतिशङ्कया चित्रेऽर्पितोऽङ्कित इव (निश्चेष्टः कर्तव्याकर्तव्यमूढः) परं केवलं छायया कान्त्या हीनस्सञ्जातः। धूमेन चित्रं विच्छायं जायते। वस्तुतस्तु स्वपदभ्रंशभयादिन्द्रस्य वैवर्ण्यमिति भावः।

भाषा

इन्द्र के समान कीर्ति प्राप्त करने के लिए उत्सुक जिन ब्राह्मणो के (शत) यज्ञो के धूओं से आकाश आच्छादित हो जाने पर, इन्द्र किसी देव की बातें नही सुनता था न तो स्वर्ग की रक्षा की चिन्ता ही करता था किन्तु चित्र में अङ्कित होने के समान मटमैला अर्थात् कान्तिरहित हो गया था। धूएँ से चित्र मटमैला हो ही जाता है। तात्पर्य यह है कि सौ यज्ञ होते देख अपना पद च्युत न हो इस भय से कान्तिविहीन हो गया था।

तेषां जगत्त्रयपवित्रचरित्रभाजां
धत्ते स्म मुक्तिकलशः कुलशेखरत्वम्
यस्याग्निहोत्रपरिशीलनजेन जाता
स्वेदाम्भसेव कलिकालकलङ्कशान्तिः ॥७५॥

अन्वयः

जगत्त्रयपवित्रचरित्रभाजां तेषां मुक्तिकलशः कुलशेखरत्वं धत्ते स्म। यस्य अग्निहोत्रपरिशीलनजेन स्वेदाम्भसा कलिकालकलङ्कशान्तिः जाता इव।

व्याख्या

जगत्त्रये भुवनत्रये पवित्रं पावनं चरित्रं भजन्ति सेवन्त इति जगत्त्रयपवित्रचरित्रभाजस्तेषां मुक्तिकलशः कुलशेखरत्वं कुलालङ्कारत्वं धत्ते स्म। यस्य मुक्तिकलशस्याऽग्निहोत्रस्य परिशीलनात् नैरन्तर्येणाऽनुष्ठानात् जातेन स्वेदाम्भसा स्वेदसलिलेन कलिकालस्य कलङ्कः पापं तस्य शान्तिः जाता इव। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

भाषा

तीनो लोको में पवित्र चरित्र को रखने वाले उन ब्राह्मणो का मुक्तिकलश कुलपति था। जिसके अग्निहोत्र का निरन्तर अनुष्ठान करने में होने वाले प्रस्वेदजल से कलिकाल का पाप मानो धो दिया जाता था अर्थात् दूर हो जाता था।

शङ्के पङ्केरूहवसतिना स्थापिताः शान्तिहेतो-
रन्योन्येर्ष्याकलहचतुरा याश्चतुर्ष्वाननेषु।
एकत्रैव स्वमुखकमले लीलया वल्लभानां
चक्रे तासामपि चतसृणां यः श्रुतीनां निवासम्॥७६॥

अन्वयः

पङ्केरुहवसतिना अन्योन्येर्ष्याकलहचतुराः याः शान्तिहेतोः चतुर्षु आननेषु स्थापिताः तासां चतसृणां वल्लभानां श्रुतीनाम् अपि यः एकत्र स्वमुखकमले एव लीलया निवासं चक्रे (इत्यहम्) शङ्के।

व्याख्या

पङ्केरुह पद्म वसतिः स्थानं यस्य स तेन ब्रह्मणाऽन्योन्य परस्परमीर्ष्याकलहे चतुरा निपुणाः याः श्रुतयः शान्तिहेतोः शान्त्यर्थं चतुर्ष्वाननेषु मुखेषु पृथक् २ स्थापिताः प्रतिष्ठापिताः तासां चतसृणां वल्लभानां प्रियाणां श्रुतीनामप्येकत्र स्वमुखकमले निजाननपद्म एव यः मुक्तिकलशः लीलया विलासेन कलहं विनैव निवास स्थितिं चक्रे विदधौ इत्यहं शङ्के। स खलु चतुर्वेदविदिति भावः। अत्र समासोक्त्यलङ्कारः।

भाषा

ब्रह्मा ने परस्पर ईर्ष्या व कलह करने वाली जिन चार श्रुतियो को अर्थात् ४ वेदो को शान्तिस्थापन करने के कारण से अपने चार मुखो में अलग २

रक्खा था, उन चार प्रिय श्रुतियों को भी अर्थात् वेदों को भी मुक्तिकलश ने अपने मुख में एकत्र रख लिया था ऐसा मैं समझता हूँ। अर्थात् मुक्तिकलश चारों वेदों का ज्ञाता था।

दाता पराक्रमधनः श्रुतपारदृश्वा
नाम्नास्य राजकलशस्तनयो बभूव ।
प्रालेयभूधरगुहास्तिमिरच्छलेन
यस्याधुनापि मखधूममिवोद्वहन्ति ॥७७॥

अन्वयः

दाता पराक्रमधनः श्रुतपारदृश्वा अस्य तनयः नाम्ना राजकलशः बभूव प्रालेयभूधरगुहाः तिमिरच्छलेन यस्य मखधूमम् अधुना अपि उद्वहन्ति इव।

व्याख्या

दाता धनवितरणकर्ता पराक्रम एव धनं यस्य सः पराक्रमधनः श्रुतस्य शास्त्रस्य पारं दृष्टवानिति श्रुतपारदृश्वाऽस्य मुक्तिकलशस्य तनयः पुत्रो नाम्ना राजकलशो बभूव, प्रालेयस्य हिमस्य "तुषारस्तुहिनं हिमम्। प्रालेयं मिहिका चाथ" इत्यमरः। भूधरः पर्वतः कैलासस्तस्य गुहाः तिमिरच्छलेन पुञ्जीभूतान्धकारव्याजेन यस्य राजकलशस्य मखधूमं यज्ञधूममद्याप्युद्वहन्ति इव धारयन्ति इव। स खलु विविधयज्ञानां कर्ताऽऽसीदिति भावः।

भाषा

दानशील पराक्रमी समस्त शास्त्रों को जानने वाला इस मुक्तिकलश का राजकलश नामक पुत्र हुआ। कैलासपर्वत की गुफाएँ मानो अन्धकार के मिष से अभी भी उसके यज्ञ के धूओं को धारण करती हैं। अर्थात् उसने अनेक यज्ञ किये थे।

द्राक्षापूर्णान्यखिलजनताभोगहेतोर्वनानि
व्याख्यास्थानान्यमलसलिला यस्य कूपाः प्रपाश्च ।
स्थाने स्थाने सुकृतवसतेर्मण्डलाग्रावतंसा
धर्मस्याविष्कृतकलिभयस्याङ्गरक्षा बभूवुः ॥७८॥

अन्वयः

अखिलजनताभोगहेतोः यस्य वनानि द्राक्षापूर्णानि (कृतानि) यस्य स्थाने स्थाने अमलसलिलाः कूपाः प्रपाः व्याख्यास्थानानि च सुकृतवसतेः यस्य मण्डलाग्रावतंसाः आविष्कृतकलिभयस्य धर्मस्य अङ्कुरत्राः बभूवुः ।

व्याख्या

अखिला सम्पूर्णा जनता जनसमूहस्तस्य भोगहेतोस्सुखानुभवाय निष्प्रतिबन्धं सकलजनोपभोगार्थं यस्य राजकलशस्य वनानि द्राक्षाभिः पूर्णानि, यस्य राजकलशस्य स्थाने स्थाने अमल सलिलं जलं येषान्ते कूपाः प्रपाः पानीयशालिकाः "प्रपा पानीयशालिका" इत्यमरः। व्याख्यास्थानानि शास्त्रव्याख्यानगृहाणि च सुकृतवसतेः पुण्यधाम्नः यस्य राजकलशस्य मण्डलाग्रो देशः स एव तस्य देशस्याऽवतंसरूपा भूषणरूपाः पूर्वोक्ताः द्राक्षापूर्णवनकूपप्रपादयः आविष्कृतं प्रकटीकृतं कलिभयं येन स तस्य धर्मस्याऽङ्कुरक्षा अङ्कुरक्षासाधनानि बभूवुः ।

भाषा

समस्त जनता के उपभोग के लिए जिस राजकलश के द्वारा निर्मित अगूरों से भरे बाग, स्थान स्थान पर निर्मल जल वाले कूप और पौसरे और शास्त्र की व्याख्या करने के लिए बनाए घर थे। उस पुण्यात्मा राजकलश के मण्डलाग्र देश को शोभित करने वाली उपर्युक्त वस्तुएँ प्रकट होनेवाले कलियुग के भय से युक्त धर्म के अङ्कुरक्षक थे।

क्षमासारः सारस्वतरसनिधानं श्रुतिनिधिः
समुत्पन्नस्तस्मादमलयशसो ज्येष्ठकलशः ।
महाभाष्यव्याख्यामखिलजनवन्द्यां विदधतः
सदा यस्य च्छात्रैस्तिलकितमभूत्प्राङ्गणमपि ॥७९॥

अन्वयः

अमलयशसः तस्मात् क्षमासारः सारस्वतरसनिधानं श्रुतिनिधिः ज्येष्ठकलशः समुत्पन्नः। अखिलजनवन्द्यां महाभाष्यव्याख्यां विदधतः यस्य छात्रैः प्राङ्गणम् अपि सदा तिलकितम् अभूत् ।

व्याख्या

अमलयशसः निर्मलकीर्तेस्तस्मात् राजकलशात् क्षमायाः भूमेस्सारभूतः क्षमा क्षान्तिरेव सारो यस्य स वा सारस्वतरसस्य शास्त्ररसस्य निधानं स्थानं श्रुतीनां वेदानां "श्रुतिः स्त्री वेद आम्नायस्त्रयी धर्मस्तु तद्विधिः" इत्यमरः । निधिः ज्येष्ठकलशः समुत्पन्नः । अखिलजनैर्वन्द्यां प्रशंसनीयां महाभाष्यव्याख्यां पाणिनिसूत्रमहाभाष्यटीकां विदधतः कुर्वतो यस्य ज्येष्ठकलशस्य छात्रैरन्तेवासिभिः प्राङ्गणमपि सदा सर्वदा तिलकितं सुशोभितमासीत् । अत्यधिकच्छात्रास्तस्य समीपे पठनार्थमागता इति भावः ।

भाषा

निर्मल कीर्ति वाले राजकलश से पृथ्वी का सारभूत या क्षमाशील शास्त्रो के तत्त्वो की निधि, वेदो का खजाना रूप ज्येष्ठकलश उत्पन्न हुआ । समस्त लोगो से प्रशसनीय पाणिनिसूत्र की पतञ्जलि विरचित महाभाष्य की टीका करने वाले जिसके छात्रगणो से उसके मकान का आँगन भी सदा सुशोभित रहा करता था ।] अर्थात् कमरा भर जाने पर छात्र लोग आगन में भी बैठकर पढ़ा करते थे ।

इष्टापूर्तेष्वतिथिविषये सान्त्वने सेवकाना-
मन्येष्वन्येष्वपि च गहनं किं नु तस्योचितेषु ।
दृष्टादृष्टोपकरणगणप्रापणे यः प्रवीणां
नागादेवीमलभत शुभस्तोमपात्रं कलत्रम् ॥८०॥

अन्वयः

इष्टापूर्तेषु अतिथिविषये सेवकानां सान्त्वने अन्येषु अन्येषु उचितेषु च अपि तस्य किं नु गहनं यः दृष्टादृष्टोपकरणगणप्रापणे प्रवीणां नागादेवीं शुभस्तोमपात्रं कलत्रम् अलभत ।

व्याख्या

इष्टापूर्तेषु क्रतुकर्मसु खातादिकर्मसु अतिथिविषये अतिथिसम्पूजने सेवकानां भृत्यानां सान्त्वने प्रसादेऽन्येषूचितेष्वपि कृत्येषु च तस्य ज्येष्ठकलशस्य किन्नु गहनं दुष्करं सर्वं सुलभमित्यर्थः । यः ज्येष्ठकलशः दृष्टादृष्टानाम् ऐहिकामुष्मिकोभयविधानाम् उपकरणगणानां सामग्रीणां प्रापणे सान्निध्यकरणे प्रवीणां नागादेवीं बिल्हणमातरं शुभस्तोमानां कल्याणसमूहानां पात्रं भाजनं कलत्रं पत्नीमलभत ।

भाषा

यज्ञादिकार्यों में, अतिथिसत्कार के बारे मे, नौकरो को प्रसन्न रखने में तथा अन्यान्य उचित कार्यों में भी उस ज्येष्ठकलश के लिए क्या कठिन था जिसनें ऐहिक और आमुष्मिक दोनों सामग्रियों को प्राप्त कर लेने में प्रवीण, कल्याणसमूहों का स्थान नागादेवी नामका स्त्रीरत्न प्राप्त किया था।

अङ्गैस्त्वङ्गत्कनकरुचिभिः कार्मणं लोचनानां
सूरेस्तस्मादजनि जगतां शेखरो बिल्हणाख्यः।
सान्द्रैर्वेदध्वनिभिरनभिव्यक्तमञ्जीरनादा
मौञ्जीबन्धात्प्रभृति वदने यस्य वाग्देवतासीत् ॥८१॥

अन्वयः

तस्मात् सूरेः त्वङ्गत्कनकरुचिभिः अङ्गैः लोचनानां कार्मणं जगतां शेखरः बिल्हणाख्यः अजनि। यस्य वदने मौञ्जीबन्धात् प्रभृति सान्द्रैः वेदध्वनिभिः अनभिव्यक्तमञ्जीरनादा वाग्देवता आसीत्।

व्याख्या

तस्मात्सूरेर्विदुषः ज्येष्ठकलशात् त्वङ्गत्कनकरुचिभिर्विलसत्कनककान्तिभिरङ्गैः शरीरावयवैः लोचनानां जननेत्राणां कार्मणं मनोमोहनस्वरूपः "वशक्रिया संवननं मूलकर्म तु कार्मणम्" इत्यमरः। जगतां लोकानां शेखरः शिरोभूषणरूपो बिल्हणाख्यः सुतः अजनि सञ्जातः। यस्य बिल्हणस्य वदने मुखे मौञ्जीबन्धादुपनयनकर्मतः प्रभृति आरभ्य सान्द्रैः घनैः वेदध्वनिभिरनभिव्यक्तोऽस्पष्टः मञ्जीरनादः नूपुरशब्दो यस्यास्सा वाग्देवता सरस्वत्यासीत्।

भाषा

उस विद्वान् ज्येष्ठकलश से, सुन्दर सोने की कान्ति के समान कान्ति वाले शरीर के अवयवों से दर्शकों की आँखों को अपने वश मे करने वाला जगत् का शिरोभूषण रूप बिल्हण नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसके मुख में जनेऊ होने के समय से ही ऊंचे ऊंचे वेदोच्चारण के शब्दों से अज्ञात पायल के घुंघरुओं के नाद वाली सरस्वती वास करती थी।

साङ्गो वेदः फणिपतिदिशा शब्दशास्त्रे विचारः
प्राणा यस्य श्रवणसुभगा सा च साहित्यविद्या।

को वा शक्तः परिगणयितुं श्रूयतां तत्त्वमेतत्
प्रज्ञादर्शे किमिव विमले नास्य संक्रान्तमासीत् ॥८२॥

अन्वयः

यस्य साङ्गः वेदः फणिपतिदिशा शब्दशास्त्रे विचारः श्रवणसुभगा सा साहित्यविद्या च प्राणाः। कः परिगणयितुं शक्तः वा एतत् तत्त्वं श्रूयताम् अस्य विमले प्रज्ञादर्शे किं संक्रान्तम् इव न आसीत्।

व्याख्या

यस्य बिल्हणस्य साङ्गो[1] वेदः अङ्गैस्सहिता वेदविद्या, शिक्षाकल्पव्याकरण-ज्यौतिषनिरुक्तच्छन्दांसि षड् वेदाङ्गानि प्रसिद्धानि। फणिपतिः पतञ्जलिः तद्दिशा तन्निर्मितभाष्यप्रकारेण शब्दशास्त्रे व्याकरणशास्त्रे विचारः श्रवणयोः कर्णयोस्सुभगा रम्या सा प्रसिद्धाऽद्भुता साहित्यविद्या च प्राणाः प्राणस्थानीया अतीवप्रिया इत्यर्थः। कः परिगणयितुं शक्तः तस्य वैशिष्ट्यं च को वा पूर्णतया वर्णयितुं समर्थ इत्यर्थः। वा अथवा एतत्तत्त्वं श्रूयतामाकर्ण्यतामस्य बिल्हणस्य विमले निर्मले प्रज्ञादर्शे बुद्धिरूपदर्पणे किं वस्तु का विद्या कला च संक्रान्तमिव प्रतिबिम्बितमिव नासीत्। स खलु सर्वज्ञ आसीदिति भावः।

भाषा

जिस बिल्हण के, साङ्गवेद, पतञ्जलि के महाभाष्य द्वारा प्रतिपादित व्याकरण शास्त्र मे प्राविण्य और कानो को अच्छी लगने वाली रम्य वह प्रसिद्ध साहित्य विद्या, प्राण थे। उसके वैशिष्टय का कौन पुर्णतया वर्णन कर सकता है। या उसके रहस्य को सुनो। उसके निर्मल प्रज्ञा रूपी दर्पण में ऐसी कौन वस्तु थी जिसका प्रतिबिम्ब नही पड़ता था। अर्थात् वह सर्वज्ञ था।

चक्रं यस्याक्रियत वदनप्रेह्वि विद्यावधूनां
श्रीवाग्देव्याश्चरणरजसा कार्मणत्वं गतेन।
याताः सार्धं दिशि दिशि पुनर्बन्धुराः सर्गबन्धाः
कीर्तेः पारिप्लवविदलने सौविदल्ला बभूवुः ॥८३॥

---

[1] छन्दः पादौ शब्दशास्त्रञ्च वक्त्रं कल्पः प्राणो ज्योतिषं चक्षुषी च।
शिक्षा घ्राणं श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं वेदस्याङ्गान्याहुरेतानि षट् च॥

अन्वय

कार्मणत्वं गतेन श्रीवाग्देव्याः चरणरजसा विद्यावधूनां चक्रं यस्य वदनेप्रक्षि अक्रियत । पुनः दिशि दिशि सार्धं याताः बन्धुराः सर्गबन्धाः यस्य कीर्तेः पारिप्लवविदलने सौविदल्लाः बभूवुः ।

व्याख्या

कार्मणत्वं जगन्मोहनत्वं गतेन प्राप्तेन श्रीवाग्देव्याः सरस्वत्याश्चरणरजसा पादधूलिसमूहेन विद्यारूपाङ्गनानां चक्रं समूहः यस्य बिल्हणस्य वदनप्रेक्षि मुखापेक्ष्यक्रियत, सर्वा विद्याः स्वयमेव बिल्हणे निवासं चक्रुरिति भावः । पुनः दिशि-दिशि सार्धं बिल्हणेन सह याताः गताः बन्धुराः मनोहराः सर्गबन्धाः काव्यानि यस्य बिल्हणस्य कीर्तेः पारिप्लवस्य चाञ्चल्यस्य "चञ्चलं तरलं चैव पारिप्लव-परिप्लवे" इत्यमरः । विदलने विनाशकरणे स्थैर्यसम्पादने सौविदल्लाः कञ्चुकिनः "सौविदल्लाः कञ्चुकिनः स्थापत्याः सौविदाश्च ते" इत्यमरः । बभूवुः । तन्निर्मितकाव्यानि तत्कीर्तिस्थैर्यसम्पादने रक्षकाणि बभूवुरिति भावः ।

भाषा

जगत् का मोहन करने वाली श्रीसरस्वती की चरण धूलि के प्रताप से विद्यारूपी कामनियों का समूह उस विल्हण कवि के मुख का दर्शक हो गया अर्थात् सब विद्याएँ आकर्षित होकर स्वयं उसके मुख में वास करने लगी । साथ ही साथ सर्वदिशाओं में बिल्हण के साथ गए हुए मनोहर काव्य उसकी कीर्ति के चाञ्चल्य को रोकने के लिए पहरेदार का काम करने लगे । अर्थात् उसकी निष्कलङ्क कीर्ति उसके बनाए काव्यों से चारों ओर फैल गई ।

विद्वत्तायाः स खलु शिखरं प्राप यस्येष्टरामो
ज्येष्ठो भ्राता क्षितिपतिशतास्थानलीलावतंसः ।
वक्त्रे काव्यामृतरसभरास्वादसक्तैर्यदीये
दृष्टा देवी सुकविजननी सा प्रपापालिकेव ॥८४॥

अन्वयः

सः खलु विद्वत्तायाः शिखरं प्राप यस्य ज्येष्ठः भ्राता इष्टरामः क्षितिपतिशतास्थानलीलावतंसः । यदीये वक्त्रे काव्यामृतरसभरास्वादसक्तैः सा सुकविजननी देवी प्रपापालिका इव दृष्टा ।

व्याख्या

सः खलु बिल्हणः विद्वत्तायाः पाण्डित्यस्य शिखरं प्राप प्राप्तः सर्वश्रेष्ठो जात इति भावः। यस्य बिल्हणस्य ज्येष्ठः भ्राता इष्टरामनामा क्षितिपतीनां राज्ञां शतं तस्यास्थानं राजसभा तस्य लिलावतंसः विलासभूषणं बभूवेति शेषः। यदीये इष्टरामसम्बन्धिनि वक्त्रे मुखे काव्यामृतस्य रसभरः आनन्दसमूहस्तस्याऽऽस्वादे आस्वादग्रहणे सक्तैर्लीनैः जनैः रसिकैरित्यर्थः। सा सुकवीनां जनन्युत्पादयित्री माता देवी सरस्वती प्रपायाः पानीयशालिकायाः "प्रपा पानीयशालिका" इत्यमरः। पालिका गोप्त्री रक्षिकेव दृष्टा। सरस्वती तस्य सेविकासमाना वशंवदा आसीदिति भावः।

भाषा

विल्हण विद्वत्ता में सर्वश्रेष्ठ हो गया। जिसका इष्टराम नाम का बड़ा भाई सैकडो राजाओ की राजसभाओ का सुन्दर भूषण था। जिसके मुख में, काव्यामृत के आनन्द समूह का आस्वाद लेने में तल्लीन रसिकों से वह श्रेष्ठ कवियों को उत्पन्न करने वाली माता देवी सरस्वती पौसरेवाली के समान देखी गई। अर्थात् पौसरेवाली जैसे पानी पिलाकर लोगों की प्यास बुझाती है ऐसे ही उसके मुख से निकले काव्यामृत से रसिक लोग तृप्त हो जाते थे।

यस्यानन्दः समजनि यशोभाजनस्यानुजोऽसौ
स्पर्धाबन्धोद्धुरकविमदच्छेदलीलाकुठारः।
प्रस्थे दौःस्थ्यं हिमशिखरिणः प्राप्य काठिन्ययोगा-
ज्जाने जिह्वाकिसलयसखी शारदा यस्य जाता ॥८५॥

अन्वयः

यशोभाजनस्य यस्य अनुजः स्पर्धाबन्धोद्धुरकविमदच्छेदलीला-कुठारः असौ आनन्दः समजनि। शारदा हिमशिखरिणः प्रस्थे काठिन्ययोगात् दौःस्थ्यं प्राप्य यस्य जिह्वाकिसलयसखी जाता (इति) जाने।

व्याख्या

यशसां कीर्तीनां भाजनं पात्रं तस्य यशोभाजनस्य कीर्तिपात्रस्य यस्य बिल्हणस्याऽनुजः कनिष्ठभ्राता स्पर्धायाः शुभद्वेषस्य बन्धे विरचने शीघ्रकवित्व इति भावः। उद्धुराः प्रचण्डा ये कवयस्तेषां मदस्याऽहम्भावस्य छेदे विनाशकरणे

लीलाकुठाररूपः अनायासेनैव विनाशयिता असौ आनन्दनामा समजनि समुत्पन्नः। शारदा सरस्वती हिमशिखरिणः कैलासस्य प्रस्थे शिखरे सानौ "प्रस्थोऽस्त्री सानुमानयोः" इत्यमरः। काठिन्ययोगात् कठोरतावशात् सौकुमार्याभावात् दौःस्थ्यं वासदुःखं प्राप्याऽनुभूय जिह्वारूपकिसलयस्य रसनारूपपल्लवस्य सखी सङ्गिनी जातेत्यहं जाने। सुकुमारजिह्वोपरि निवासं चक्रे इति भावः।

भाषा

कीर्ति के पात्र उस विल्हण कवि का, शीघ्र कवित्व में प्रचण्ड कवियों का मद काटकर फेंक देने के लिए सुन्दर कुठार स्वरूप आनन्द नाम का छोटा भाई हुआ। सरस्वती, कैलास के शिखर पर कठोरता के कारण निवास करने के दुःख का अनुभव कर जिसके जिह्वारूपी कोमल पत्ते पर निवास करने लगी ऐसा मैं समझता हूँ।

काश्मीरेभ्यः सकलममलं शास्त्रतत्त्वं गृहीत्वा
प्रालेयाद्रेरपि गुणमसौ निश्चितं स्वीचकार।
देशे देशे कथमपरथा वादिनामाननानि
क्रुद्धश्चक्रे तुहिनपटलप्लुष्टपद्मोपमानि ॥८६॥

अन्वयः

असौ काश्मीरेभ्यः अमलं सकलं शास्त्रतत्त्वं गृहीत्वा प्रालेयाद्रेः अपि गुणं निश्चितं स्वीचकार। अपरथा कथं क्रुद्धः असौ देशे देशे वादिनाम् आननानि तुहिनपटलप्लुष्टपद्मोपमानि चक्रे।

व्याख्या

असौ बिल्हणः काश्मीरेभ्यः काश्मीरदेशादमलं विशदं सकलं शास्त्राणां तत्त्वं गृहीत्वा प्रालेयाद्रेः हिमालयस्याऽपि गुणं शैत्यं निश्चितं ध्रुवं स्वीचकार गृहीतवान्। अपरथा अन्यथा कथं केन प्रकारेण क्रुद्धोऽसौ बिल्हणः देशे देशे वादिनां प्रतिवादिपण्डितानामाननानि मुखानि तुहिनपटलेन हिमसमूहेन प्लुष्टानि दग्धानि "प्लुष्टप्लुष्टोषिता दग्धे" इत्यमरः। पद्मानि कमलानि तेषामुपमा सादृश्यं येषां तानि चक्रे कृतवान्। पराजयेन सर्वे प्रतिवादिनो म्लानमुखा जाता इति भावः।

भाषा

इस बिल्हण कवि ने काश्मीर से विशद समग्र शास्त्रों के तत्त्वों को लेकर हिमालय के शैत्य गुण को भी अवश्य ही ले लिया था। अन्यथा कैसे वह देशान्तरों में शास्त्रार्थ में क्रुद्ध होकर प्रतिवादी पण्डितों के मुखों को हिमसमूह से मुरझाए हुए कमलों के समान म्लान कर सकता था। अर्थात् पराजय होने से विपक्षी पण्डितों के मुख मलिन हो जाया करते थे।

सम्प्रति बिल्हणः स्वविजययात्रां वर्णयति—

दोलालोलद्घनजघनया राधया यत्र भग्नाः
कृष्णक्रीडाङ्गणविटपिनो नाधुनाप्युच्छ्वसन्ति।
जल्पक्रीडामथितमथुरासूरिचक्रेण केचित्
तस्मिन्वृन्द्रावनपरिसरे वासरा येन नीताः ॥८७॥

अन्वयः

यत्र दोलालोलद्घनजघनया राधया भग्नाः कृष्णक्रीडाङ्गणविटपिनः अधुना अपि न उच्छ्वसन्ति। तस्मिन् वृन्दावनपरिसरे जल्पक्रीडामथित-मथुरासूरिचक्रेण येन केचित् वासराः नीताः।

व्याख्या

यत्र (वृन्दावने) दोलया प्रेङ्खया "दोला प्रेङ्खादिका स्त्रियाम्" इत्यमरः। लोलच्चञ्चल घन सान्द्र जघन यस्यास्सा तया राधया कृष्णपत्न्या राधादेव्या भग्ना भङ्गेन पातिता कृष्णकृडाङ्गणस्य कृष्णविलासप्राङ्गणस्य विटपिन वृक्षा अधुनापि नोच्छ्वसन्ति नाङ्कुरिता भवन्ति। तस्मिन् वृन्दावनपरिसरे वृन्दावन-प्रान्तप्रदेशे जल्पक्रीडया वादविलासेन मथितानि पराजितानि मथुराया सूरि-चक्राणि विद्वत्समूहा येन स तेन येन बिल्हणेन केचित् वासरा नीता.।

भाषा

जहाँ झूले पर झूलते हुए सुन्दर और बड़े जघन वाली राधिका से तोड़े गए श्रीकृष्ण के क्रीडाङ्गण के वृक्ष अभी भी पनपे नहीं हैं उस वृन्दावन के आस-पास में वाद-विवाद से मथुरा की विद्वन्मण्डली को परास्त करने वाले बिल्हण कवि ने, कुछ दिन बिताए। अर्थात् काश्मीर से निकल कर मथुरा में आकर वहाँ के पण्डितों को शास्त्रार्थ में परास्त कर बिल्हण कवि ने कुछ समय तक वृन्दावन की रम्य भूमि में वास किया।

निःसामान्यश्रुतगुणकथादत्तवादिज्वराणां
छात्रौघानां दिशि दिशि हठात्तन्वतां यच्छशांसि ।
आसीदाशागजमदजलास्वादमत्तद्विरेफ-
श्रेणीगीतध्वनिकलकलः केवलं सोऽन्तरायः ॥८८॥

अन्वयः

निस्सामान्यश्रुतगुणकथादत्तवादिज्वराणां दिशि दिशि हठात् यशांसि तन्वतां छात्रौघानां सः आशागजमदजलास्वादमत्तद्विरेफ-श्रेणीगीतध्वनिकलकलः केवलं अन्तरायः आसीत् ।

व्याख्या

निस्सामान्याभिरसाधारणीभिः श्रुताभिः गुणकथाभिर्दत्तः वादिभ्यः प्रतिपक्ष-विद्वद्भ्यो ज्वरः पीडा भय वा यैस्ते तेषां दिशि-दिशि हठात् बलात् यशांसि यस्य बिल्हणस्य यशांसि तन्वतां विस्तारयतां छात्रौघानां बिल्हणस्य छात्रसमूहानां कृते सः प्रसिद्धः आशागजानां दिग्गजानां मदजलं तस्याऽऽस्वादेन मत्ता मदान्धाः द्विरेफास्तेषां श्रेणीनां गीतध्वनिकलकलः शब्दकोलाहल केवलमन्तराय विघ्नः "विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः" इत्यमर । आसीत् । यशो दिगन्तपर्यन्त व्याप्तं जातमिति भावः ।

भाषा

बिल्हण कवि सम्बन्धी सुनी हुई अलौकिक गुणकथाओ से प्रतिवादियो में ज्वर उत्पन्न करने वाले अर्थात् बिल्हण कवि की अद्भुत गुणकथाओ को सुनाकर उनको भयभीत करने वाले, प्रत्येक दिशा मे बलपूर्वक अर्थात् जोरो से उसके यशो को फैलाने वाले बिल्हण के विद्यार्थियो के लिए वह दिग्गजो के मदजल के स्वाद से मत्त भौरो की पक्ति की गीतध्वनि की झकार ही केवल बाधक थी । अर्थात् उस झकार से वे प्रचार करने में असमर्थ हो जाते थे, अर्थात् उसकी कीर्ति सब दिशाओ मे फैल गई थी ।

ग्रामो नासौ न स जनपदः सास्ति नो राजधानी
तन्नारण्यं न तदुपवनं सा न सारस्वती भूः ।
विद्वान्मूर्खः परिणतवया बालकः स्त्रीपुमान्वा
यत्रोन्मीलत्पुलकमखिला नास्य काव्यं पठन्ति ॥८९॥

अन्वय

असौ ग्रामः न, सः जनपदः न, सा राजधानी नो तत् अरण्यं न, तत् उपवनं न, सा सारस्वती भूः न अस्ति, यत्र विद्वान् मूर्खः परिणतवयाः बालकः स्त्री पुमान् वा अखिलाः उन्मीलत्पुलकम् अस्य काव्यं न पठन्ति ।

व्याख्या

असौ एवम्भूतः ग्रामो न, सः तथाभूतः जनपदः देशो न, सा तादृशी राजधानी नो तद् तादृशमरण्यं वनं न, तद् तादृशमुपवनं न सा तादृशी प्रसिद्धा सा सारस्वती भूः सरस्वत्या इयमिति सारस्वती भूः विद्यामन्दिरं न अस्ति यत्र विद्वान् मूर्खः मूढः परिणतं वयो यस्य स परिणतवयाः वृद्धः बालक स्त्री पुमान् वा पुरुषो वा अखिलास्समस्ताः जनाः उन्मीलन्तः प्रकाशमानाः पुलकाः रोमाञ्चाः यस्मिन्कर्मणि तत् यथा स्यात्तथा अस्य विह्लणस्य काव्यं न पठन्ति । सर्वेऽपि तस्य काव्यानि पठन्ति स्मेति भावः ।

भाषा

ऐसा कोई गाँव, नगर, राजधानी, अरण्य, उपवन या विद्यामन्दिर अर्थात पाठशाला न थी जहाँ विद्वान्, मूर्ख, बुढ्ढे, बालक, स्त्री, या पुरुष सभी रोमाञ्चित होकर इसके काव्य को नही पढते थे अर्थात् सर्वत्र इसके बनाए काव्यो का प्रचार हो गया था ।

यस्योत्तुङ्गैर्मणिमयगृहैर्लीलयोत्तारिता श्री-
र्व्योमोत्तंसा त्रिदशपुरतः प्राप्तसोपानलीलैः ।
द्वारे गङ्गां कृतकलकलां तर्जयित्वा प्रविष्टा
कीर्तिर्यस्य स्ववशमकरोत्तत्पुरं कान्यकुब्जम् ॥९०॥

अन्वयः

यस्य प्राप्तसोपानलीलैः उत्तुङ्गैः मणिमयगृहैः व्योमोत्तंसा श्रीः त्रिदशपुरतः लीलया उत्तारिता तत् कान्यकुब्जं पुरं यस्य कीर्तिः द्वारे कृतकलकलां गङ्गां तर्जयित्वा प्रविष्टा (सती) स्ववशम् अकरोत् ।

व्याख्या

यस्य कान्यकुब्जपुरस्य प्राप्ता गृहीता सोपानलीलाधिरोहणीविलास यैस्तै स्तैरुत्तुङ्गैरत्युन्नतैः मणिमयगृहैः व्योमोत्तंसाऽऽकाशभूषणस्वरूपा श्रीः शोभा लक्ष्मीश्च

त्रिदशानां देवानां पुरतः स्वर्गात् लीलया क्रीडया उत्तारिताऽवतार्य कान्यकुब्जपुरे प्रतिष्ठापिता। तत् कान्यकुब्जं पुरं यस्य बिल्हणस्य कीर्तिः द्वारे कान्यकुब्जपुरद्वारे कृतः विहितः कलकलशब्दः यया, कलहे कलकलशब्दः क्रियते तथैवात्र गङ्गया कलहं कृत्वा प्रतिष्ठाऽपीति भाव। गङ्गां तर्जयित्वा भर्त्सयित्वा बलात् तत्पुरं प्रविष्टा सती स्ववशं स्वाधीनं बिल्हणकीर्तिव्याप्तमित्यर्थः। अकरोत् कृतवती।

भाषा

जिस कान्यकुब्ज नगर के सीढ़ी की शोभा को प्राप्त होने वाले ऊँचे ऊँचे मणियो से बनाए घरो से आकाश या स्वर्ग की भूषण रूप लक्ष्मी कान्यकुब्ज मे उतारी गई थी उस कान्यकुब्ज नगर को, जिसकी कीर्ति ने कान्यकुब्ज नगर के द्वार पर या सीमा पर कलकल शब्दो से झगडा करने वाली गङ्गा नदी को दुत्कार कर वहाँ प्रविष्ट होकर, अपने वश में कर लिया। अर्थात् उसकी कीर्ति कन्नौज में फैल गई।

धर्मस्येव व्युपरतकलेर्यत्र गीर्वाणसिन्धु-
स्रोतःकोशे विशति यमुनावेणिभङ्गया कृपाणः।
तस्मिन्वारान्कति न कृतिना तीर्थनाथे प्रयागे
दत्ता विश्वाद्भुतगुणगणोपार्जिता येन लक्ष्मीः॥६१॥

अन्वयः

यत्र व्युपरतकलेः धर्मस्य कृपाणः गीर्वाणसिन्धुस्रोतःकोशे यमुनावेणिभङ्गया विशति इव तस्मिन तीर्थनाथे प्रयागे कृतिना येन विश्वाद्भुतगुणगणोपार्जिता लक्ष्मीः कति वारान् न दत्ता।

व्याख्या

यत्र (प्रयागे) व्युपरतः मृतः कलिस्तुर्ययुगं यस्मात्स तस्य व्युपरतकलेः धर्मस्य कृपाणः खड्गः गीर्वाणानां देवानां सिंधुः नदी गङ्गा तस्याः स्रोतः प्रवाह एव कोशस्तस्मिन् कोशे खड्गपिधायके "कोशोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेऽर्थौघ-दिव्ययोः" इत्यमरः। यमुनावेणिभङ्गया यमुनातरंगव्याजेन विशतीव प्रवेशं करोतीव तस्मिन् तीर्थनाथे तीर्थराजे प्रयागे कृतिना पुण्यवता येन बिल्हणेन विश्वस्मिन् संसारेऽद्भुतगुणगणैराश्चर्यकारिगुणसमूहैरुपार्जिता सम्प्राप्ता लक्ष्मीः धनसम्पत् कतिवारान् कति अवसरान् न दत्ता। अनेकवारं द्विजेभ्यो धनं बिल्हणेन प्रयागे दत्तमिति भावः। अत्र सापह्नवोत्प्रेक्षालंकारः।

भाषा

जहाँ कलियुग को मार डालने वाला धर्म का कृपाण मानों देवो की नदी गङ्गा के प्रवाह रूपी म्यान में यमुना के (काले) तरङ्ग के मिष से प्रवेश करता है उस तीर्थराज प्रयाग में पुण्यवान् बिल्हण कवि ने अपने संसार में आश्चर्यकारी गुणगणो से पैदा की हुई लक्ष्मी कितने बार ब्राह्मणों को न दी। अर्थात् बिल्हण ने कई बार प्रयाग में ब्राह्मणों को दान मे धन दिया।

मन्ये भ्राम्यत्कलियुगभयादागतस्योपकण्ठे
धर्मस्याध्वश्रमविरमणं शीकरैर्या करोति।
वाराणस्यां पुरि परिहृतो येन तस्यां द्युसिन्धौ
स्नात्वा दैवोपनतकुनृपालोकनोत्थः कलङ्कः ॥९२॥

अन्वयः

वाराणस्यां पुरि या भ्राम्यत्कलियुगभयात् उपकण्ठे आगतस्य धर्मस्य अध्वश्रमविरमणं शीकरैः करोति तस्यां द्युसिन्धौ येन स्नात्वा दैवोपनतकुनृपालोकनोत्थः कलङ्कः परिहृतः (इति) मन्ये।

व्याख्या

वाराणस्यां पुरि काशीनगर्यां या गङ्गा भ्राम्यन्नितस्ततो धावन् सर्वत्र विचरन् यत् कलियुगं चतुर्थयुगं तस्य भयादुपकण्ठे गङ्गायास्तटप्रदेशे आगतस्य प्राप्तस्य धर्मस्याऽध्वनो मार्गस्य श्रमः ग्लानिस्तस्य विरमणं विश्रान्तिं शीकरैः जलकणैः करोति, तस्यां द्युसिन्धौ गङ्गायां येन बिल्हणेन स्नात्वा स्नानं विधाय दैवात् भाग्यवशादुपनतानां प्राप्तानां कुनृपाणां कुत्सितनृपतीनामालोकनेन दर्शनेनोत्थस्तज्जातः कलङ्कः पापसमूहः परिहृतः इतित्थमहं मन्येऽवधारयामि।

भाषा

काशी नगरी में जो, इधर-उधर चारो ओर फैलने वाले कलियुग के भय से, किनारे पर आए हुए धर्म के मार्गश्रम का निवारण अपने छीटो से करती है, उस गङ्गा नदी में जिसने स्नान करके दुर्भाग्य से प्राप्त कुत्सित राजाओं के दर्शन से उत्पन्न पाप को दूर किया।

कालः कालञ्जरगिरिपतेर्यः प्रयाणे धरित्रीं
तुरुष्काराणां खुरपुटरवैः क्ष्मापशून्यां चकार।

श्रीडाहालक्षितिपरिवृढः सोऽपि यं प्राप्य वृत्तं
कर्णः कर्णामृतरसभरास्वादमन्तस्ततान ॥९३॥

अन्वयः

कालञ्जरगिरिपतेः कालः यः प्रयाणे तुरुष्काराणां खुरपुटरवैः धरित्रीं क्ष्मापशून्यां चकार । सः श्रीडाहालक्षितिपरिवृढः कर्णः अपि यं वृत्तं प्राप्य कर्णामृतरसभरास्वादम् अन्तः ततान ।

व्याख्या

कालञ्जरगिरिपतेः कालञ्जरनामकपर्वताधीश्वरस्य कालः यमस्वरूपः यः कर्णः प्रयाणे युद्धार्थमभियाने तुरुष्काराणां तुरुष्कारजातिविशेषीयाश्वानां खुरपुटानां रवैः शब्दैः धरित्रीं पृथ्वीं क्ष्मायाः पृथिव्याः पालका राजानस्तैः शून्यां रहितां चकार । सः डाहालक्षितेः डाहलदेशस्य परिवृढोऽधिपतिः "अधिभूर्नायको नेता प्रभुः परिवृढोऽधिपः" इत्यमर. । कर्णः कर्णनामा राजाऽपि यं वृत्तं वृत्तान्तं प्राप्य कर्णयोः श्रोत्रयोरमृततुल्यरसभरस्य पीयूषसमानाऽऽनन्दसमूहस्याऽऽस्वादमन्तः मानसे ततान विस्तारितवान् । अत्र प्रथमसर्गे १०२-३ श्लोकाववलोकनीयौ ।

भाषा

कालञ्जरपर्वत के राजा को मारडालने वाला, जिसने युद्धयात्रा मे काबुली घोडो के खुरो के शब्दो से पृथ्वी का राजाओ से रहित कर डाला था उस डाहल देश के राजा कर्ण ने भी बिल्हण कवि के वृत्तान्त को जान कर कानो के लिए अमृत तुल्य आनन्द समूह का आस्वादन अपने मन मे किया । अर्थात् राजा कर्णने बिल्हण कवि की कविताओ का स्मरण कर आनन्द प्राप्त किया । या बिल्हण कवि के आने की खबर पाकर मन मे प्रसन्न हुआ ।

यस्यातृप्तः स्फटिकगिरिणा तं विनिक्षिप्य वामे
प्रालेयाद्रेः क्षणमभिमुखो दक्षिणः पाणिरासीत् ।
तं पौलस्त्यं विदलितवतः सूक्तिनिःस्यन्दशीतां
सीताभर्तुर्व्यरचयदसौ राजधानीमयोध्याम् ॥९४॥

अन्वयः

यस्य दक्षिणः पाणिः स्फटिकगिरिणा अतृप्तः तं वामे विनिक्षिप्य क्षणं प्रालेयाद्रेः अभिमुखः आसीत् तं पौलस्त्यं विदलितवतः सीताभर्तुः राजधानीम् अयोध्यां असौ सूक्तिनिस्यन्दशीतां व्यरचयत् ।

व्याख्या

यस्य रावणस्य दक्षिणः सव्येतरः पाणिर्हस्तः स्फटिकगिरिणा कैलासेनाऽतृप्तः कैलासस्य दक्षिणे हस्ते धारणेनाऽपूर्णभारादसंतुष्टः तं कैलासं वामे सव्ये पाणौ विनिक्षिप्य क्षणं क्षणमात्रं प्रालेयाद्रेः हिमालयस्याऽभिमुखः हिमालयोद्धारणे संलग्नो जातः आसीत् बभूव तं पौलस्त्यं रावणं विदलितवतो विनाशयतः सीताभर्तुः रामचन्द्रस्य राजधानीमयोध्यामसौ बिल्हणः सूक्तीनां सरसोक्त्यमृत-रसस्य निस्यन्देन प्रवाहेन शीतां शीतलां व्यरचयत् चकार। अत्र नवमसर्गस्य ८९ तमः श्लोकोऽवधेयः।

भाषा

जिस रावण का दाहिना हाथ कैलास पर्वत के अपर्याप्त बोझ से असन्तुष्ट होकर कैलास को बाएँ हाथ में रखकर क्षण भर के लिए हिमालय के सन्मुख उसे उठाने के ध्येय से उसमें लग गया था, उस रावण को मारने वाले सीता के पति श्री रामचन्द्र की राजधानी अयोध्या को उस बिल्हण कवि ने, सरस उक्ति रूपी अमृतरस के प्रवाह से शीतल कर दिया। अर्थात् अयोध्या की प्रशंसा में अनेक कविताएँ बनाईं।

नीत्वा गङ्गाधरमधरतां डाहलाधीशधाम्नि
क्रीडाक्रान्तप्रतिभटकवेः पूर्वदिक्कोटरेषु।
निर्जित्यैरावतमदजलभ्रान्तभृङ्गालिनादान्
सुत्राम्णोऽपि श्रवसि लुठितं यस्य शङ्के कथाभिः ॥९५॥

अन्वयः

डाहलाधीशधाम्नि गङ्गाधरम् अधरतां नीत्वा पूर्वदिक्कोटरेषु ऐरावतमदजलभ्रान्तभृङ्गालिनादान् निर्जित्य क्रीडाक्रान्तप्रतिभटकवेः यस्य कथाभिः सुत्राम्णः अपि श्रवसि लुठितं (इति) शङ्के।

व्याख्या

डाहलदेशाधीशस्य कर्णस्य धाम्नि सभायां गङ्गाधरनामकं पण्डितविशेषम-धरतां पराजयं नीत्वा पूर्वदिक्कोटरेषु पूर्वाशाप्रान्तेष्वैरावतस्य सुरगजस्य मदजलेन भ्रान्ताश्चलितास्ततो विचरन्तीनां भृङ्गालीनां मधुकरपरम्पराणां नादान् शब्दान् निर्जित्य तिरस्कृत्याऽभिभूय, पूर्वदिग्गतान्विदुषोऽपि शास्त्रार्थे पराजित्येति भावः।

क्रीडया विलासेनाऽऽक्रान्ताः प्रतिभटाः वादिनः कवयो येन स तस्य यस्य बिल्हणस्य कथाभिः वृत्तान्तैः सुत्राम्णः इन्द्रस्यापि "सुत्रामा गोत्रभिद्वज्री वासवो वृत्रहा वृषा" इत्यमरः। श्रवसि कर्णे लुठितं सञ्चरणं कृतमिति शङ्के उत्प्रेक्षे।

भाषा

डाहलदेश के राजा कर्ण के राजदरबार में गङ्गाधर नाम के विशिष्ट पण्डित को शास्त्रार्थ में पराजित कर, पूर्व दिशा के प्रांतों में ऐरावत के मद-जल से उन्मत्त इधर उधर उडने वाले भौरों के समूहो की झङ्कारों को तिरस्कत कर अर्थात् पूर्वीय पण्डितो को भी परास्त कर सहज मे ही शास्त्रार्थों मे पण्डितो को हरा देने वाले उस बिल्हण कवि की कथाओं ने इन्द्र के कान में भी सञ्चरण किया, ऐसा मै अनुमान करता हूँ।

भोजः क्ष्माभृत्स खलु न खलैस्तस्य साम्यं नरेन्द्रै-
स्तत्प्रत्यक्षं किमिति भवता नागतं हा हतास्मि।
यस्य द्वारोड्डमरशिखरक्रोडपारावतानां
नादव्याजादिति सकरुणं व्याजहारेव धारा ॥९६॥

अन्वय

धारा "सः खलु भोजः क्ष्माभृत् तस्य खलैः नरेन्द्रैः साम्यं न, तत्प्रत्यक्षं भवता किं न आगतम् इति हा हता अस्मि" इति द्वारोड्डमरशिखरक्रोडपारावतानां नादव्याजात् यस्य सकरुणं व्याजहार इव।

व्याख्या

धारा भोजनृपनगरी "सः खलु भोजः क्ष्माभृत् राजा, यस्य भोजस्य खलैः दुष्टैः नरेन्द्रैः राजभिस्साम्यं सादृश्यं न, तस्य भोजस्य प्रत्यक्षं सम्मुखे भवता बिल्हणेन किं नागतमित्यस्मात्कारणात् हा हता अस्मि हतभाग्यास्मि"। इति इत्थं द्वारे भोजनृपद्वारि उड्डमराणि अतितुङ्गानि शिखराणि गोपुरभृङ्गाणि तेषां क्रोडेषूत्सङ्गेषु पारावताः कपोताः "पारावतः कलरवः कपोतो" इत्यमरः। तेषां नादव्याजात् यस्य बिल्हणस्य सकरुणं सदीनत्वं व्याजहारेव उवाचेव, शोकं प्रकटितवतीवेत्यर्थः।

भाषा

भोजराज की नगरी धारा "वह भोज ही राजा था जिसकी बराबरी दुष्ट राजा लोग नहीं कर सकते, उसके रहते आप यहाँ क्यों नहीं आए? अरे बड़े दुःख

की बात है" इस प्रकार मानों फाटक पर के ऊचे-ऊँचे बुर्जों के छेदों में रहने वाले कबूतरों के शब्दों के मिष से, बड़े ही दुःख से कह रही थी।

कक्षाबन्धं विदधति न ये सर्वदैवाविशुद्धा-
स्तद्भाषन्ते किमपि भजते यज्जुगुप्सास्पदत्वम्।
तेषां मार्गे परिचयवशादर्जितं गुर्जराणां
यः सन्तापं शिथिलमकरोत्सोमनाथं विलोक्य ॥९७॥

अन्वयः

यः सर्वदा एव अविशुद्धाः ये कक्षाबन्धं न विदधति, तत् किम् अपि भाषन्ते यत् जुगुप्सास्पदत्वं भजते तेषां गुर्जराणां मार्गे परिचय-वशात् अर्जितं सन्तापं सोमनाथं विलोक्य शिथिलम् अकरोत्।

व्याख्या

यः बिल्हणः सर्वदा एव सर्वस्मिन् काले एव अविशुद्धाः अपावनाः ये कक्षा कच्छः परीधानवस्त्राञ्चलः, स्पर्धा, विवादोत्तरं वा तस्याः बन्धं रचनां न विदधति न कुर्वन्ति, तत् किमपि भाषन्ते वदन्ति यत् जुगुप्सायाः निन्दायाः "उप-क्रोशो जुगुप्सा च कुत्सा निन्दा च गर्हणे" इत्यमरः। आस्पदत्वं पात्रत्वं भजते। तेषां गुर्जराणां गुर्जरदेशवासिनां मार्गे पथि परिचयवशात्सङ्गवशादर्जितं प्राप्तं सन्तापं दुःखं ग्लानिं सोमनाथं सौराष्ट्रस्थं ज्योतिर्लिङ्गं विलोक्य दृष्ट्वा शिथिलमल्पमकरोत्।

भाषा

जिस बिल्हण कवि ने, जो सदैव अपवित्र रहने वाले हैं और कछनी नहीं काछते या स्पर्धा रखते हैं या वाद विवाद मे उत्तर देना नहीं जानते और अण्ड-बण्ड कुछ बोलते हैं जो निन्दा का पात्र होता है, ऐसे गुजरातियो के मार्ग में मिल जाने से उत्पन्न दुःख को सौराष्ट्र के ज्योतिर्लिङ्ग सोमनाथ महादेव का दर्शन कर कुछ कम किया।

तामप्येष क्षितिपतिशतालोकनौत्सुक्ययोगा-
दाचक्राम क्रमुकविटपिश्यामलामब्धिवेलाम्।
यत्र स्वेच्छाप्रसरमधुनाप्यम्बुराशेर्भिनत्ति
क्षिप्ता तीक्ष्णप्रहरणमिषाद्भार्गवेणार्गलेव ॥९८॥

अन्वयः

एषः क्षितिपतिशतालोकनौत्सुक्ययोगात् तां क्रमुकविटपिश्यामलाम् अब्धिवेलाम् आचक्राम। यत्र भार्गवेण तीक्ष्णप्रहरणमिषात् क्षिप्ता अर्गला अधुना अपि अम्बुराशेः स्वेच्छाप्रसरं भिनत्ति।

व्याख्या

एष बिल्हणः क्षितिपतीनां राज्ञां शतानि क्षितिपतिशतानि तेषामालोकनं दर्शनं तस्मिन्नौत्सुक्यमुत्कण्ठा तस्य योगात् सम्बन्धात् तां प्रसिद्धां क्रमुकविटपिनः पूगवृक्षाः "घोंटा तु पूगः क्रमुको गुवाकः खपुरोऽस्य तु" इत्यमरः। तैः श्यामला कृष्णवर्णा तामब्धेस्समुद्रस्य वेला तटं तामब्धिवेलां (परशुरामक्षेत्रनामकं दक्षिणकोङ्कणसमुद्रतटम्) आचक्राम समुल्लङ्घितवान्। यत्र वेलायां भार्गवेण परशुरामेण तीक्ष्णानि तीव्राणि प्रहरणानि शस्त्राणि "आयुधं तु प्रहरणं शस्त्रमस्त्रमथास्त्रियौ" इत्यमरः। तेषां मिषात् व्याजात् क्षिप्ता न्यस्ताऽर्गलाऽम्बुराशेस्समुद्रस्य स्वेच्छाया प्रसरं विस्तारं स्वच्छन्देन पुरो विस्तारं भिनत्त्यवरुणद्धि। परशुरामः सकलां धरां द्विजेभ्यो दत्त्वा स्वबाणैस्समुद्रमपसार्य नूतनोद्गतभूमावुवासेति पौराणिकी कथाऽत्राऽनुसन्धेया।

भाषा

यह बिल्हण कवि, सैकडो राजाओ को देखने की उत्सुकता के कारण उस सुपारी के पेडो से श्यामवर्ण समुद्र के तट को अर्थात् परशुराम क्षेत्र नामक दक्षिण कोकण के समुद्र तट को लाघ गया। जहाँ परशुराम ने तीखे तीखे शस्त्रास्त्रो के प्रहरण के मिष से लगाई हुई सिकडी अभी भी समुद्र के इच्छानुसार प्रसार को रोकती है। परशुराम ने २१ बार क्षत्रियो का नाश कर सब पृथ्वी का दान ब्राह्मणो को कर दिया और अपने रहने के लिये अपने बाणो से समुद्र को हटा कर नवीन भूमि तयार कर उसमें निवास किया था ऐसी पौराणिकी कथा है।

खल्वाटत्वं शिरसि घटयन्नम्बुधेर्यत्र काशे
लङ्कानाथापहृततनयापुच्छलग्नेव धात्री।
सीतावार्ताश्रवणचकितेवान्तिके राक्षसानां
सेतोरस्मादवदि परमगाम्भास्य कीर्तिः परस्तात् ॥६६

अन्वयः

यः अम्बुधेः शिरसि खल्वाटत्वं घटयन् लङ्कानाथापहृततनयापृष्ठ-लग्ना धात्री इव चकासे तस्मात् सेतोः परस्तात् अस्य कीर्तिः सीता-वार्त्ताश्रवणचकिता इव राक्षसानाम् अन्तिके यदि परं न अगात्।

व्याख्या

यः (सेतुः) अम्बुधेस्समुद्रस्य शिरसि मस्तके खल्वाटत्वं केशहीनत्वं घटयन् रचयन् लङ्कानाथेन रावणेनाऽपहृता तनया सीता तस्याः पृष्ठे लग्ना प्रेमवशात्सी-तामास्स्वपुत्र्याः पश्चाद्धावनुसरणं कृतवती धात्रीव पृथिवीव चकासे शुशुभे तस्मा-त्सेतोः परस्तादस्य बिल्हणस्य कीर्तिः सीतायाः वार्ता वृत्तान्तस्तस्य श्रवणेन चकिता भयसम्भ्रान्ता सती इव राक्षसानां लङ्कास्थितानामन्तिके समीपे यदि परं केवलं नागात् न जगाम। सेतुबन्धपर्यन्तं कीर्तिरस्य प्रसृतेति भावः।

भाषा

जो सेतु, समुद्र के मस्तक को केशरहित बनाकर रावण द्वारा अपहृत सीता के प्रेम से उसके पीछे-पीछे दौड पड़ी हुई पृथ्वी के समान सुशोभित होता था उस सेतु के पार में, इस बिल्हण कवि की कीर्ति मानो सीता का वृत्तान्त सुन भयभीत होकर राक्षसो के पास आगे न गई। अर्थात् उसकी कीर्ति हिमालय से सेतुबन्ध तक फैली हुई थी।

सामान्योर्वीपतिषु विमुखः शेखरोऽसौ बुधानां
यातस्तस्यां ककुभि शनकैः कौतुकी दक्षिणस्याम्।
यल्लोलाक्षीकुचतटभुवां ब्रूमहे किं गुरुत्वं
यासां शिष्यस्त्रिभुवनजयी जृम्भते पञ्चबाणः ॥१००॥

अन्वयः

सामान्योर्वीपतिषु विमुखः असौ बुधानां शेखरः तस्यां दक्षिणस्यां ककुभि शनकैः कौतुकी (सन्) यातः, यल्लोलाक्षीकुचतटभुवां गुरुत्वं किं ब्रूमहे। यासां शिष्यः पञ्चबाणः त्रिभुवनजयी जृम्भते।

व्याख्या

सामान्योर्वीपतिषु साधारणनृपेषु तुच्छराजषु विमुखः कृतावहेलनोऽसौ बिल्हणः बुधानां विदुषां शेखरः शिरोमणिस्तस्यां दक्षिणस्यां ककुभि दिशि

शनकैः मन्दं कौतुकी यातुमुत्कण्ठावान् सन् यातः गतः । यस्या दक्षिणस्या दिशः लोकाक्षीणां चञ्चलनयनानां कुचतटभुवः स्तनतटस्थलस्य गुरुत्वं भारवत्त्वमाचार्यत्वं वा किं ब्रूमहे कथयामः । यासां कुचतटभुवां शिष्यः पञ्चबाणः कामः त्रिभुवनस्य जयी विजयी सन् जृम्भते सर्वोत्कर्षेण विलसति ।

भाषा

साधारण राजाओं से दूर रहने वाला यह पण्डितशिरोमणि बिल्हणकवि उस दक्षिण दिशा की ओर धीरे-धीरे उस स्थान को देखने के कौतुक से गया । जहाँ कि चञ्चलनयनी कामिनियों के स्तनमण्डल प्रदेश के भारीपन या आचार्यत्व का क्या वर्णन करें जिन स्तनमण्डलप्रदेशों का शिष्य कामदेव तीनों लोकों का विजयी होकर संसार में सर्वप्रसिद्ध हो विराजमान है ।

नीलच्छत्रोन्मदगजघटापात्रमुत्त्रस्तचोला-
च्चालुक्येन्द्रादलभत कृती योऽत्र विद्यापतित्वम् ।
अस्मिन्नासीत्तदनु निबिडाश्लेषहेवाकलीला-
वेल्लद्बाहुक्कणितवलया सन्ततं राजलक्ष्मीः ॥१०१॥

अन्वयः

कृती यः अत्र उत्त्रस्तचोलात् चालुक्येन्द्रात् नीलच्छत्रोन्मदगजघटापात्रं विद्यापतित्वम् अलभत तदनु अस्मिन् निबिडाश्लेषहेवाकलीलावेल्लद्बाहुक्कणितवलया राजलक्ष्मीः सन्ततम् आसीत् ।

व्याख्या

कृती कर्मणि कुशलः "वैज्ञानिकः कृतमुखः कृती कुशल इत्यपि" इत्यमरः । यः बिल्हणोऽत्र दक्षिणस्यां दिश्युत्त्रस्तो भीतश्चोलश्चोलदेशनृपतिर्यस्मात्तस्मात् चालुक्येन्द्राद्विक्रमाङ्कदेवात् नीलच्छत्रं श्यामातपत्रं चोन्मदगजघटा च मदमत्तहस्तिसमूहस्तयोः पात्रं स्थानभूतं यद्विद्यापतित्वं प्रधानपण्डितत्वं विद्याधिकारित्वं वा तदलभत प्राप्तवान् । तदनु तत्कालानन्तरमस्मिन् बिल्हणे निबिडाश्लेषस्य गाढालिङ्गनस्य हेवाकलीलयौत्सुक्यविलासेन वेल्लतोः परिवेष्टितयोः बाह्वोः क्वणिताः शब्दायमानाः वलयाः कङ्कणानि यस्यास्सा राजलक्ष्मीः सन्ततं निरन्तरमासीत् निवासं कृतवती ।

भाषा

कार्यकुशल बिल्हण कवि ने दक्षिण दिशा में चोल देश के राजा को भयभीत करने वाले चालुक्यराज विक्रमांकदेव से काले रंग के छत्र तथा मदोन्मत्त हाथियों के समूह का पात्र प्रधानपण्डितत्व प्राप्त किया। अर्थात् उस काल में प्रधानपण्डित को काले रंग का छत्र लगाने को मिलता था और आये गए पण्डितों के सत्कार के लिये हाथियों पर उसका अधिकार रहा करता था। इसके अनन्तर, बिल्हण कवि के पास में, गाढ़ आलिङ्गन के औत्सुक्य-विलास से युक्त दोनों बाहुओं के शब्दायमान कङ्कणों को धारण करने वाली राजलक्ष्मी सतत निवास करती थी।

दिङ्मातङ्गैरपि सपुलकैः शुश्रुवे यस्य कीर्तिं-
निद्रामुद्राप्रणयिषु मदास्वादतः षट्पदेषु।
तेन प्रीत्या विरचितमिदं काव्यमव्याजकान्तं
कर्णाटेन्दोर्जगति विदुषां कण्ठभूषात्वमेतु ॥१०२॥

अन्वयः

षट्पदेषु मदास्वादतः निद्रामुद्राप्रणयिषु (सत्सु) सपुलकैः दिङ्मातङ्गैः अपि यस्य कीर्तिः शुश्रुवे तेन कर्णाटेन्दोः प्रीत्या विरचितम् इदम् अव्याजकान्तं काव्यं जगति विदुषां कण्ठभूषात्वम् एतु।

व्याख्या

षट्पदेषु भ्रमरेषु मदस्य दिग्गजगण्डस्थितमदसलिलस्याऽऽस्वादतः पानात् निद्रामुद्रायां प्रणयिषु संलग्नेषु सुप्तेषु सत्सु सपुलकैः रोमांचसहितैः दिङ्मातङ्गैः दिग्गजैरपि यस्य बिल्हणस्य कीर्तिः शुश्रुवे श्रुता तेन बिल्हणेन कर्णाटेन्दोः विक्रमाङ्कदेवस्य प्रीत्या स्नेहाद्विरचितं निबद्धमिदमव्याजेन प्रकृत्यैव कान्तं रम्यं काव्यं विक्रमाङ्कदेवचरिताभिधानं जगति लोके विदुषां कण्ठभूषात्वं कण्ठस्याऽलङ्कारत्वमेतु प्राप्नोतु। सर्वे विद्वांस असाधारणमिदं काव्यं कण्ठस्थीकुर्वन्त्विति भावः।

भाषा

भौरों के दिग्गजों के मदजल का पान कर नशे से सूत जाने पर उनका झङ्कार बन्द हो जाने से हर्ष भरे रोमाञ्चित दिग्गजों से भी जिसका

यश सुना गया उस बिल्हण कवि ने कर्णाट देश के राजा बिक्रमाङ्कदेव के प्रेम से बनाया हुआ या रचा हुआ यह स्वभावतः सुन्दर काव्य ससार में विद्वानों का कण्ठभूषण हो अर्थात् सब विद्वान् इसे कण्ठस्थ कर लें।

लब्धा लक्ष्मीर्दिशि दिशि कृताः सम्पदः साधुभोग्याः
प्राप्ता योग्यैः सह कलहतः कुत्र नोच्चैर्जयश्रीः।
गोष्ठीबन्धः सपदि सुजनैः सारनिष्कर्षदक्ष-
प्रज्ञालब्धस्तुतिभिरचिरादस्तु काश्मीरकैर्मे ॥१०३॥

अन्वयः

दिशि दिशि लक्ष्मीः लब्धा सम्पदः साधुभोग्याः कृताः, योग्यैः सह कलहतः कुत्र उच्चैः जयश्रीः न प्राप्ता। सपदि सारनिष्कर्षदक्षप्रज्ञालब्धस्तुतिभिः काश्मीरकैः सुजनैः (सह) मे गोष्ठीबन्धः अचिरात् अस्तु।

व्याख्या

दिशि दिशि समस्तभुवने लक्ष्मीः सम्पत् लब्धा मया प्राप्ता सम्पदः धनविभूतयः साधुषु दानाद्युत्तमकार्येषु भोग्या भोगयोग्याः कृताः योग्यैः पण्डितैस्सह कलहतः शास्त्रार्थविधानात् कुत्र कस्मिंस्थाने उच्चैरुन्नता जयश्रीः विजयलक्ष्मी. न प्राप्ता, सर्वत्र शास्त्रार्थे विजयः प्राप्त इत्यर्थः। सपद्यस्मिन् समये सारनिष्कर्षे तत्त्वोपलम्भे दक्षया प्रवीणया प्रज्ञया लब्धार्जिता स्तुतिर्यैस्ते तैः काश्मीरकैः काश्मीरदेशनिवासिभिः सुजनैः सज्जनैस्सह मे मम बिल्हणस्य गोष्ठीबन्धः शास्त्रचर्चारूपविनोदः अचिरात् शीघ्रमेवास्तु।

भाषा

समग्रभुवन में जहाँ-जहाँ मैं गया मुझे धन प्राप्त हुआ। अपनी सम्पति को सज्जनों के उपभोग मे लगाया। अच्छे-अच्छे विद्वानो से शास्त्रार्थ करने मे मुझे कहाँ विजयश्री नही प्राप्त हुई अर्थात् सर्वत्र प्राप्त हुई। अब तत्त्वज्ञान में प्रवीण बुद्धि होने से स्तुतियो को प्राप्त करने वाले काश्मीरी सज्जनो से अर्थात् विद्वानों से मेरा शास्त्रचर्चारूप विनोद शीघ्रता से हो।

आरुढाम नृपप्रसादकणिकामद्राक्ष्म लक्ष्मीलवान्
किञ्चिद्वाङ्मयमध्यगीष्महि गुणैः कांश्चित्पराजेष्महि।

इत्यज्ञानमयीमकार्ष्म कियतीं नानर्थकन्थां मनः
स्वाधीनीकृतशुद्धबोधमधुना वाञ्छत्यमर्त्यापगाम् ॥१०४॥

अन्वयः

नृपप्रसादकणिकाम् आरुक्षाम लक्ष्मीलवान् अद्राक्ष्म किञ्चित् वाङ्मयम् अध्यगीष्महि गुणैः कांश्चित् पराजेष्महि इति अज्ञानमयीं कियतीम् अनर्थकन्थां न अकार्ष्म अधुना स्वाधीनीकृतशुद्धबोधं मनः अमर्त्यापगां वाञ्छति ।

व्याख्या

नृपाणां प्रसादस्य प्रसन्नतायाः कणिकां लेशमप्यारुक्षाम वयमारूढवन्तः लक्ष्मीलवान् श्रियोऽतिसूक्ष्मांशानद्राक्ष्म दृष्टवन्तः किञ्चित् वाङ्मयं शास्त्रमध्यगीष्महि अधीतवन्तः गुणैः स्वगुणैः पाण्डित्यादिभिः कांश्चिद्विरोधिपण्डितान् पराजेष्महि पराजितवन्त इत्यज्ञानमयीं कुप्रवृत्तिमयीं कियतीमनर्थां दुष्कृतिरेव कन्था जीर्णवस्त्रं "कन्था मृन्मयभित्तौ च तथा प्रावरणान्तरः" इति मेदिनी । तां नाकार्ष्म न कृतवन्तोऽधुना साम्प्रतं स्वाधीनीकृतः परिगृहीतः शुद्धबोधः ब्रह्मज्ञानं येन तत् बिल्हणस्य मनोऽमर्त्यानां देवानामापगां नदीं गङ्गां वाञ्छति सेवितुमभिलषति ।

भाषा

मैने राजाओ की प्रसन्नता का कुछ अंश प्राप्त किया । लक्ष्मी के कुछ अंश को देखा अर्थात् उसका कुछ अनुभव किया । कुछ थोडा सा शास्त्रो का अभ्यास किया । अपने सद्गुणो से अर्थात् पाण्डित्य आदि से विरोधी पण्डितो को शास्त्रार्थों में पराजित किया । इस प्रकार कुवृति से भरे दुष्कर्म रूपी कथा को मैने धारण किया अर्थात् अज्ञानान्ध होकर अनेक दुष्कर्म किये । अब ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर लेने वाला मेरा मन श्री गङ्गा नदी को चाहता है अर्थात् गङ्गा को सेवा करना चाहता हैं ।

मन्दाकिन्याः पवनचटुलोत्तालवीचीदुकूले
कूलोत्सङ्गे विरचितवतां योगनिद्राभियोगम् ।
शेषाः केषामपि परिणतौ वासराः पुण्यभाजां
शान्तस्वान्तस्थितगिरिसुतावल्लभानां प्रयान्ति ॥१०५॥

अन्वयः

मन्दाकिन्याः पवनचटुलोत्तालवीचीदुकूले कूलोत्सङ्गे योगनिद्राभियोगं विरचितवतां शान्तस्वान्तस्थितगिरिसुतावल्लभानां केषां अपि पुण्यभाजां परिणतौ शेषाः वासराः प्रयान्ति ।

व्याख्या

मन्दाकिन्याः गङ्गायाः पवनेन वायुना चटुलाश्चञ्चला उत्ताला अत्युत्कटाः वीचयस्तरङ्गा एव दुकूलं वस्त्रं "क्षौमं दुकूलं स्याद्द्वे तु" इत्यमरः। यस्य तस्मिन् कूलस्य तटस्य "कूलं रोधश्च तीरं च प्रतीरञ्च तटं त्रिषु" इत्यमरः। उत्सङ्गे प्रान्ते योगनिद्राभियोगं ध्यानरतिं विरचितवतां कृतवतां शान्ते विषयमृगतृष्णाविरतिमये स्वान्ते चित्ते स्थितो गिरिसुतावल्लभः पार्वतीपतिः शिवः येषान्ते तेषां केषामपि पुण्यभाजां पुण्यशालिनां जनानां न तु सर्वेषामित्यर्थः। परिणतौ वृद्धावस्थायां शेषाः जीवनस्यावशिष्टा वासराः दिनानि प्रयान्ति गच्छन्ति ।

भाषा

गङ्गाजी के, वायु से चञ्चल ऊँची उठने वाली लहरो रूपी वस्त्र वाले तट प्रान्त मे, योगाभ्यास करने वाले, विषय रूपी मृगतृष्णा से विरत जिनके चित्तो में पार्वती के पति शकर का निवास है, ऐसे कुछ पुण्यात्मा मनुष्यो के ही वृद्धावस्था में आयु के अवशिष्ट दिन बीतते हैं ।

स्वेच्छाभङ्गुरभाग्यमेघतडितः शक्या न रोद्धुं श्रियः
प्राणानां सततप्रयाणपटहश्रद्धा न विश्राम्यति ।
त्राणं येऽत्र यशोमये वपुषि वः कुर्वन्ति काव्यामृतै-
स्तानाराध्य पदे विधत्त सुकवीन्निर्गर्वमुर्वीश्वराः ॥१०६॥

अन्वयः

हे उर्वीश्वराः! स्वेच्छाभङ्गुरभाग्यमेघतडितः श्रियः रोद्धुं न शक्याः प्राणानां सततप्रयाणपटहश्रद्धा न विश्राम्यति । ये काव्यामृतैः अत्र यशोमये वपुषि वः त्राणं कुर्वन्ति तान् सुकवीन् आराध्य पदे निर्गर्वं विधत्त ।

व्याख्या

हे उर्वीश्वराः हे पृथिवीपतयः स्वेच्छया स्वच्छन्देन भङ्गुरं नश्वरं भाग्यमेव मेघस्तस्य तडितो विद्युत्स्वरूपाश्चञ्चला इत्यर्थः । श्रियः सम्पदः राजलक्ष्म्यः रोद्धुं प्रतिरोद्धुं दृढीकर्तुं स्थिरीकर्तुं वा न शक्या न योग्याः अतिशयचञ्चलप्रकृतित्वादिति भावः । प्राणानां प्राणवायूनां सततं सदा शब्दायमानः प्रयाणसूचकपटहः परलोके यात्रायाः आनकः "आनकः पटहो ऽस्त्री स्यात्कोणो वीणादिवादनम्" इत्यमरः । तस्य श्रद्धा पूर्णविश्वासः यदवश्यमेव कस्मिन्नपि दिने मृत्युप्रयाणपटहनादो भविष्यतीति न विश्राम्यति न शान्ता । परन्तु ये सुकवयः काव्यरूपामृतैरत्राऽस्मिन् यशोमये कीर्तिरूपे वपुषि शरीरे वः युष्माकं राज्ञां त्राणं शाश्वतविद्यमानत्वं कुर्वन्ति तान् सुकवीनाराध्य संसेव्य पदे योग्यस्थाने निर्गर्वं मानपूर्वकं विधत्त विनियोजयत अथवा तान् आराध्यपदे पूजनीयस्थाने निर्गर्वं गर्वरहितं यथा स्यात्तथा विधत्त विनियोजयत ।

भाषा

हे राजा लोग ! स्वच्छन्द भङ्गुर भाग्यरूपी मेघ की बिजली के स्वरूप चञ्चल लक्ष्मी रोकी नहीं जा सकती । प्राणवायुओं के सतत शब्दायमान परलोक यात्रा के नगाडे में पूर्ण विश्वास अर्थात् एक न एक दिन प्राणवायु इस शरीर को छोड़ परलोक यात्रा करेंगे ऐसा दृढ विश्वास कभी भी छूटता नहीं । जो कवि लोग काव्यरूपी अमृत से इस संसार मे यशोमय शरीर में तुम लोगो को अमर बना देते है उनकी आराधना कर उनको गर्व रहित होकर पूज्य स्थान में नियुक्त कर दो या उन्हें मान पूर्वक किसी योग्य स्थान पर नियुक्त कर दो ।

हे राजानस्त्यजत सुकविप्रेमबन्धे विरोधं
शुद्धा कीर्तिः स्फुरति भवतां नूनमेतत्प्रसादात् ।
तुष्टैर्बद्धं तदलघु रघुस्वामिनः सच्चरित्रं
रुष्टैर्नीतस्त्रिभुवनजयी हास्यमार्गं दशास्यः ॥१०७॥

अन्वयः

हे राजानः सुकविप्रेमबन्धे विरोधं त्यजत । एतत्प्रसादात् नूनं भवतां शुद्धा कीर्तिः स्फुरति । तुष्टैः रघुस्वामिनः तत् सच्चरित्रं अलघु बद्धम् । रुष्टैः त्रिभुवनजयी दशास्यः हास्यमार्ग नीतः ।

हे राजानः नृपतयः ! सुकविभिस्सत्काव्यकर्तृभिः प्रदर्शिते सुकविविषयके च प्रेम्णो बन्धे स्नेहबन्धने विरोधं द्वेषं त्यजत । एतेषां सुकवीनां प्रसादादनुग्रहात् नूनं निश्चयेन भवतां राज्ञां शुभ्रा निष्कलङ्का कीर्तिः स्फुरति विलसति । तुष्टैः सुकविभिः रघुस्वामिनः रामचन्द्रस्य तत्प्रसिद्धं सच्चरित्रमलघु महत्वशालि बद्धं विरचितं रुष्टैः क्रुद्धैः सुकविभिः त्रिभुवनजयी लोकत्रयस्य विजेता दशास्यो रावणः हास्यमार्गमुपहासास्पदत्वं घृणापात्रत्वं वा नीतः प्रापितः । अत्र प्रथमसर्गस्य-सप्तविंशतिसंख्याकः श्लोकोऽवलोक्यः ।

भाषा

हे राजा लोग ! अच्छे काव्य की रचना करने वाले कवियों द्वारा प्रदर्शित या अच्छे कवि के सम्बन्ध में स्नेह बन्धन करने में द्वेष मत करो। इन अच्छे कवियों की कृपा से निश्चय ही आप लोगों की निष्कलङ्क कीर्ति फैलती है। प्रसन्न कवियों ने रामचन्द्र का वह प्रसिद्ध सच्चरित्र महत्वशाली बना दिया और क्रुद्ध होने पर उन्होने तीनो लोको को जीतने वाले रावण को हास्यास्पद या घृणा का पात्र बना दिया।

यस्य स्वेच्छाशबरचरितालोकनत्रस्तयेव
न्यस्तश्चूडाशशिकलिकया क्वापि दूरे कुरङ्गः।
स व्युत्पत्तिं सुकविवचनेष्वादिकर्ता श्रुतीनां
देवः प्रेयानचलदुहितुर्निश्चलां वः करोतु ॥१०८॥

अन्वयः

यस्य चूडाशशिकलिकया स्वेच्छाशबरचरितालोकनत्रस्तया इव कुरङ्गः क्व अपि दूरे न्यस्तः, सः श्रुतीनाम् आदिकर्ता अचलदुहितुः प्रेयान् देवः वः सुकविवचनेषु निश्चलां व्युत्पत्तिं करोतु।

व्याख्या

यस्य शिवस्य चूडायां शेखरीभूता या शशिकला चन्द्रकला तया स्वेच्छायाः स्वकीयेच्छासम्बन्धिनः, स्वच्छन्देन कृतस्य शबरचरितस्य अर्जुनाय पाशुपतास्त्रप्रदानसमये किरातलीलाया आलोकनेन त्रस्तया भीतया इव कुरङ्गः लाञ्छनमृगः क्वापि कुत्राऽपि दूरस्थले न्यस्तः निरस्तः निक्षिप्तः सः श्रुतीनां वेदानामादिकर्ताऽद्रिप्रभवः "अष्टादशानामेतासां विद्यानां भिन्नवर्त्मनाम्।

आदिकर्ता कविः साक्षात् शूलपाणिरितिश्रुतिः ॥ अचलस्य हिमालयपर्वतस्य दुहितुः पुत्र्याः गौर्याः प्रेयान् कान्तः देवः शिवः वः युष्माकं सहृदयानां सुकवीनां वचनेषु निश्चलां स्थिरां व्युत्पत्तिं परिपाकं दृढपरिशीलनानुरागबन्धं च करोतु । अस्मिन्सर्गे कविनाऽष्टोत्तरशतसंख्याकश्लोका निर्मिता । जपमालासु प्रायोऽष्टोत्तरशतमणयो भवन्तीति स्वेष्टाराधनेनैवैतत्काव्यं सम्पन्नमिति ध्वन्यते ।

भाषा

जिस शङ्कर भगवान् के मस्तक में शेखरीभूत चन्द्रकला ने मानों स्वेच्छानुरूप अर्जुन को पाशुपतास्त्र प्रदान करने के समय मे शंकर की भिल्ल बन कर अर्जुन से युद्ध करने की लीला को देखने से भयभीत होकर, लाञ्छन रूप मृग को कहीं दूर छोड़ दिया था, वह श्रुतियों का आदिकर्ता हिमालय की कन्या का प्यारा पति श्रीशकर आप लोगों को अच्छे कवियों की सूक्तियो मे प्रेम तथा उनके दृढ़ परिशीलन मे अनुराग प्रदान करे ।

इति श्रीत्रिभुवनमल्लदेव-विद्यापति-काश्मीरकभट्ट-श्रीबिल्हणविरचिते विक्रमाङ्कदेवचरिते महाकाव्येऽष्टादश. सर्गः ।

नेत्राब्जाभ्रयुगाङ्कविक्रमशरत्कालेऽत्र दामोदरात्
भारद्वाजबुधोत्तमात्समुदितः श्रीविश्वनाथः सुधीः ।
चक्रे रामकुबेरपण्डितवरात्सम्प्राप्तसाहाय्यक-
स्सर्गेऽष्टादशके रमाकरुणया टीकाद्वयं निर्मलम् ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

॥ श्री ॥

॥ श्रीगणेशाय नम ॥

॥ श्रीसङ्कष्टनाशिन्यै नम ॥

परिशिष्टम्

"क"

विक्रमाङ्कदेवचरितमहाकाव्यस्य चतुर्दशसर्गतोऽष्टादशसर्गान्तर्गताः सूक्तयः ।

चतुर्दशसर्गे–

यत्स्वकार्यमवधीर्य गृह्णते सेवयैव परितोषमीश्वराः ॥२॥

यत्र मन्त्रगतिरेतिवामतां तन्न हालहलतो विशिष्यते ॥३॥

न त्वरां दधति धीरचेतसः ॥१४॥

भङ्गमेति भवितव्यता कुतः ॥२२॥

किं प्रमाद्यसि न सर्वदासुखं कस्यचित्प्रकृतिभङ्गुराः श्रियः ॥४३॥

कः प्रसन्नमनसां यशोर्थिनां श्रीसमर्पणविधौ परिश्रमः ॥४८॥

जायते मतिविपर्ययो नृणां प्रायशः परिभवे भविष्यति ॥५१॥

अश्रिया जडधियः कटाक्षिताः किं तदस्ति न समाचरन्ति यत् ॥५६॥

भवति हि मतिर्भाग्यभ्रंशे नितान्तमनङ्कुशा ॥७२॥

पञ्चदशसर्गे-

प्रकृतिमहसां दुर्वृत्तेष्वप्यहो चटुलाः क्रुधः ॥६५॥

षोडशसर्गे-

पुण्ड्रेक्षुपाकपूतानि क्षेत्राणि दधि मांसलम् ।
आसीत्कुङ्कुमचर्चा च हन्त हेमन्तजीवितम् ॥१३॥

तेजस्विनोऽपि कुर्वन्ति किं कालवशमागताः ॥१५॥

प्रायेण देहविरहादपि दुःसहोऽयं
सर्वाङ्गसंज्वरकरः प्रियविप्रयोगः ॥४०॥

सप्तदशसर्गे-

अकुर्वतां सर्वजनार्तिखण्डनं
वृथा तडित्पल्लवचञ्चलाः श्रियः ॥१॥

अनन्यसाधारणपुण्यशालिनां
फलन्त्ययत्नेन मनोरथद्रुमाः ॥६॥

॥ श्री ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीसङ्कष्टनाशिन्यै नमः ॥

परिशिष्टम्

"ख"

विक्रमाङ्कदेवचरितमहाकाव्यस्य चतुर्दशसर्गतोऽष्टादशसर्गान्तर्गतानां श्लोकानामकारादिवर्णानुक्रमेणाऽनुक्रमणिका ।

	पृष्ठ
— अ —	
अकारयत्कारणमानुषः पुरः ··	१४४
अकालमृत्युर्न चचाल कुत्रचित्	१३१
अक्षिप्यन्त तुषाराद्रि ··	१०२
अङ्काल्लङ्कापतितरलिताया शिला	१८७
अङ्गारहासिषु विलासगृहोदरेषु	१२४
अङ्गेषु स्पर्शसौभाग्य ···	१०३
अङ्गैस्त्वङ्गत्कनकरुचिभि कार्मण	२४२
अजायत विभावर्य ···	९७
अतिष्ठदसे सुभटस्य चञ्चल ···	१६२
अत्रान्तरे नरपतिर्जयकुञ्जरस्य	१७३
अथ वीररसावतारत ··	५७
अथ शिथलितचापश्चोल ···	१७५
अधत्त तुङ्गेषु सुवर्णराशिषु ···	१५४
अधिरुह्य बलद्वये बला ···	६९
अधिरोपितसारिपञ्जर ···	४८
अन्तिकीभवति निम्नगातटे ···	४२
अपास्य पाथोधिमसख्यनिम्नगा·	१४८
अपि शरधिविकृष्टैश्चिच्छिदे ···	१२१
अपि शैलविटङ्कभेदिभि ···	८२
अब्धिषु स्थलपथीकृतेषु नः ··	३७
अभवद्बलमेतदन्तरे ···	७६
अभूवन्नद्भुतोष्माण ···	१०१
अमी विमानेष्वधिरोपितास्त्वया	१६९
अयि नाथ विमुञ्च कैतव ···	८९
अयं स कण्ठीरवतामुपागमत् ···	१४०
अलभन्त नभ क्षेत्रे ···	९९
अवनितिलकस्तत्रावास ···	४३
अवलम्ब्य शनैरगाधता	७१
अवलम्बविडम्बनामिमा	६२
अवलोक्य रवेस्तुरङ्गमान् ·	६३
अवाप्तबन्धेन लघुत्वमब्धिना···	१४६
अवैमि नारायणनाभिपङ्कज ···	१४१
अश्वै. कृत्वा पवनगतिभिः ···	२२३
असिघट्टनत· परस्पर ···	७३
असिधेनुविलीनकन्धरै ···	८२
असिना विनिपत्य लोलतां ···	७०
असिना विशिखै· सतोमरै· ···	८०
अस्त्यन्योन्यग्रथितलहरी ···	१९२
अह सदा प्राणसमं महीभुजां ···	१३६

	पृष्ठ
— आ —	
आतप· क्लममदत्त वासरे ···	२१
आरुक्षाम नृपप्रसादकणिका ···	२६०
अरोहकान्करिषु वाजिषु ···	१७४
— इ —	
इति नरपति सार्धं दारै ···	१२७
इति वीरविलासिनीजन ···	९२
इत्यनङ्गशरसङ्गदीपित ···	२८
इत्युदीर्य विरते विशारदे ···	९
इन्दुदीधितिषु शारदीष्वसौ ···	२८
इन्द्रनीलरसकूचिकाचयैं ···	१६
इष्टापूर्तेष्वतिथिविषये ···	२४१
इहागतः खण्डनमेव लप्स्यते ···	१३८
— उ —	
उड्डीय केपि निबिडीकृत चाप	११८
उत्कटेन तडितामिवोष्मणा ···	१८
उत्तुङ्गाना मणिगृहभुवा यत्र ··	१८०
उदारशौर्यैकरस· क्षमापति· ·	१३४
उद्यानेभ्य सकलभुवनाश्चर्य	१७८
उन्नतद्विपघटासमीपग · ·	४०
उन्मदद्विरदहस्तशीकर ···	३९
उर्वीमुर्वीधरसहचरं ···	२२८
उल्लिखन्ति दशनै शिलातला	६
— ए —	
एवमादि विनिवेद्य पार्थिव ·	१४
— क —	
कक्षाबन्ध विदधति न ये ···	२५५
कयात्र माला प्रथम समर्पिता ··	१७०
करटिध्वजदण्डसङ्गिनी ··	८०
करिणः करशीकरोत्करैः ···	५०
करितुरगसमृद्धां सार्द्धमन्त.पुरेण	९३
करिपादविपाटितोद्भट ···	८४
कर्तुं कीर्तिप्रणयि कुशलाः ···	२३६
कर्तुं कीर्त्या तिलकमलका ··	२०४
कवचे परित कृतस्थिति ···	८७
कान्तदन्तबिसकाण्डनिर्गमे ···	५
कार्यसे कथमकार्यमीदृश ···	१२
काल कालञ्जरगिरिपतेर्य ···	२५१
काव्यं येभ्य प्रकृतिमुभग ···	१८९
काश्मीरेभ्य सकलममन्ल ···	२४६
काश्मीरेषु प्रवरपुरमित्यस्ति ···	१०७
किमादृतक्षारपयोधिसङ्गमा ···	१४६
कियतीमपि तीव्रविक्रम · ·	५८
किं प्रमाद्यसि न सर्वदा मुख ·	२६
किं वा बहुप्रलपितैरवराह यथ	१२२
किं श्रिया चपलया प्रतार्यसे	१०
कीर्तिज्योत्स्नास्नपितभुवनश्री	२१२
कीर्ति येषा शतमखसखी ·	२३६
कुङ्कुमस्मितसङ्कोर्चा ···	९६
कुन्तलेन्दुरभवत्कृपावशात् ···	२९
कृतसन्नहनास्तथाविधा ···	६१
कृतस्थितिर्मूर्धनि चक्रवर्तिना ···	१५८
कृती निवास कमलाविलासिनः	१३९
कृत्वा मध्ये मठमनुपमो ·	२०८
कृत्वा शैल करनलतुलारूढ ···	१७९
केचिन्निपेतुरवनौ सह मार्गणेन	११५
कोपन प्रचलितोपि भूपति ···	४१
क्रमादजायन्त निजाकृते· समा	१३५
क्रोड सक्रीडमंतेन ···	११६

	पृष्ठ
क्वापि दाहमपरत्र लुण्ठनं	३३

— ख —

खड्गे कुण्ठीभवति शिरसां	२२५
खल्वाटत्वं शिरसि घटयन्	२५६
खुरघट्टितवैरिकुट्टिम	६४
खेदकारणमवान्तरापगा	१७

— ग —

गण्डाभोगोड्डुमरविलुठद्वाष्प	२१६
गत्वा पदानि कतिचित्पुरत	११४
गर्जद्वातायनविततय	१९६
गलितद्विपकुम्भमौक्तिक	७४
गात्रेषु सौष्ठवक्कता मृगया	१२५
गुणवादपरायणा गिर	७२
गेहे यत्र प्रवरगिरिजा	१९९
गौरीविभ्रमधूपधूमपटल	१२५
ग्रामो नासौ न स जनपद	२४८

— घ —

घनचन्दनलेपपाण्डुना	५३
घोरमापतितमेतदा. कुत.	१३

— च —

चकितेव कबन्धताण्डवैः	८६
चक्रे धाम त्रिभुवनगुरो	२१३
चक्र यस्याक्रियत वदनप्रेक्षि	२४३
चम्पासीम्नि क्षितिपतिकथा	२०७
चलितोसि सुराङ्गनागृह	९१
चुम्बितानि मदनिद्रया मुहु	५

	पृष्ठ
चुलुक्यवंशे महतां महीभुजां	१३०

— ज —

जनस्य चित्रोल्लिखिताश्ववार	११०
जनैरवज्ञातकपाटमुद्रणैः	१३२
जलराशिनिवेशसङ्कटा	६२
जाड्यमम्भसि निमज्जनाच्चिरं	२३

— त —

तच्चमूपरिकरेण पीडिता	३२
तत्पर्यन्तस्थितगुणनिका	१९५
तदनु नृपति प्राप्त पार पर	९२
तमवेक्ष्य तुरङ्गवाहिनी	८१
तस्मादस्ति प्रवरपुरत.	२३३
तस्य दुर्नयपरम्परामसौ	३३
तस्य सन्ततमकीर्तिवार्तया	२९
तस्यास्त्यागव्रतविलसिते	२०९
तामप्येष क्षितिपतिशता	२५५
तिमिरैरिव पिण्डता गतै.	६७
तीरद्वद्वप्रणयिभवनव्रात	१८४
तेजोनिधेस्तस्य तुरङ्गमोसौ	१०८
तेजोविशेषात्परितोषितानां	१०९
तेषा जगत्त्रयपवित्रचरित्रभाजां	२३७
त्वरयाधिरुरोह दन्तिन.	५४

— द —

दत्वा शोक शकपरिवृढ	२०३
ददौ स दानानि महान्ति षोडश	१५३
दधुरद्रिविघट्टनेषु ये	६०
दर्पाध्मातप्रतिभटनृपव्रात	२१८
दलयन् रिपुकीर्त्तिकन्दली	७७

	पृष्ठ
दिग्यात्रासु स्फटिकविशद ...	२१९
दिङ्मातङ्गैरपि सपुलकैः शुश्रुवे	२५९
दिशः कृताः सन्ततर्यनिस्वनै . .	१३३
दुर्गं प्राप्य क्षितिपतियशो ...	२३१
दुर्लक्ष्यत्व कलियुगदृशा ...	१८३
दुर्वचासि सविघे धरायते. ...	३४
दृशमम्बुरुहामिव स्रज ...	५०
दृष्ट्वा देव्या. कुचपरिसरे ...	२२४
दृष्ट्वा यस्मिन्नभिनयकला ...	२००
देवस्य विक्रमनिधेरथ सूस्कराणा	११४
देवी तस्य प्रचुरयशस	२०८
देवोद्यानेष्वपि तिलकतां ...	१९१
दोलयन्त. कपोलेषु ...	९८
दोलालोलद्धनजघनया ...	२४७
द्राक्षापूर्णान्यखिलजनता . .	२३९
द्राविड स नृपति सहायता . .	१२
द्वयोर्दिशोः फेनविपाण्डुराम्या...	१०७

— ध —

धत्ते यस्यास्तपनदुहितु ..	२२७
धत्ते यस्या स्फटिकरुचिभि. ...	१८१
धर्मस्येव व्युपरतकलेर्यत्र ...	२५०
धृतमङ्गलमौक्तिकाक्षतः ...	५४
धृत्वा काश्चित्कनककपिशाः ...	२२१

— न —

न क्षितीन्द्रपटहस्वनोभवद् ...	३६
न त्वमिन्द्रधनुष. शरव्यता ...	२५
न नारदादस्ति परो विशारद	१७२
ननु कस्य निवेद्यतामिद ...	६१
न भर्तुर्भिक्षमिहास्ति मेनके ...	१६८

	पृष्ठ
नम स्रवन्त्या इव शेषवारिभिः	१४४
न भानुरत्यर्थमतापयज्जन ...	१३२
नभोङ्गणव्यापिनमुष्णदीधितेः	१४०
नरेन्द्रचामीकरचारुभूषण ...	१३७
नलिनीदलचारुकान्तिभिः ...	५६
न स कोपि कठोरपाटव ...	८४
न स कोपि मदोद्धुर करी . .	७६
नाम्ना परी विजयमल्ल इति...	२३२
नार्पितानि कति मण्डलानि ते. .	१३
निकटस्थितमेघडम्बरैः ...	६५
निजदानजलोत्थकर्दम ...	५९
नित्याभ्यामात्परिणतलिपेः ...	२३३
निपतन्तमसौ निवारयन् ...	७९
निपीय यत्पाथसि नूनमम्बुदै	१४७
निरन्तर ब्रह्मपुरीभिरावृत ...	१४८
निर्गतैरिव तडित्प्रदीपत ...	१९
निवेशनीयौ न शिरीषकोमलौ	१६८
निशासु यत्र प्रतिबिम्बवर्त्मना	१५२
निष्ठुर किमपि कथ्यते मया .	१
नि सामान्यश्रुतगुणकथा ...	२४८
नीत्वा गङ्गाधरमधरतां ...	२५३
नीलच्छद्मोन्मदघनघटापात्र ...	२५८
नीलनीरदनिचोलकोज्झिते ...	२०
नेत्राभिराम दधता प्रपञ्च ...	१०७
नो कायस्थैः कुटिललिपिभि ...	२१०
न्यायमार्गमपहाय कुर्वता ...	३

— प —

पक्वशालिवनमध्यत. करैः ...	१८
पतितेषु शिर.सु मानिना ...	७२
पदे पदे शोणितपङ्कपातिनी ...	१६४

	पृष्ठ
पन्नगेश्वरफणासु तद्बल ...	३७
पयोभिरस्मान्परिपूरयन्ति ये ...	१३०
परस्परं मत्सरतः प्रधाविताः ...	१६०
परिभाव्य नितान्तभैरव ...	६८
पर्यतप्यत किमप्यनन्तया ...	११
पर्याणमाणिक्यरुचां चयेन ...	१०९
पस्पृशुर्न पृथिवी तुरङ्गमा. ...	३९
पार्थिलीलासरसीमराला .	१११
पिता हरि. श्रीर्जननी तयोरिदं	१५३
पुण्ड्रकेक्षुलतिकाश्चकाशिरे ...	२२
पुण्ड्रेक्षुपाकपूतानि ...	१०२
पुर्ण्यैरैरावतकरिकरोच्चण्ड . .	२१८
पुरन्ध्रिनृत्येषु विनिर्यदशृभि ...	१४२
पुरुषा मुरधाम्नि दुर्लभा . .	९०
पुलकप्रणय कपोलयो . .	७७
पुलकाङ्कुरकण्टकोत्करा ...	५१
पूरित प्रतिरवेण दिग्गज ...	३५
पृष्ठनिर्लुठितभूमिरेणव ...	३८
प्रतिवीरविमुक्तमार्गण ...	८३
प्रदानलीलारसिक प्रतापवान्	१५७
प्रदानलोभादिह भर्तुरस्य चेत्	१४५
प्रबलेन भुजद्वयेन ये ...	६६
प्रयच्छत स्वच्छमतीव काञ्चन	१५६
प्रापदद्य समये सुधाकर ..	१४
प्राहिणोत्कति न सान्त्वनक्रमा	३४
प्रौढत्वमाचरन्तीभि ...	९९

— ब —

बभार हारावलिमौक्तिकानि...	१०६
ब्रूमहे किमविक्र तथा मुहु ...	३५
ब्रूमस्तस्य प्रथमवसतेरद्भु ...	२३५
ब्रूमः किमन्यदयमुत्सहते स्म यत्र	१७५
ब्रूम. सारस्वतकुलभुवः किं ...	१८१

— भ —

	पृष्ठ
भटेन नीत. श्रुतिहस्तखण्डनात्	१६६
भाण्डागाराण्यकृत विदुषां ...	२१३
भास्वत. करिभयावगाहनात् ...	४१
भुजविक्रमदन्तिडिण्डिम ...	४५
भूपतेस्समभरेण दन्तिना ...	३६
भूपमेनमपहाय तच्चमू ...	३१
भूरिभि. किमथवा कथाद्भुतै ...	८
भूरिमङ्करपरिश्रमार्जिता ...	४
भोज क्षमाभृत्स खलु न खलै. ...	२५४
भ्रष्टमग्रजमधर्मत स्वय ...	१०

— म —

मदपानबहुप्रलापिना ...	५६
मदवारिसमुत्थशैवल ...	५८
मद्वैरिण. कठोराशो ...	१०३
मन्त्रवित्तादनु चारचक्षुषा ...	१२
मन्थक्षोणीधरविदलिता ...	२२६
मन्दाकिन्या पवनचटुलो ...	२६१
मन्ये भ्राम्यत्कलियुगभया ...	२५१
मन्ये मन्थाचलविदलिता ...	१८२
मम भाग्यविपर्ययादिद ...	९१
महति क्षितिभर्तुराहवे ...	५५
महाभटाना करवालयष्टय ...	१६०
मेघकर्दमनिपातपङ्किल. ...	२६

— य —

यक्षग्रस्ता धनपतिपुरी ...	१८८

	पृष्ठ
यत्क्षेत्रेषु स्थितिमरचयत् ···	१९८
यत्खड्गस्य स्मरणवशतः ···	२२३
यत्र स्त्रीणा मसृणघुसृणा ···	२०१
यत्रानन्तक्षितिपगृहिणी ···	१९७
यत्सुभ्रुवा घुसृणलेपकवोष्ण ···	१२२
यदग्रवातायनशृङ्गसद्मना ···	१५१
यदनेकपताकिनीभट ···	८५
यदीयशृङ्गेषु विभाति मौक्तिक	१४२
यदीयसोपानपथाधिरोहणे ···	१५०
यद्भूषाया विहितवपुष ···	१९३
यस्मिन्कापि स्फुरति ललिता ·	१८५
यस्मिन्किञ्चिन्नतदुपवन यत्र···	१९२
यस्मिन्नुर्वीपतिगृहतते · ·	२००
यस्मिन्सह्या कथमशिथिल ···	१८६
यस्य प्राप्ताद्भुतपरिणते ··	२१५
यस्य प्रेयान्प्रथमतनय ···	२२९
यस्य भ्राम्यद्भ्रमरपटल ···	१८७
यस्य स्वेच्छाशबरचरिता ···	२६४
यस्यातृप्त स्फटिकगिरिणा ·	२५२
यस्यानन्द समजनि यशो ···	२४५
यस्यापूर्वा पदपरिणति ··	२२९
यस्या भ्राता क्षितिपतिरिति ···	२१४
यस्यास्ति खोनमुष इत्युपकण्ठ	२३४
यस्योत्तुङ्गैर्मणिमयगृहै ···	२४९
यस्योदारा परिकलयत ···	२२२
यः सन्तोष चरितविषये ···	२०६
यामिनीभिरनीयन्त ···	१०१
येनोत्कण्ठाव्यसनगुरुणा ···	२३०
येनोदीच्या दिशि गतवता ···	२२०
—र—	
रणदुन्दुभिमेघनिस्वनैः ···	४६
रणलम्पटमत्तकुञ्जरं ····	४९
रणसीमनि तत्र तत्र ये ···	८८
रणसीमनि तेन वैरिणो ···	८३
रणसंभ्रमलोलभङ्गिषु ···	४७
रतिकोपे प्रसादे च ···	९८
रदद्वयेन स्फुटितेन पाटनात् ···	१६६
रदाङ्कुरप्रोतमरातिदन्तिना ···	१६३
रिपुराजशिरस्सु शेखर ···	४९
रिपुवारणकुम्भमण्डलीं ···	७९
रिपुशोणितविन्दुमुद्रितौ ···	८८
रिपु विजित्य द्विजकल्पशाखिना	१५५
रुद्ध विलोक्य हरिण हरिणी ···	११८
रेजिरे करटिपृष्ठसङ्गता. ···	४०
—ल—	
लघु प्रहर्तुं प्रनिपक्षमक्षम ···	१६५
लब्धा लक्ष्मीर्दिशि दिशि कृता.	२६०
लीलावल्गत्सरसमसृण ···	१९०
—व—	
वक्त्रन्यस्तैस्तुहिनशकलै ···	२०२
वत्सलत्ववमलम्ब्य केवल ···	२
वत्सलेन भवता समर्पिता ···	७
वदनस्थितफेनमण्डल ···	६३
वलयोदररत्नदर्पण ···	५२
वाराङ्गनास्तस्य तुरङ्गमेषु ···	१११
वार्धक दधति वारिदागमे ···	१
विजयामृतकर्पणोद्यतै ···	६८
विजयांत्सुकवीरसुन्दरी ···	४६
वितानरत्नप्रतिबिम्बडम्बरै ···	१४३
विदित यदय विगाहसे ···	९०

	पृष्ठ
विद्वत्तायाः स खलु शिखर ···	२४४
विधाय भूमेस्तलमस्तकण्टकं ···	१२९
विपक्षदुर्भिक्षकदर्थितश्चिरं ···	१५८
विपक्षशस्त्रक्षपणैः पुनः पुनः ···	१६४
विपर्ययं पूर्वकथाद्भुतस्य ···	११६
विभिन्नमर्यादममुष्य चेष्टित ···	१७०
विरराज नमन्महाकरी ···	७५
विलोम्य सौभाग्यमदाद्भटोनया	१७१
विषाणिना तीक्ष्णक्षुरप्रखण्डिता.	१६७
विहारयोग्येषु दिनेषु तेषु ···	१०४
वीक्ष्य स द्विपघटा कटस्थली	३२
वेङ्गिनाथमवजित्य सयति ··	३
वैतस्ताना स खलु पयसा ···	१९४
वैद्युते शिखिनि पान्थसुन्दरी ···	१५
वैशसस्य कथमस्य शान्तिरि ··	३०
व्याकुलेषु पतिषु प्रतिक्षण ···	२५
व्योमाङ्गणस्थेन रराज वाजी ··	१०८

— श —

शक्रकार्मुकविलोकनाद्ध्रुव ··	२२
शङ्के पङ्केरुहवसतिना स्थापिता.	२३८
शरत्कालातपक्लान्त ···	९६
शरद्वितीर्णसौभाग्य ··	९७
शान्तवैद्युतकृशानुजन्मना ···	१६
शिरसा सुभटस्य दर्शित ···	७३
शिरस्थदेवालयपातभीतितः	१३७
शुभ्रेषु राङ्कवपटेषु हसन्तिकासु	१२३
श्रियः समुत्थापनवाधिमन्थन ···	१५९
श्रीकाश्मीरक्षितिभुजि गते ···	२११
श्रीचालुक्यधुरन्धरोऽथ रुधिर	४२

	पृष्ठ
श्रुतिभूषणशङ्खशुक्तिभिः ···	६०
श्रोणीबन्धे कुवलयदृशा ···	२०७
श्वा निर्गत कनकशृङ्खलया ···	११७

— स —

स कञ्चुकस्योपरि नीलभासः	१०५
सकण्टक कश्चिदुरस्तटत्रुटन् ···	१६२
सङ्ग्रामोर्वीपरिवृढमठ ·	१९६
स चकार शिखण्डिमण्डलाना ··	१२०
सञ्चारिणी मन्मथराजधानी ···	११०
सत्यत्यागप्रमुखनिखिलो ···	२०३
स बभार शिरस्त्रमण्डल ···	८७
समक्षमपि सूर्यस्य ···	१०३
समदप्रतिपक्षमर्दना ···	६७
समराङ्गणसङ्गति भजन् ·	५७
सम्प्राप्त कुलकण्टक तमटवी ·	९४
सरसीसलिलावगाहन ···	५९
सर्वदैव हृदय मलीमस ···	२७
सर्वमाटविकचक्रमक्रम ···	७
स वारबाणेन रणैकवीर ···	१०४
सशङ्केनेव कन्दर्प ··	१००
सहजोष्मविशोषजर्जर ··	६६
सहर्षमित्यप्सरसामजायत ··	१७२
सहागतान्त पुरसुन्दरीभि ···	१०६
साङ्गो वेद फणिपतिदिशा ···	२४२
सान्द्रचन्दनविलेपनादपि ··	२१
सामान्योर्वीपतिपु विमुख ···	२५७
सार्धमम्बुभिरिवैत्य वारिधे ···	१९
सार्धं प्रियेण कियतापि परिग्रहेण	११३
सिद्धेरध्यासिततटभुवः ···	२०५

	पृष्ठ
सुभटस्य निहत्य वल्गात ·	७०
सुभटः प्रमदाकरार्पितां ...	४८
सुवर्णदानप्रवणेऽत्र शङ्कित. ...	१५५
सुवर्णवातायनतुङ्गभूमिषु ...	१३५
स्थितासु यत्रोपरि भूमिकुट्टिम	१५१
स्नानक्रीडाव्यसनसमये कुङ्कुम	१८४
स्पृष्टा स्तोक वितस्तातटतुहिन	१२६
स्वयमस्य पयोदवारिधारा ...	११९
स्वेच्छाभङ्गुर भाग्यमेघतडित	२६५
स्वेच्छाविहाररसिकस्य वनस्थलीषु	१२०

— ह —

हसितेन विनिस्सरन्मुख ...	५२
हृदयस्थितबाणमूर्च्छया ...	७५
हृदयस्थितरत्नभूषण ...	६५
हृदि प्रविष्टं दशनं निजासिना	१६१
हे राजानस्त्यजत सुकविप्रेमबन्धे	२६३
हंसपक्तिरवधीर्य मानस ...	२४

— क्ष —

क्षणमत्रविसूत्रिताखिल ...	८५
क्षतकुञ्जरकुम्भमौक्तिकै. ...	७८
क्षतचञ्चुपुटा विघट्टना ..	७१
क्षपासु यत्रैकमपास्य चुम्बति ...	१४९
क्षमासार सारस्वतरसनिधान	२४०
क्षितिपेन करी विभूषित ...	५४
क्षुण्णमौक्तिकपरागपाण्डुर ..	२३

— त्र —

त्रैलोक्यलङ्घनकुतूहलिना ..	११२

— o —

॥ श्री ॥

॥ श्री गणेशाय नम. ॥

॥ श्री सङ्कष्टनाशिन्यै नम. ॥

परिशिष्टम्

"ग"

विक्रमादित्यस्य (षष्ठस्य) नीलगुण्डताम्रशासनम् ।

२५ दिसम्बर १०८७ ई०, ३ सितम्बर ११२३ ई०

(एपिग्राफिका इण्डिकाया १२ शे भागे १४२ पृष्ठतः ।)

ॐ—जयत्याविष्कृतं विष्णोर्वाराहं क्षोभितार्णवम् ।
दक्षिणोन्नतदंष्ट्राग्रविश्रान्तभुवनं वपुः ॥

श्रियमुपहरताद्वः श्रीपतिः क्रोडरूपो
विकटविशददंष्ट्राप्रान्तविश्रान्तिभाजम् ॥
अवहददयदंष्ट्राकृष्टविस्पष्टकाण्ड—
प्रतनुबिसजटाग्रग्रन्थिवद् यो धरित्रीम् ॥

करिमकरमकरिकाङ्कितजलनिधिरशनां वशीकरोत्ववनिवधूम् ।
त्रिभुवनमल्लक्ष्मापतिरकलङ्कयशो ऽम्बुराशिवलयितभुवनः ॥

गद्यम्—

स्वस्ति, समस्तभुवनसंस्तूयमानमानव्यसगोत्राणां हारीतिपुत्राणां कौशिकीवर-प्रसादलब्धश्वेतपत्रादिराज्यचिह्नानां सप्तमातृकापरिरक्षितानां कार्तिकेयवरप्रसाद-लब्धमयूरपिच्छकुन्तध्वजानां भगवन्नारायणप्रसादासादितवरवराहलांछनेक्षणक्षण-वशीकृताराातिराजमण्डलानां समस्तभुवनाश्रयसर्वलोकाश्रय विष्णुवर्धनविजयादि-त्याविविशेषनाम्नां राजरत्नानामुद्भवभूमिः--

वृत्तम्—

कवलितनललक्ष्मीर्दुर्ज्जयौर्जित्यहारी
विहृतपृथुकदम्बाडम्बरो मौर्यनिर्जित् ।

निजभुजबलभूम्नोत्पाटयन् राष्ट्रकूटान्
खिलितकलचुरिश्रीरस्ति चालुक्यवंशः ॥

तज्जेषु राज्यमनुपाल्य गतेषु राज-
स्वेकान्नषष्टिगणनेषु पुराध्ययोध्यम् ।
तद्वंशजास्तदनु षोडश भूमिपालाः
क्ष्मां दक्षिणापथजुषं बिभरांबभूवुः ॥

कुष्टावष्टब्धाया कतिपयपुरुषान्तरान्तरितायां चालुक्यकुलसम्पदि भूयश्चालुक्यवंश्य एव —

कन्दः कीर्तिलताङ्कुरस्य कमलं लक्ष्मीविलासास्पदं
वज्रं वैरिमहीभृतां प्रतिनिधिर्दैवस्य दैत्यद्रुहः ।
राजासीज्जयसिंहवल्लभ इति ख्यातश्चरित्रैर्निजै—
र्यो रेजे चिरमादिराजचरितोत्कण्ठाः प्रजानां हरन् ॥
यो राष्ट्रकूटकुलमिन्द्र इति प्रसिद्धं कृष्णाह्वयस्य सुतमष्टशतेभसैन्यम् ।
निर्जित्य दग्धनृपपञ्चशतो बभार भूयश्चलुक्यकुलवल्लभराजलक्ष्मीम् ॥

चटुलरिपुतुरगपटुभटकरटिघटाकोटिघटितरणरागः ।
सुकृतहरचरणरागस्तनयोऽभूत्तस्य रणरागः ॥
तत्तनयः पुलकेशी केशिनिषूदनसमोऽभवद्राजा ।
वातापिपुरीवरपतिरकलितखलकलिकलङ्ककालः ॥
वयमपि पुलकेशिक्ष्मापतिं वर्णयन्तः
पुलककलितदेहाः पश्यताद्यापि सन्तः ।
स हि तुरगगजेन्द्रग्रामसारं सहस्र-
द्वयपरिमितमृत्विक्साच्चकाराश्वमेधे ॥
तत्तनयः—नलनिलयविलोपी मौर्यनिर्वाणहेतुः
प्रथितपृथुकदम्बस्तम्बभेदी कुठारः ।
भुवनभवनभागापूरणारम्भभार
व्यवसितसितकीर्तिः कीर्तिवर्मा नृपोऽभून् ॥

तदनु तस्यानुजः—
सर्वद्वीपाक्रमणमहसो यस्य नौसेतुबन्धै—
रुल्लङ्घ्याब्धिं व्यधित पृतना रेवतीद्वीपलोपम् ।
राज्यश्रीणां हठपतिरभूद्यश्च कालच्चुरीणां
बध्ने भूमिं सह स सकलैर्मङ्गलैर्मङ्गलीशः ॥

ज्येष्ठभ्रातुः सति सुतवरेऽप्यर्भकत्वादशक्ते—
यस्मिन्नात्मन्यकृत हि धुरं मङ्गलीशः पृथिव्याः ।
तस्मिन्प्रत्यार्पिपदथ महीं यूनि सत्याश्रयेऽसौ
चालुक्यानां क इव हि पथो धर्म्यतः प्राच्यवेत ॥

जेतुर्दिशं विजितहर्षमहानृपस्य
दातुर्मनोरथशताधिकमर्थयद्भ्यः ।
सत्यादिसर्वगुणरत्नगणाकरस्य
सत्याश्रयत्वमुपलक्षणमेव यस्य ॥

अडमरीकृतदिग्वलयो ऽ र्हितद्विडमरीपरिगीतमहायशाः ।
मृडमरिष्टमिदं मनसोद्वहन्निडमरिः क्षितिपोऽजनि तत्सुतः ॥

सुतस्तदीयो गुणरत्नशाली भूवल्लभोऽभूद्भुजवीर्यशाली ।
आदित्यवर्माऽर्जितपुण्यकर्मा तेजोभिरादित्यसमानधर्मा ॥

तत्सुतो विक्रमादित्यो विक्रमाक्रान्तभूतलः ।
ततोऽपि युद्धमल्लाख्यो युद्धे यमसमो नृपः ॥
तज्जन्मा विजयादित्यो वीरानेकाङ्कसंगरे ।
चतुर्णां मण्डलानामप्यजयद्विजयोपमः ॥
तद्भवो विक्रमादित्यः कीर्तिवर्मा तदात्मजः ।
येन चालुक्यराज्यश्रीरन्तरायिन्यभूद्भुवि ॥
विक्रमादित्यभूपालभ्राता भीमपराक्रमः ।
तत्सूनुः कीर्तिवर्माऽभून्मृत्प्रासार्दितदुर्जनः ॥
तैलभूपस्ततो जातो विक्रमादित्य भूपतिः ।
तत्सूनुरभवत्तस्माद् भीमराजोऽरिभीमकः ॥
अय्यणार्यस्ततो जज्ञे यद्वंशस्य श्रियं स्वकाम् ।
प्रापयन्निव वंशं स्वं स वव्रे कृष्णनन्दनाम् ॥

अभवत्तयोस्तनूजो विभवविभासी विरोधिविध्वंसी ।
तेजोविजितादित्यः सत्यधनो विक्रमादित्यः ॥
चेदीशवंशतिलकां लक्ष्मणराजस्य नन्दनां नुतशीलाम् ।
बोन्थादेवीं विधिवत्परिणिन्ये विक्रमादित्यः ॥

सुतमिव वसुदेवाद्देवकी वासुदेवं गुहमिव गिरिजाभिर्देवमर्धेन्दुमौलेः ।
अजनयदथ बोंथादेव्यतस्तैलभूपं विभवविजितशक्रं विक्रमादित्यनाम्नः ॥

अरिकुम्भिकुम्भभेदनरिपुदुर्गकवाटभञ्जनप्रभृतिः ।
सहजबलस्य हरेरिव बालक्रीडाभवद्यस्य ॥

किञ्च राष्ट्रकूटकुलसम्बद्धावुभौ—

और्जित्याचरणाविव प्रचलितौ साक्षात्कलेः क्रामतः
क्रूरौ बद्धशरीरकौ गुरुजनद्रोहप्ररोहाविव ।
कालात्खण्डितराष्ट्रकूटककुलश्रीवल्लिजाताङ्कुरौ
लूनौ येन सुखेन कर्करणस्तम्भौ रणप्राङ्गणे ॥

इत्थं पुरा दितिसुतैरिवभूतधात्रीं यो राष्ट्रकूटकुटिलैर्गमितामधस्तात् ।
उद्धृत्य माधव इवादिवराहरूपो बभ्रे चलुक्यकुलवल्लभराजलक्ष्मीम् ॥

भम्महरट्टादभवद्भूपालाद्राष्ट्रकूटकुलतिलकात् ।
लक्ष्मीरिव सलिलनिधेः श्रीजाकब्बाह्वया कन्या ॥

चालुक्यवंशाम्बरभानुमाली श्रीतैलभूपाल उपायतैनाम् ।
तयोश्चलोकाभ्युदयाय योगः स चन्द्रिकाचन्द्रमसोरिवासीत् ॥

श्रीतैलभूमिपालात् श्रीजाकब्बा ममजीजनत् ।
श्रीमन्सत्याश्रयं स्कन्दमम्बिका त्र्यम्बकादिव ॥

तस्यानुजः श्रीदशवर्मनामा तद्वल्लभा भाग्यवती च देवी ।
तयोरभूद्विक्रमशीलशाली श्रीविक्रमादित्यनृपस्तनूजः ॥

अमौ निजज्येष्ठपितुः परोक्षं बभार वाराशिवृतां धरित्रीम् ।
भुजेन केयूरलतामिवोच्चैर्विदारितारातिकदम्बकेन ॥

तदनु तस्यानुजः—

यस्याखिलव्यापि यशोऽवदातमकाण्डदुग्धाम्बुधिवृद्धिशङ्काम् ।
करोति मुग्धामरसुन्दरीणामभूत्स भूयो जगदेकमल्लः ॥

सदावनस्थः पटुविक्रमाढ्यो मदान्धगन्धेभघटाविपाटी ।
धरोर्जितप्रस्फुरितप्रभासो रराज योऽसौ जयसिंहराजः ॥

अगमदखिलधात्री येन राजन्वतीत्वं निवसति नृपलक्ष्मीर्यस्य शुभ्रातपत्रे ।
स सकलनमितारिक्षोणिभृन्मौलिरत्नद्युतिशबलितपादो गण्डरुल्लाण्डभूपः ॥

विख्यातकृष्णवर्णे तैलस्नेहोपलब्धसरलत्वे ।
कुन्तलविषये नितरां विराजते मल्लिकामोदः ॥

ततः प्रतापज्वलनप्रभावनिर्मूलनिर्दग्धविरोधिवंशः ।
तस्यात्मजः पालयिता धरायाः श्रीमानभूदाहवमल्लदेवः ॥

आत्मावस्थानहेतोरभिलषति सदा मण्डपं मालवेशो
दोलत्तालीवनान्तान्यनुसरति सरिन्नाथकूलानि चोलः ।
कन्याकुब्जाधिराजो भजति च तरसा कन्दरास्ता हिमाद्रे—
रुद्दामा यत्प्रतापप्रसरभरभवोद्भीतिविभ्रान्तचिन्ताः ॥

अम्लानतैलगुणसंग्रहणप्रवृद्धतेजोविशेषदलितद्विषदन्धकारः ।
अन्वर्थतां समनुसृत्य कविप्रधानैर्यः प्रोच्यते ननु चलुक्यकुलप्रदीपः ॥

औद्धत्ययुक्तान्धकजप्रभावनिर्मूलनोद्दामबलस्य यस्य ।
विराजते निर्जितमीनकेतोर्देवस्य चालुक्यमहेश्वरत्वम् ॥

तस्मादजायत जगज्जनितप्रमोदः शृङ्गारवीररसिकः कविलोककान्तः ।
कान्ताविलोलनयनोत्पलचारुचन्द्रश्चालुक्यवंशतिलको भुवनैकमल्लः ॥

यः पत्रं स्फुटपुष्कराक्षरधरं पाणौ कृपाणच्छलाद्
आजन्मप्रतिपन्नदास्यविजयश्रीदत्तमुच्चैर्दधत् ।
साक्ष्यं ग्राहयितुं दिशां परिवृढान् सर्वानिव प्राहिणोत्
प्रत्याशं निजकीर्तिमभ्रतटिनीस्पर्धानुबन्धोद्यताम् ॥

तदनु तस्यानुजः—

आसीत्तेजः कलितकमलोल्लासनप्रौढपाद—
स्पर्शादुच्चैः श्रियमवनिभृच्छेखराणां दधानः ।
ध्वान्तभ्रान्तिं दधदिव दृशोरञ्जनं वैरिवीर—
स्मेराक्षीणां मुहुरपहरन् विक्रमादित्यदेवः ॥

भूभारं नमितफणीश्वरं भुजाभ्यां बिभ्राणः पटहपलायितक्षितीशः ।
यश्चोच्चैरपहृतनाकिशाखिलीलः प्रख्यातस्त्रिभुवनमल्ल इत्युदारः ॥

यातोऽन्वेष्टुं जनकजनितां वल्लभोदारलक्ष्मीं
भ्रात्रा सार्द्धं हरिबलयुतः स्वां सुमित्रात्मजेन ।
तीरे सिन्धोर्बहुसुखभयादेत्य वैभीषणश्री—
धाम्ना नेमे द्रविडपतिना यश्च चालुक्यरामः ॥

सर्वाशाविजयप्रयाणसमयज्ञाताखिलोर्वीपथ—
प्रस्थानेव महीमतीत्य विमला यत्कीर्तिरब्धिं गता ।

प्रेक्ष्यस्ते विजयश्रिया परवशो दूरीकरोत्येष मां
इत्याख्यातुमिवार्णवस्थितिजुषः शौरेस्त्रिलोकीगुरोः ॥

स तु श्रीपृथिवीवल्लभमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकसत्याश्रयकुलतिलकचालुक्याभरणश्रीमत्त्रिभुवनमल्लवल्लभनरेन्द्रदेवः कुशली कुशलिनः सर्वानेव यथासम्बध्यमानमानकान् राष्ट्रपतिविषयपतिग्रामकूटकायुक्तकनियुक्तकाधिकारिकमहत्तरादीन् समादिशत्यस्तु व संविदितं यथास्माभिश्चालुक्यविक्रमवर्षे द्वादशे अङ्कतोऽपि १२ प्रवर्तमानकाले प्रभवसंवत्सरे पुष्यबहुलत्रयोदशीबृहस्पतिवारोत्तरायणसङ्क्रान्तौ बहूनि महादानानि दत्त्वा तद्दक्षिणाकाले कल्याणपुरसमावासितनिजविजयस्कन्धावारे पलतपाण्ड्यविज्ञप्त्या द्रविडदेशागतेभ्यो नानागोत्रेभ्यो नानावेदशाखाशास्त्रपारगेभ्यस्त्रिशतसङ्ख्याकेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः श्रीमत्त्रिभुवनमल्लदेवेन कोकलिपञ्चशतदेशमध्यस्थितविक्किगसप्तत्यन्तवर्ती नीरुगुण्डनामा ग्रामः धारापूर्वकमग्रहारीकृत्य दत्तः। पञ्चशतेभ्य एव ब्राह्मणेभ्य चालुक्यविक्रमवर्षे अष्टाचत्वारिंशे अङ्कतोऽपि ४८ प्रवर्त्तमानकाले शोभाकृत्संवत्सरे भाद्रपदशुद्धश्रवणद्वादश्यां सोमवारे बहूनि महादानानि दत्वा तद्दक्षिणाकाले वैजयन्तीपुरसमावासितनिजविजयस्कन्धावारे श्रीकरणाधिकारिसर्व्वाध्यक्षद्राविडादित्यप्रेरितपलतपाण्ड्यपौत्ररायपाण्ड्यविज्ञप्त्या श्रीमत्त्रिभुवनमल्लदेवेन स एव ग्राम कृष्णपल्लिकासमेत तेभ्य एव ब्राह्मणेभ्यः धारापूर्वकं शासनीकृत्य दत्त। तैरेव ब्राह्मणै तद्देशस्वामिने पिण्डादानस्वरूपेण सुवर्णशतचतुष्टय देयम्। सशुल्ककरबाधापरिहार समस्तादेयसहितो राजकीयानामनङ्गुलिप्रेक्षणीयो निधिनिधानसमेतः सर्वनमस्य. त्रिभोगाभ्यन्तरसिद्धया शासनीकृत्य दत्तः। तस्य ग्रामस्य सीमान्तानि कथ्यन्ते। प्राच्यां दिशि गजपाषाणः ततो खल्वाटपर्वतश्च आग्नेय्यां दिशि तलेवाग्यग्रामात् पश्चिमासन्नप्रदेशे स्रोतः। कमण्डलुकार्पासग्रामात् पश्चिमासन्नप्रदेशे स्रोतोऽन्तरञ्च। दक्षिणस्यां दिशि तिलकनामग्रामात् उत्तरासन्नप्रदेशे स्रोत। नैर्ऋत्यां दिशि शैल। तस्य चोत्तरतो लक्ष्मगेहनामग्रामात् पूर्वतो महिषपाषाण। पश्चिमस्यां दिशि मधूकवृक्षसरः। ततः पश्चिमोत्तरतः आयस-सार-तिन्त्रिणीकवृक्षश्च। वायव्यां दिशि दीर्घतुङ्गपर्वत। उत्तारस्यां दिशि स्वर्णखदिरवल्मीक.। ऐशान्यां विशयक्षरपाषाण इति सीमान्तप्रमाणानि।

तत्रत्यभीमेश्वरदेवाय गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्याद्यर्चनार्थं खण्डस्फुटितजीर्णोद्धारनवसुधाकर्मार्थं नृत्यगीतवाद्यभोगपात्रमूलपरिवारार्थं ब्राह्मणतपस्विभोजनार्थञ्च। आदित्यनामपल्लिका सशुल्ककरबाधापरिहारः समस्तादेयसहितो राज-

कीयालामनङ्गुलिप्रेक्षणीयो निधिनिधानसमेतः सर्वनमस्यस्त्रिभोगाभ्यन्तरसिद्धया धारापूर्वकं देवभोगार्थं शासनीकृत्य दत्तः । तस्याः पल्लिकायाः सीमान्तानि कथ्यन्ते ।

प्राच्यामाग्नेय्यां दक्षिणस्यां नैर्ऋत्याञ्च श्रीकुण्डग्रामोक्तसीमेव सीमा । पश्चिमस्यां दिशि नागरसरः सेतुः । वायव्यामुत्तरस्यामैशान्याञ्च चूतह्रदः स्रोतः । इति आदित्यपल्लिकायाः सीमान्तप्रमाणानि ।

एवं पूर्वप्रसिद्धसीमासमन्वितश्चतुराघाटविशुद्धः स युष्माभिरागामिभिरस्मद्वंश्यैरन्यैश्च भूमिपालैः पालनीयः ।

तथा चोक्तं भगवता वेदव्यासेन—

बहुभिर्वसुधा दत्ता राजभिः सगरादिभिः ।
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥

अपहरणेऽपि च दोषस्तेनैवोक्तः—

स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥
सुवर्णमेकं गामेकां भूमेरप्येकमङ्गुलम् ।
हरन्नरकमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ॥
विन्ध्याटवीष्वतोयासु शुष्ककोटरशायिनः ।
कृष्णसर्पा हि जायन्ते ब्रह्मदेयापहारिणः ॥

रामभद्रेणाप्युक्तम्—

सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भिः ।
सर्वानेतान् भाविनः पार्थिवेन्द्रान् भूयो भूयो याचते रामभद्रः ॥

मद्वंशजाः परमहीपतिवंशजा वा पापादपेतमनसो भुवि भावि भूपाः ॥
ये पालयन्ति मम धर्ममिमं समस्तं तेभ्यो मया विरचितोऽञ्जलिरेष मूर्ध्नि ॥

मयेदं शासनाधिकारिकाक्षपटलिकमहाप्रचण्डदण्डनायककालिदाससुतविक्रमादित्यानुमत्या । वत्सगोत्रसामवेदिभट्टविलासोपमानार्यमस्वामिसूनुना काश्मीरभट्टमल्लयपण्डितेन दानाधिकारिणा लिखितमिदमिति शुभम् । श्रीशारदायै नमः ॥

॥ श्रीः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री सङ्कष्टनाशिन्यै नमः ॥

परिशिष्टम्

"घ"

विक्रमाङ्कदेवचरितमहाकाव्ये चतुर्दशसर्गतोऽष्टादशसर्गान्तर्गतानां विशिष्टशब्दानामकारादिक्रमेण सूची ।

	पृष्ठ
अग्रहार	१९२, १९६, २०८
अच्छोद ...	२१९
अनन्तक्षितिप	१९७
अनन्तदेव ...	२०३
अलका ...	२०४
आनन्द ...	२४५
इक्ष्वाकुपति ...	१३१
इन्द्रायुध ...	२१९
इष्टराम ...	२४४
उत्कर्षदेव ...	२३१
उरमाधीश ...	१८९
उर्वशी ...	२००
कर्ण	२२८, २५२
कर्णाटेन्दु ...	२५९
कलशनृपति ...	२१८
काञ्चनभूधर	१३७, १३८, १५५, १५६.

	पृष्ठ
काञ्ची ...	१५८
कादम्बरी ...	२१९
कान्यकुब्ज ...	२४९
कालञ्जरगिरिपति ...	२५१
कालिन्दी ...	२२७
काश्मीर	१७७, १८९, १९८, २११, २४६, २६०.
काष्ठीलद्विज ...	१९६
कुन्तलपति	१, ४५, ६८, ७६, १२२, १२५.
कुम्भसम्भव	१४५, २४९
कुरुपति ...	२२८
कृष्ण ...	२४७
कृष्णवेणी	८, ३०, ३२, ४२
कौरवक्षेत्र ...	२२८
क्रौञ्च	२४, २०४
खोनमुष ...	२३४

पृष्ठ

गङ्गाधर ... २५३
गञ्जधाम ... १९७
गोपादित्य ... २३६
चन्द्रभागा १२६, २२६
चन्द्रसीमाप्रदेश ... १९६
चन्द्रापीड ... २१९
चम्पा ... २०७
चित्रलेखा ... २००
चीनपिष्ट ... ४१
चुलुक्य २३, ४२, ७७, ८५, ९४, १०४, ११६, ११८, १३०, १७४, २५८
चोल १५८, १७४, १७५
जन्हुकन्या ... २०३
जयवन ... २३३
जयापीड ... २२३
ज्येष्ठकलश ... २४०
डाहालक्षितिप २५२, २५३
तक्षक ... २३३
ताडका ... २२३
दशास्य १७९, २६३
दार्वाभिसार ... २०७
द्राविड ... ८
धनपतिपुरी १८८, २२१
धारा ... २५४
नागादेवी ... २४१
नारद १५२, १७२
पयोष्णी ... १२६
पार्थ ... २२८
पुष्पक ... २२४
पौलस्त्य २२५, २५२
प्रद्युम्नक्षितिधर ... १८८
प्रयाग ... २५०
प्रवरगिरिजावल्लभ ... १९९
प्रवरनृपति ... १९९
प्रवरपुर १७७, २६३
बालुकाब्धि ... २२३
बाहुस्थल ... २१६
बिल्हण ... २४२
भट्टारकमठ ... १८५
भर्तुलक्षोणिभर्ता ... २०७
भागीरथी ... १४६
भाण्डागाराणि ... २१६
भार्गव २४, २५५
भृगुपति ... २०४
भोज २१४, २५४
मुक्तिकलश ... २३७
मेनका ... १६८
यमुना १२६, २५०
रम्भा ... २००
राजकलश ... २३९
राजपुरी ... २१६
राधा ... २४७
रामभद्र ... २२६
लङ्का १८८, २२०
लोहराखण्डल ... २१४
वाराणसी ... २५१
विक्रमाङ्क ... १
विजयमल्ल ... २३२
वितस्ता १२६, १७७, १८४, १९६, २०१, २१३
विद्यामठ ... १९३

	पृष्ठ		पृष्ठ
वृन्द्रावन	... २४७	हर्षदेव	२२४, २२९
वेङ्गिनाथ	... ३	हलधर	... १९२
सिद्धसिन्धु	... १२६	क्षितिपति	२१४, २३१
सुभटा	... २०८	क्षेमगौरीश्वर	... १९५
सोमनाथ	... २५५	त्रिगर्त	... २०७
संग्रामोर्वीपरिवृढ़	... १९६	त्रिदशनगरी	... १८८